॥ ॐ ॥

नमोत्थुण समणस्स भगवओ णायपुत्त महावीरस्सि।

श्रीमद् गणधर देव रचित

नव पदार्थ ज्ञानसार

सम्पादक—

ज्ञातपुत्र महावीर जैन संघीय मुनि फकीरचन्द्रजी

महाराजश्रीका चरण चंचरीक

"पुप्फ जैन भिक्खु"

प्रकाशक

स्वर्गीया माताश्रीकी चिरस्मृतिमें प्रकाशित

सेठ अमरचंद नाहर

नं० ८. हसपोकरिया फर्स्ट लेन

कलकत्ता।

संवत १९९४ ।
वीर संवत २४६४ ।

प्रथम संस्करण १०००

इस पुस्तकको प्रचारके लिये [illegible] अमूल्य वितरण कर सकता है।

पुस्तक मिलनेका पता—

१—श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन (गुजराती) संघ, २७ नं० पोलोक स्ट्रीट, कलकत्ता।

२—सेठ अमरचंद नाहर, नं० ८, हसपोकरिया फर्स्ट लेन, कलकत्ता।

प्रस्तावना

अनेकान्तवाद सिद्धान्तका इस कालमे समस्त जन-ससार पर अद्वितीय उपकार है। श्रीजिनेन्द्र देवने अपनी मनोमोहक दिव्य ध्वनिमे नव पदार्थोंकी अनुपम रचना सर्वप्रथम अर्धमागधी भाषामे अपने भव्य समवसरणमे प्रतिपादन की। परन्तु उसी समय गण-धरलब्धिधारक भगवान सुधर्माचार्यने उसका अर्थ मानव भाषामें अनुवादित कर बताया और उस तत्त्वको सुगम शब्दोंमे समझा कर मानव समाजपर आत्म-ज्ञानका खूब ही प्रकाश डाला, अत जैन-समाज जिस प्रकार जिनवरके उपकारसे उपकृत है उसी प्रकार गण-धरदेव श्री सुधर्माचार्यजीका भी अत्यन्त ऋणी है जिन्होंने इस नव-पदार्थके ज्ञानको चिरस्थायी रहनेके लिये इसे सूत्रागम रूपी मालामे गूथ कर इसके गहनातिगहन विषयको और भी सरल बना दिया और किसी हद तक यह (प्राकृत भाषियोंके लिये) बहुत ही अच्छा हुआ है। परन्तु इनके पश्चात् और अनेक आचार्यगण यदि इन नव तत्त्वोंको सुगम मानव भाषामे न लिखते तो आजकलके सर्वसाधारण सस्कृत-प्राकृतमे नव पदार्थ ज्ञानकी रचना रह जानेके कारण जैन पदार्थ विज्ञानसे वंचित ही रह जाते। अत यह मुक्त-कठसे कहना होगा कि—उन आचार्योंने भी जैन-दर्शनको सुगम भाषाओमे रच दिखाया जो कि साधारण योग्यता रखनेवालोंके लिये

अत्युपयोगी और भाषा-भाषियोंके लिये तो अद्वितीय अवलम्बन रूप है।

अखिल विश्वजालसूत्रमें पदार्थ नव ही दिखलाई पड़ते हैं, आठ या दश नहीं बन सकते, और पारमार्थिक दृष्टिसे सबके सब पदार्थ निज-निज गुण-पर्यायोंमें स्थित हैं चल विचल नहीं हैं। अत नव पदार्थोंके बिना १४ ब्रह्माण्डोंमें अन्य कुछ भी नहीं है।

जीवको प्रथम इसलिये कहा है कि— इसका ज्ञायक स्वरूप है, यह अपने गुणोंको प्रगट करनेमें पूर्ण स्वतन्त्र है। परन्तु विभाव पर्यायके कारण अजीव (पुद्गल) के जालमें अनादि कालसे फँसा हुआ है। इसमें कर्म परमाणुओंका आगमन आस्रवभाव द्वारा होता है और उसी आस्रवभावके मार्ग (शुभाशुभ भाव) से जीव स्वयं पुण्य-पापकी सृष्टि रचता है और मकड़ीके जालकी सदृश सुख-दु'खके विपाक जालमें पड़ कर उसे जीव स्वय ही भोगता है। लेकिन पुण्य-पापका बध भी स्वय जीव ही डालता हैं कोई अन्य शक्ति नहीं। इसके अतिरिक्त बधसे मुक्ति भी जीव ही कराता है। अत जीव सब पदार्थोंमें प्रधान पदार्थ है।

आस्रव द्वारसे आनेवाले पुण्य-पाप रूप कर्म जो बाधे गये हैं उनकी निर्जरा भी यथाकाल होती रहती है। आत्मासे कर्मोंकी सर्वथा निर्जरा होनेपर आत्मा कबलसे पानी झर जानेके समान हलका हो जाता है और सर्वथा कर्म लेपसे छूट कर अन्तमें मोक्षको प्राप्त करता है। मोक्ष हो जानेपर जीवकी ससार अवस्थामें पुन पुनरावृत्ति नहीं होती। तब आत्माको अपने स्वभावमें आ जाना

कहा जा सकता है, और वह सम्पूर्ण स्वभाव मोक्ष होनेपर प्रगटित होता है, अतएव मोक्षको सबसे पीछे कहा गया है।

इस प्रकार नव पदार्थोंका ज्ञान प्राप्त होनेपर अपने मुख्य कर्तव्य-की झाखी होती है, स्वस्वरूपकी स्मृति हो उठती है। अत मानव सृष्टिको नव पदार्थ ज्ञानका अमृतरूप सार मिलनेपर ज्ञायकत्वकी प्राप्ति होनेमे सन्देह ही नहीं रहता। और इस मधुर प्रसादके पाते ही राग, द्वेष, मोह, पक्षपात, सम्प्रदायवाद, गच्छवाद, मत, मतवालापनका 'अनादि' 'हलाहल' विप निकल जाता है और फिर प्राणियोंमे परस्पर वास्तविक और सच्चा प्रेम प्रगट हो जाता है तथा वैर भाव नाम मात्रको भी नहीं रहने पाता।

यद्यपि नवतत्त्व पदार्थका ज्ञान सस्कृत-प्राकृतमे खूब ही पाया जाता है परन्तु वह गूढ विषयोंसे समृद्ध है। अत. पूर्वाचार्योंने और हिन्दीविज्ञोंने इसकी अनेक टीकाएं रचकर इस विषयको सरलतम बनाया है तथापि वर्तमान कालीन नवीन हिन्दी-प्रेमी सर-लाशयसमलकृत सज्जनोंके हेतु उसे आकर्षक नहीं कहा जा सकता और न भारतके समस्त प्रान्तोके निवासी उन ग्रन्थोकी भाषा ही समझ सकते है।

इस नव पदार्थकी सरल भापामे चाहे कितनी भी टीकाएं कितने ही विस्तारसे क्यों न लिखी जायँ तथापि नव पदार्थोंका ज्ञान गुरुगम्यताके विना कभी उपलब्ध नहीं हो सकता। इसी कारण प्रकाशककी इच्छा रहनेपर भी चाहे भापाका अधिक विस्तार नहीं किया गया है परन्तु फिर भी विपयको स्पष्ट करनेमे

संकीर्णता नहीं की गई है। इतने पर भी यदि गुण ग्राहक स्वाध्याय-प्रेमी महाशयोंको कहीं शका उत्पन्न हो और उनकी सूचना मिलने पर उनका यथाशक्य समाधान करनेकी योजना की जायगी।

अन्तमे यह लिखना भी आवश्यक है कि—मै किसी भी भाषाके साहित्यमे पूर्ण सिद्धहस्त नहीं हूं और न जैनदर्शनकी द्वादशागी वाणीमे ही उच्च प्रवेश है, पर हा **पूज्यपाद गुरुराज श्री फकीरचन्द्रजी महाराजकी चरण कमलोंकी सेवाका सौभाग्य अवश्य प्राप्त है।** अतः मुझे जो कुछ प्राप्त है वह गुरुदेवका प्रसाद है अथवा इस ग्रन्थकी सग्रह रचना-में जो कुछ दूषण रह गये हों वे मेरे अज्ञान और प्रमाद जनित हैं। इसके अतिरिक्त भाई खेमचद श्रावकने इसका सशोधन भी किया है। परन्तु फिर भी आगम अगम्य है। 'को न विमुह्यति शास्त्र समुद्रे' की नीतिके अनुसार अनेक त्रुटियोका रह जाना सम्भव है। परन्तु गुणग्राहक, निष्पक्ष स्वभावभावितात्मा यदि निविदित करेगे तो आगामी सस्करणमे यथा सम्भव सुधारनेकी चेष्टा की जायगी।

सेठ अमरचन्दजी नाहर श्रावककी अत्युत्कट अभिलाषा देखकर यह परिश्रम किया गया है।

आशा है जैन-समाज तथा इतर पाठक-प्रेमी महोदयोंको यह 'नव पदार्थ ज्ञानसार' निरन्तर रुचिकर होगा और इससे उन्हे आध्यात्मिक लाभ भी अवश्य मिलेगा।

णायपुत्त, महावीर जैन सघका सेवक

—पुप्फ जैन भिक्खु।

सहायक

इस पुस्तकके लिये जिन-जिन पुस्तकोंका अवलोकन, प्रमाण आदि जटित किये हैं उनका उल्लेख इस प्रकार है—

नवतत्त्व हस्त लिखित, नवतत्त्व, (उ० आत्मारामजी म० पंजाबी), नवतत्त्व, (वा० मु० साह) आलाप पद्धति, समय प्राभृत नाटक समयसार (पं० बनारसीदासकृत), पचास्तिकाय, गोमट्टसार, स्थानागसूत्र, आचारागसूत्र, नवतत्त्व, (आगरेका छपा हुआ) जीव विचार, (आगरेका छपा हुआ) कर्मादि विचार, विश्वदर्शन, जैन हितेच्छु (स० वा० मो० शाह) विश्वदीपक, जैनतत्त्वका नूतन निरूपण आगमसारोद्धार।

इन सब पुस्तकोंके सुलेखकों और अनुवादकोंका एक साथीदारोंके रूपमे इनके साथको मैं भूल नहीं सकता। इसके उपरान्त प्रत्यक्ष या परोक्षमे जिस-जिसने प्रोत्साहन प्रेरित किया है उन सबका उल्लेख करना भी मैं क्योंकर विस्मृत कर सकूं।

इस पुस्तकके पाठकोंको मुझे यह भी स्मरण करा देना आवश्यक है कि—भाई खेमचन्दने और (जैन गुरु) उपाध्याय सूर्य्यमल्लजी यतिवर गणिने सहायता दिखलाई है।

नोट—पृष्ठ १४६ से १४९ नक्शा मेटर जैनहितेच्छुसे लिया गया है। जिसका निर्णय [illegible] है। — [illegible]

निदर्शन

इस जीवका प्रयोजन मात्र एक ही है वह यह कि—सुख हो, दुःख न हो। परन्तु इस प्रयोजनकी सिद्धि जीवादिक नव पदार्थोंकी श्रद्धा रखनेसे ही होती है।

सबसे पहले तो दुःखको दूर करनेके लिये आत्मा अनात्माका ज्ञान अवश्यमेव होना चाहिये। यदि आत्मा तथा पर (जड) का ज्ञान भलीभाति न हो तो आत्माको समझे बूझे विना किस प्रकार दुःख दूर हो सके ? अथवा आत्मा तथा परको एक समझ कर आपत्तिको दूर करनेके लिये परका उपचार करे तब भी दु:ख दूर क्योंकर हो ? अथवा आत्मासे पुद्गल भिन्न है अवश्य परन्तु उसमें अहंकार ममकार करनेसे भी दु:खी ही होगा। अत: फलित यह है कि आत्मा और परका ज्ञान पानेसे हो दुःख दूर हो सकता है। आत्मा और परका ज्ञान जीव और अजीवका ज्ञान होनेसे होता है। आत्मा स्वयं जीव है और शरीरादि अजीव हैं। लक्षणों द्वारा जीवाजीवका ज्ञान हो तो आत्मा तथा परका भिन्नत्व समझ सके, और जो जीवोंको तथा अजीवोंको जानता है वह जीवाजीवका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करके संयमको भी यथार्थ रीतिसे जान सकता है। जीवाजीवका सम्यग्ज्ञान होनेपर जो पदार्थकी अन्यथा श्रद्धामे दुःख और संकट भोग रहा था उसका यथार्थ ज्ञान होनेपर

दु ख दूर हो गया। अतः जीव अजीवका जानना परमावश्यक है। इसके अतिरिक्त दु खका कारण कर्मबध है, और उसका कारण मिथ्यात्वादिक आस्रव है, यदि उसका ज्ञान न पा सके तो दु खका मूल कारण भी न जान सकेगा। तब उसका अभाव क्योंकर हो ? और यदि उसका अभाव न हो तो कर्मबंध होगा, और उससे सदा दु खका ही सद्भाव रहेगा, क्योंकि मिथ्यात्वादिक भाव स्वय भी दु·खमय हैं। उसे दूर न करे तो दुःख ही रहे। अतः आस्रवका परिज्ञान भी अवश्य करना चाहिये। पुन समस्त दु खका मूल कारण कर्मबध ही है यदि उसे भी न जाना जाय तो उससे मुक्त होनेका उपाय नहीं कर सकता, इससे बधका ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिये। आस्रवके अभावको सवर कहते हैं यदि उसका स्वरूप न जान सके तो उसमे प्रवृत्त नहीं हो सकता। इससे वर्तमान एव आगामी कालमे दु ख ही रहेगा। अतएव सवरको भी अवश्य जानना चाहिये। किसी अशमे कर्मबधके अभावको निर्जरा कहते है, उसे न समझे तथा उसकी प्रवृत्ति न करे तो सर्वथा बधमे ही रहा करे जिससे दु ख ही दु ख होता है इसलिये निर्जराको भी जानना चाहिये। पुन· सर्वथा सब कर्मबधके अभावको मोक्ष कहते हैं। उसका ज्ञान प्राप्त किये विना भी उसका कोई उपाय नहीं कर सकता और ससारमे प्राणी कर्मबधसे होनेवाले दु·खोंको ही सहन करता रहा करे इससे कर्मबधसे छूटनेके अर्थ मोक्षका ज्ञान होना भी निहायत जरूरी है। इसके अतिरिक्त शास्त्रादिके द्वारा कदाचित् इनका ज्ञान हो भी जाय तथापि यह 'इसी प्रकार है' ऐसी प्रतीति न हो तो जाननेमें भी क्या

लाभ ? इससे तो स्वयं सिद्ध है कि—तत्त्वोंकी श्रद्धा करना भी अत्यावश्यक है और जीवादिक तत्त्वोंकी सत्यश्रद्धा करनेसे ही दु खके अभावके प्रयोजनकी सिद्धि होती है ।

नवतत्त्व प्रिय श्रद्धाभावसे जाननेपर मुमुक्षुमे विवेक बुद्धि, शुद्ध सम्यक्त्व और प्रभाविक आत्म-ज्ञानका सूर्यकी तरह उदय होता है, और तत्त्व-ज्ञानमें सम्पूर्ण लोकालोकका स्वरूप समा जाता है जिसे कि—सर्वज्ञ और सर्वदर्शी ही जान सकते है। परन्तु मुमुक्षु आत्माएँ अपनी बुद्धिके अनुसार तत्त्व-ज्ञान सम्बन्धी दृष्टि पहुंचाते हैं, और भावानुसार उनका आत्मा समुज्ज्वलताको प्राप्त हो जाता है।

महावीर भगवानके शासनमे आजकल अनेकानेक मत मतान्तर पड गये है और पड़ते जा रहे है। इसका मुख्य कारण मेरे विचारानुसार तत्त्व ज्ञानका अभाव ही समझा जाना चाहिये। क्योंकि जीवका लक्षण ज्ञानमय है, ज्ञानके अभावमे दु ख है। ससार परिभ्रमण भी ज्ञानके विना ही होता है। अत तत्त्वज्ञान आवश्यक वस्तु है, और आत्मार्थी पुरुषोंको अपने जीवनमे तत्त्व ज्ञानको मुख्यता प्रदान करना सघटित है। ज्यो-ज्यों नयादि भेदोसे तत्त्व ज्ञान मिलेगा त्यो-त्यो अपूर्व आनन्द और आत्म-विशुद्धिकी प्राप्ति होगी। उसीके पानेका अखड प्रयत्न, विवेक, गुरुगम्यता प्राप्त करना उचित है। निर्मल तत्त्व ज्ञान और क्रियाविशुद्धिसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति होगी और परिणाममे भवोंका अन्त भी होगा।

मगर इस समय तो उदर निर्वाह, पौद्गलिक लाभालाभके ही विचार मात्र और व्यापारादि व्यवहारमे ही जनता खिंची जा रही है।

जिसका परिणाम यह हो रहा है कि नव तत्त्वको पठन रूपमे जानने वाले वहुत कम पुरुप पाये जाते हैं। तव फिर मनन और विचार पूर्वक जाननेवाले तो अगुलियोंके पोरवोंपर गिने जायं तो इसमे कोई आश्चर्य जैसी वात नही है? ऐसे कठिन समयमे जिन्हे कुछ भी जिज्ञासा वृत्ति हो तो उनके लिये यह पुस्तक अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी है। जिसमे कि—लेखक पूज्य विद्वान् मुनिश्रीने मात्र नव तत्त्वके भेदोको ही दर्शा कर सन्तोप नहीं माना है बल्कि आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिसे सशोधन करके स्पष्टतासे समझा जा सके ऐसे ढगसे सूक्ष्मता पूर्वक प्रत्येक तत्त्वका पृथक्करण करके सरल रोचक और विस्तीर्ण नोट लिखकर तत्वोंके ऊपर खूव ही प्रकाश डाला है।

"नव पदार्थ ज्ञानसार" मे तत्त्ववोध तो है ही परन्तु इसके उपरान्त इसमे एक यह भी खूबी है कि इसमे उपदेश बोध भी पद-पदपर पाया जाता है, जो कि मुमुक्षुओंके लिये अति रोचक और मननीय सिद्ध होगा। आशा है जिज्ञासु जनता समूह इसका सहर्प मान करेगा और इसका सदृश सारभूत नवपदार्थज्ञानके सारको आदरसे स्वीकार करेगा।

निदर्शक—

वीर सेवक "क्षेम"

कलकत्ता।

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१०	अधक्षासे	अपेक्षासे
२	१०	काय	काय-
२	१६	समुद्धानके	समुद्घातके
३	१०	भावकम रूप	भावकर्म रूप
५	३	उपकार	उपकारी
६	२	अतन्त	अनन्त
६	५	ज्ञायक, स्वभाव	ज्ञायकस्वभाव
६	६	पूर्ण पर	पूर्ण, पर,
७	१०	चमक अनुसार	चमकके अनुसार
७	११	समागनमें	समागममे
८	६	प्रकारसे	प्रकार
८	१४	प्रक र	प्रकार
९	१	ही	हो
११	१६	विभग अज्ञान	विभग ज्ञान
१३	५	स्वरूप रूप	स्वरूप
१३	८	परिणित	परिणत
१६	२, ७	द्विन्द्रिय	द्वीन्द्रिय
१६	२, १०	त्रिन्द्रिय	त्रीन्द्रिय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६	१६	परिणित	परिणत
५०	१८	"	"
५३	१५, १७	"	"
५४	१४	सद्रव्य	सद्द्रव्य
६३	७	पहचानकी	पहचान की
६५	११	तथा और	तथा
६८	२०	चतुरस्त्र	चतुरस्र
७२	१६	स्पर्श,सस्थानसे रहित,	स्पर्श रहित
७४	१५	दोनों ही	दोनोंकी
७६	१३, १८	आहारिक	आहारक
८०	११	कौर	और
८०	२१	१६	१७
८१	३	समचतुरस्त्र	समचतुरस्र
८५	७	उसे 'अवधि	उसे 'अवधि ज्ञान' कहते हैं, उसका आवरण अवधि ज्ञानावरणीय पाप कर्म है।
८८	१०	कषाय योग	कषाय, योग
८६	५	जसा	जैसा
६२	१६	पर	पैर
६२	१६	हा	हो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९३	२	त्रश	त्रम
९५	३	समवन्ध	सम्वन्ध
९६	१३	विकाश	विकास
१००	२	मिथ्यात्व. आस्रव	मिथ्यात्व आस्रव
१०२	२२	कहलाती	लगती
१०८	१३	अतिन्द्रिय	अतीन्द्रिय
११२	२	समतिके	समितिके
११२	१६	सरभ	सरंभ
११३	२, ८	"	"
११७	२	वृहस्थ	गृहस्थ
११८	१५	परिषद	परिषह
११८	१८	इत्यादि	ये
१२०	१	हुर	हुए
१२५	१३	छेदोस्थापनीय	छेदोपस्थापनीय
१२८	६	उतपन्न	उत्पन्न
१३७	६	मिथ्यात्व रागद्वेष आदि अंतरग और धन-धान्य	धन धान्य
१३७	१५	इसमे	इससे
१३७	१५	निष्परिग्रह	निष्परिग्रही
१४०	५	सन्दगदृष्टि	सम्यग्दृष्टि
१४०	१५	युक्त	मुक्त

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४२	७	रहता ?	रहता ।
१४६	१५	और Phenumena	Phenamena औ
१४७	४	भी कार्य करता	भी करता
१४८	४	Conciousness	Consciousness
१४८	२०	प्रमाणु	परमाणु
१५०	२७	साथ जब	साथ
१५१	३०	उपदास	उपवास
१५१	२१	अकीर्ण	आकीर्ण
१५३	१	ग्रास लेनेपर	ग्रास कम लेनेपर
१५७	३	कायाक्लेश	कायक्लेश
१६१	१६	(१५) असातना	(१५) की आसातना
१६३	११	अयत्नसे विचार कर	अयत्नसे
१६६	१३	पछतावा करे	पछतावा न करे
१६७	६	प्रणाम	प्रमाण
१६८	६	,,	परिणाम
१७५	५	कारमाणा	कार्माण
१७६	२१	सकत्ता	सक्ता
१८५	६	विपयसक्त	विपर्यासक्त
१८६	३	वताई	वताया
१८६	४	निराली	निराला
१८६	२१	शरारादि	शरीरादि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८६	१८	नोष्कर्मसे	नोकर्मसे
१६२	१६	औ॰	और
१६३	१०	तद्नन्त	तदनन्तर
१६३	१३	और	तथा
२०२	८	मिश्र मोहिनी २	मिश्र मोहिनी १
२०२	१३	सासादान	सासादन
२०८	६	अविरत्त	अविरत
२११	७	ध्रवोदयी	ध्रुवोदयी
२११	१२	दुर्भाग	दुर्भग
२११	२२	स्त्यनार्द्धि	स्त्यानर्द्धि
२१३	४	वक्रियाष्टक	वैक्रियाष्टक
२२२	८	देशविरत्ति	देशविरति
२२२	१२	अज्ञानुसार	आज्ञानुसार
२२३	१, ५	आहारद्विक	आहारकद्विक
२२६	१	"	"
२२६	१६	ओवमं	ओघकी
२२८	२२	अनुतर	अनुत्तर
२२६	६	अनुपूर्वमें	अपूर्वमे
२२६	१६	अवरति	अविरति
२३०	१३	विहायोगति १	विहायोगति २
२३०	१४	सुस्वर दुःस्वर १	सुस्वर दुःस्वर २

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३३	३	उच्चगोत्र २	उच्चगोत्र १
२३३	१३	जीवपर	जीवके
२३६	५	भोगा	बाधा
२३६	८	नाम	नाम कर्म
२४५	४	गुप्तिपरिषह, जय	गुप्तिपरिषह जय,
२४८	१५	भावपर	भाव पर
२५०	१८	अकाश	प्रकाश
२५७	११	मोहनीय कमके	मोहनीय कर्मके अभावसे शुद्ध चारित्र, आयुकर्मके अभाव से अटल अवगाहना,नामकर्मके अभावसे अमूर्तिकता, गोत्रकर्मके अभावसे अगुरु लघुत्व
२६४	११	परिणाम	परिमाण
२३५	११	'नपुसक लिंग सिद्धि'	'नपुसक लिंग सिद्धि' गागेय जैसे,
परिशिष्ट १,	६	यथाप्रकृत्तिकरण	यथाप्रवृत्तिकरण
,,	१५	पल्योपम	पल्योपम
,	१८	अनन्तावार	अनन्त बार

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	२, २	मुहुतमे	मुहूर्तमे
,,	२,१२	अनिवृत्ति कारण	अनिवृत्ति करण
,,	५	८ समय लगते हैं।	८ समय तक होते रहते हैं।

नव पदार्थ ज्ञानसार

मंगलाचरण

नव-पदार्थ-सारोऽयं, तत्व-मार्गैक-दर्शकः ।
बालानां सुख-बोधाय, भाषायामभिकथ्यते ?

भावार्थ यह नव पदार्थोंका सार तत्वोंका मार्ग बतानेवाला है, अपरिचित आत्माओं को इसका ज्ञान करानेके लिये भाषा टीका की जाती है

नव पदार्थ

जीव-अजीव-पुण्य-पाप-आस्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध और मोक्ष ।

जीवका लक्षण

इसका लक्षण चेतना है, ज्ञान है, सुख है, शक्ति है, ज्ञान और चेतना एक ही बात है। प्राणो का धारक है चेतना भाव प्राण है। आंख, नाक, कान, जीभ, त्वचा मन, वचन काय, श्वासोच्छ्वास, आयु ये दस द्रव्य प्राण है।

द्रव्यचेतन

जीवकी विशेषताओंमे एक यह भी विशेषता है कि—यद्यपि जीवद्रव्य, चैतन्यत्व गुणकी अपेक्षासे चेतन ही माना गया है, अचेतन नहीं है, परन्तु पंचेन्द्रिय और मनके विषयोंके विकल्पसे रहित समाधिके समय स्वसवेदन यानी आत्मज्ञान रूप ज्ञानके विद्यमान होते हुए भी वाह्य-विषय रूप इन्द्रिय-ज्ञानके अभावकी अपेक्षासे आत्मा कथचित जड (अचेतन) माना गया है।

अनेक

यह गणनाकी अपेक्षासे अनन्त है।

अस्तिकाय

जीवद्रव्य अस्तित्व गुणके सम्बन्धसे केवल अस्तिरूप, तथा शरीरके समान वहुत प्रदेशोंको धारण करनेकी अपेक्षासे केवल काय रूप कहलाता है। इसलिये अस्तित्व निरपेक्ष केवल कायत्वसे अथवा निरपेक्ष केवल अस्तित्वसे जीव, अस्तिकाय नहीं कहा जाता, वल्कि दोनोंके मेलसे अर्थात् अस्तित्व गुण तथा शरीरके समान वहुप्रदेशी होनेकी अपेक्षासे अस्तिकाय कहलाता है।

असर्वगत

यद्यपि जीवद्रव्य लोकाकाशके वरावर ही असख्यात प्रदेशी है, अतएव समुद्घातके समय होनेवाली लोकपूरण अवस्थामे तथा सम्पूर्ण लोकमे व्याप्त नाना जीवोंकी अपेक्षासे सर्वगत कहा जाता है।

तथापि लोकालोक रूप सम्पूर्ण आकाशमें व्याप्त न होनेकी अपेक्षासे असर्वगत कहते है। फिर भी व्यवहार नयसे केवल ज्ञानावस्थामे ज्ञानकी अपेक्षासे जीवको लोक और अलोकमे भी व्यापक (सर्वगत) माना है। क्योंकि ज्ञानसे यह जीव लोकालोकवर्ती सम्पूर्ण पदार्थोको जानता है। अत॰ सर्वगत है। और ज्ञानावरणकी अपेक्षा असर्व-गत है।

अकार्यरूप

मुक्त जीव, द्रव्य तथा भावकर्मोसे रहित होनेके कारण देव मनुष्यादि पर्यायरूप जीवके उत्पन्न होने मे कारण भूत जो द्रव्य कर्म, भावकम रूप अशुद्ध परिणति है उस अशुद्ध परिणतिके द्वारा संसारी जीवकी तरह किसी भी कालमे मनुष्य-पशु आदि पर्याय रूपमे उत्पन्न नहीं होता है। इसलिये उस मुक्त जीवकी अपेक्षासे जीव द्रव्य अकार्य रूपसे कहा जाता है।

परिणामी

स्वभाव और विभाव पर्यायरूप-परिणमनकी अपेक्षा परिणामी भी कहा गया है।

प्रवेशरहित

यद्यपि व्यवहार नयसे सम्पूर्ण द्रव्य, एक क्षेत्रावगाही होनेके कारण एक दूसरेमे अर्थात् आपसमें प्रवेश करके रहते है तथापि निश्चय नयमे चेतन अचेतन आदि अपने २ स्वरूपको नही छोड़ते है इसलिये प्रवेश रहित कहा है।

कर्त्ता

यद्यपि शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे जीव, पुण्य-पाप तथा घट-पट आदि किसी भी वस्तुका कर्ता नहीं है तथापि अशुद्ध निश्चय नय से शुभ और अशुभ योगसे युक्त होता हुआ पुण्य-पाप बन्धका कर्त्ता तथा उनके फलका भोक्ता कहा जाता है।

सक्रिय

एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमे गमन करने रूप यानी हलन-चलन रूप क्रियाकी अपेक्षा सक्रिय है।

कार्यरूप

संसारी जीव, कारण भूत भावकर्म रूप आत्म परिणामोकी सन्ततिके द्वारा और द्रव्यकर्मरूप पुद्गल परिणामोंकी सन्ततिके द्वारा नरक-पशुआदि पर्याय रूपसे उत्पन्न होता है। इसलिये ससारी जीवकी अपेक्षासे जीवद्रव्य कार्यरूप कहा जाता है।

कारण व अकारण रूप

ससारी जीव कार्य-भूत भावकर्मरूप आत्म परिणामोकी सन्तति को और द्रव्यकर्म रूप पुद्गल परिणामोंकी सन्तति करता हुआ नर नारकादि पर्याय-रूप कार्योंको उत्पन्न करता है। इसलिये उसकी अपेक्षासे जीवद्रव्य कारण रूप कहा जाता है। तथा मुक्त जीव दोनों प्रकारके कर्मोसे रहित होनेके कारण नर-पशु आदि पर्यायोंको उत्पन्न नहीं करता है, अत' उस मुक्त जीवकी अपेक्षासे जीवद्रव्य अकारण रूप कहा जाता है। अथवा जीव द्रव्य यद्यपि गुरु शिष्यादि

रूपसे आपसमे एक दूसरेका उपकार होता है तथापि पुद्गलादि पाचों द्रव्योंके प्रति यह जीव कुछ भी उपकार नहीं करता है जिसके लिये अकारण रूप कहलाता है।

अनित्य

यद्यपि जीव द्रव्यार्थिक नयसे नित्य है, तथापि अगुरुलघुगुणके परिणमनरूप स्वभाव पर्यायकी तथा विभाव व्यंजन पर्यायकी अपेक्षा से अनित्य कहा जाता है।

अक्षेत्ररूप

सम्पूर्ण द्रव्योंको अवकाशदान देनेकी सामर्थ्यके अभावकी अपेक्षासे जीव द्रव्य भी अक्षेत्र रूप कहा गया है, क्योंकि आकाश ही सब द्रव्योंको अवकाश देता है।

लोकके बराबर असंख्यात प्रदेशी

यद्यपि जीव अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नयकी अपेक्षासे शरीर नाम कर्मके द्वारा पैदा होनेवाले संकोच तथा विस्तारके कारण अपने छोटे व बड़े शरीरके प्रमाणमे कहा जाता है तथापि शुद्ध निश्चयनयसे लोकके बराबर असंख्यात प्रदेशी ही है।

अमूर्तिक

यद्यपि जीवद्रव्य अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नयसे मूर्तिक है, तथापि शुद्ध निश्चयनयसे उसमे रूप, रस, तथा गन्ध आदि कुछ भी नहीं पाये जाते हैं इसलिये अमूर्तिक है।

जीवका स्वरूप

अनन्त गुण, अनन्त पर्याय, अनन्त शक्ति सहित चैतन्य स्वरूप है, अमूर्तिक है, अखण्डित है।

जीवका निज गुण

वीतराग भावमे लीन होना, ऊपर जाना, ज्ञायक, स्वभाव, साहजिक सुखका सम्भोग सुख दु खका स्वाद और चैतन्यता ये सब जीवके निज गुण हैं।

जीवके नाम

परमपुरुष, परमेश्वर, परमज्योति, परब्रह्म, पूर्णपर, परम, प्रधान, अनादि, अनन्त, अव्यक्त अज, अविनाशी, निर्द्वन्द्व, मुक्त, निराबाध, निगम, निरंजन, निर्विकार, निराकार, ससारशिरोमणि सुज्ञान, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सिद्ध, स्वामी, शिव, धनी, नाथ, ईश, जगदीश, भगवान, चिदानन्द चेतन, अलक्ष, जीव वुद्धरूप, अवुद्ध, अशुद्ध, उपयोगी, चिद्रूप, स्वयम्भू चिन्मूर्ति, धर्मवान प्राणवान, प्राणी, जन्तु, भूत, भवभोगी, गुणधारी, कलाधारी, भेपधारी हस, विद्याधारी अंगधारी, मगधारी, योगधारी, योगी, चिन्मय, अखड, आत्माराम, कर्मकर्त्ता, परमवियोगी ये सब जीवके नाम है।

जीवकी दशा

जैसे कि—घास लकडी, वास, कपडा या जंगलके अनेक ईंधन आदि पदार्थ आगमे जलते है, उनकी आकृति पर ध्यान देनेसे अग्नि

अनेक रूपसे दीख पडता है परन्तु यदि मात्र दाहक स्वभाव पर दृष्टि डाली जाय तो सब अग्नि एक रूप ही है। इसी तरह यह जीव व्यवहार नयसे नव तत्त्वोंमे शुद्ध, अशुद्ध, मिश्र आदि अनेक रूपमे हो रहा है परन्तु जब उसकी चैतन्य शक्तिपर विचार किया जाता है तब वह शुद्ध नयसे अरूपी और अभेद रूप ग्रहण होता है।

शुद्ध जीवकी दशा क्या है ?

जिस प्रकार सोना कुधातुके सयोगसे अनलके तावमे अनेक रूप हो जाता है परन्तु फिर भी उसका नाम सोना ही होता है, तथा सराफ उसे कसौटी पर रखकर, कसकर उसकी रेखा देखता है और उसकी चमक अनुसार दाम देता लेता है, उसी तरह अरूपी, महादीप्तिमान जीव अनादि कालसे पुद्गलके समागनमे नव-तत्त्व रूप दीख रहा है, परन्तु अनुमान प्रमाणसे सब अवस्थाओमे ज्ञान स्वरूप एक आत्मारामके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।

अनुभवकी दशामें जीव

जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेपर भूमण्डलपर धूप फैल जाती है, और अन्धकारका नाश हो जाता है, उसी प्रकार जबतक शुभ और शुद्ध आत्माका अनुभव रहता है तबतक कोई विकल्प नहीं रहता।

शरीरसे आत्मा किस प्रकार भिन्न है

जिस नगरका किला बहुत ऊचा है कंगुरे भी शोभा दे रहे है, नगरके चारो ओर सघन बाग हैं, नगरके चारो तरफ गहरी खाई

है, परन्तु उस नगरमें राजा कोई अलग ही रहता है। इसी प्रकार शरीरसे आत्मा अलग है।

आत्मामें ज्ञान किस प्रकार गुप्त है

जिस प्रकार चिरकालसे भूमिमें गड़े हुए रत्नको खोद निकाल कर कोई बाहर रख दे तब नेत्रवालोंको वह स्पष्ट दिखने लगता है, उसी प्रकारसे अनादि कालमें अज्ञान भावसे दबी हुई आत्म-ज्ञानकी सम्पत्तिको गुरुजन युक्ति और शास्त्रसे सिद्ध कर समझाते हैं। जिसे विद्वान लोग लक्षणसे पहचान कर ग्रहण करते हैं।

भेद-विज्ञानकी प्राप्तिमें जीवकी दशा

जैसे कोई धोबीके घर जाकर भूलसे अन्यका कपडा पहन कर अपना मानने लगता है परन्तु जब उस वस्त्रका मालिक देखकर यह कहे कि—भाई। यह कपडा तो मेरा पहिन लिया है तब वह मनुष्य अपने वस्त्रका निशान देखकर उस कपड़ेको छोड़ देता है, उसी प्रकार यह कर्म—सयोगी जीव परिग्रहके ममत्वसे विभावमे रहता है। और शरीर आदि वस्तुओंको अपना मानता है, परन्तु भेद—विज्ञान होनेपर जब निज परका विवेक हो जाता है, तब रागादि भावोंसे भिन्न अपने निज स्वभावको ग्रहण करता है।

आत्माके सामान्य गुण

(१) जिस गुणके निमित्तसे जीवद्रव्यका कभी भी अभाव न हो उसको अस्तित्व' गुण कहते हैं।

(२) जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यमे अर्थक्रियाकारी पना हो उसको 'वस्तुत्व' गुण कहते है। जैसे घटमे जलानयन धारणादि अर्थ क्रिया है।

(३) जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यमे एक परिणामसे दूसरे परिणाम रूप परिणमन हो अर्थात् द्रव्य सदैव परिणमन शील रहे उसको 'द्रव्यत्व' गुण कहते हैं।

(४) जिस गुणके निमित्तसे जीवद्रव्य प्रमाणके विषयको प्राप्त हो अर्थात् किसी न किसीके ज्ञानका विषय हो उसको 'प्रमेयत्व' गुण कहते हैं।

(५) जिस गुणके निमित्तसे एक द्रव्य अन्य द्रव्यरूप तथा एक गुण दूसरे गुणके रूपमे परिणमन न करे उसको 'अगुरुलघुत्व' गुण कहते हैं।

(६) जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यमें आकार विशेष हो उसको 'प्रदेशवत्व' गुण कहते हैं।

(७) जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यमे पदार्थोंका प्रतिभासकत्व अर्थात् उनके (पदार्थोंके) जानने देखनेकी शक्ति हो उसको 'चेतनत्व' गुण कहते हैं।

(८) जिस गुणके निमित्तसे जीव द्रव्यमे स्पर्शादिक न पाए जाय अथवा जिस गुणके निमित्तसे जीव द्रव्यको इन्द्रियोके द्वारा ग्रहण करनेकी योग्यता न हो उसको 'अमूर्तत्व' गुण कहते है।

जीवके विशेष गुण

ज्ञान-दर्शन-सुख-शक्ति-चेतनत्व-अमूर्तत्व ये ६ विशेष गुण जीवमें पाये जाते है।

जीवका पर्याय

गुणोंके विकार (परिणमन) को पर्याय कहते हैं। और स्वभाव तथा विभावके भेदसे पर्याय दो प्रकारके होते हैं।

स्वभाव पर्याय

दूसरे निमित्तके विना जो पर्याय होता है, वह स्वभाव पर्याय कहलाता है।

विभाव पर्याय

दूसरे निमित्तसे जो पर्याय होता है, उसको 'विभाव पर्याय' कहते हैं। यह जीव और पुद्गलमे ही पाया जाता है।

स्वभाव पर्यायका लक्षण

अगुरुलघु गुणोंके विकारको स्वभाव-पर्याय कहते हैं। वे पर्यायें ६ हानिरूप ६ वृद्धिरुपके भेदसे १२ प्रकारके हैं।

स्वभाव पर्यायके १२ प्रकार

अनन्तभागवृद्धि, असख्यातभागवृद्धि, सख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असख्यातगुणवृद्धि, अनन्तगुणवृद्धि, इस प्रकार ६ वृद्धिरूप हैं, तथा अनन्तभागहानि, असख्यातभागहानि, सख्यातभाग-

हानि संख्यातगुणहानि, असख्यातगुणहानि, अनन्त गुणहानि, इस प्रकार ६ हानि रूप स्वभाव पर्यायें जानना चाहिये।

यहा पर अनन्तका प्रमाण सम्पूर्ण जीवराशिके बराबर, असंख्यातका प्रमाण असंख्यात लोक (प्रदेश) और सख्यातका प्रमाण उत्कृष्ट संख्यातके बराबर समझना चाहिये।

जीवका विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय

नरक-पशु-मनुष्य-देवादिकी पर्यायें अथवा ८४ लाख योनिया, ये सब जीवकी विभावद्रव्य व्यजन पर्यायें हैं।

विभाव-द्रव्य पर्याय

चारों गतिओंमे रहने वाले ससारी जीवका जो प्राप्त शरीरके आकार प्रदेशोंका परिमाण होता है अथवा विग्रहगतिमे पूर्व शरीरके आकार प्रदेशोंका जो परिमाण होता है वह जीवका विभावद्रव्य पर्याय होता है।

जीवका विभाव-गुण-व्यंजन पर्याय

मति ज्ञानादिक और राग-द्वेप आदि ये सब जीवके विभाव-गुण-व्यंजन पर्याय है।

विभाव-गुण पर्याय

मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्यायज्ञान, मति-अज्ञान, श्रुति अज्ञान, विभंग अज्ञान, इस प्रकार जितनी भी

अवस्थाऐं हैं वे सब जीवकी विभाव गुण पर्याय हैं। ये पर निमित्तमें उत्पन्न होनेवाले हैं।

जीवका स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय

चरम शरीर (अन्तिम शरीर) के प्रदेशोंसे कुछ प्रदेशवाली सिद्ध पर्यायको जीवका स्वभाव द्रव्य व्यजंन पर्याय कहते हैं।

जीवका स्वभाव-गुण-व्यंजन पर्याय

अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, और अनन्तशक्ति स्वरूप स्वचतुष्ट्य जीवकी स्वभाव गुण व्यजन पर्याय है। यह उपाधि रहित शुद्ध जीवके अनन्त ज्ञानादि गुणोंका स्वस्वरूप परि-णमन है।

पर्यायका खुलासा

पानीमे पानीकी लहरोंकी तरह अनादि और अनन्त अर्थात् उत्पत्ति और विनाशसे रहित द्रव्यमें द्रव्यकी निजी पर्याये प्रत्येक समयमे वनती तथा बिगडती रहती हैं।

जैसे जलमे पहली लहरके नाश होनेपर दूसरी लहर उससे भिन्न रूपकी नहीं आती, वल्कि पहली लहर ही दूसरी लहरके रूपमे हो कर वदल जाती है और पानी ज्योंका त्यों रहता है। इसी तरह जीवमें भी पहली पर्यायका अभाव हो जानेपर उससे निराली कोई अन्य पर्याय नहीं उत्पन्न होती। वल्कि पहली पर्याय ही दूसरी पर्याय वन जाती है। यदि पहली पर्यायसे दूसरी पर्याय सर्वथा

भिन्न उत्पादरूप मानने लगें तो सत्के विनाश और असत्के बनने-का प्रसंग आ जायगा।

जीवके स्वभाव जो सामान्य हैं

१ अस्ति स्वभाव—जिसका कभी नाश नहीं होता।

२ नास्ति स्वभाव—जो पर स्वरूप रूप न हो।

३ नित्य स्वभाव—अपनी नाना पर्यायोंमे 'यह वही है' इस प्रकार जो पहचाना जाय।

४ अनित्य स्वभाव—जो नाना पर्यायोंमें परिणित होनेके कारण न पहचाना जाय।

५ एक स्वभाव—सम्पूर्ण स्वभावोंका एक आधार माना जाय। जैसे चेतना सब गुणोंका आधार है।

६ अनेक स्वभाव—नाना स्वभावोंकी अपेक्षासे अनेक स्वभाव पाये जांय।

७ भेद स्वभाव—गुण गुणी आदि सज्ञा सख्या लक्षण प्रयोजन-की अपेक्षासे भेद स्वभाव कहलाता है।

८ अभेद स्वभाव—गुण गुणी आदिका एक स्वभाव होनेसे यानी गुण और गुणी आदिमे प्रदेश भेद न होनेके कारण एक स्वभावका पाया जाना अभेद स्वभाव है।

९ भव्य स्वभाव—आगामी कालमे परस्वरूपके आकार होनेकी अपेक्षासे भव्य स्वभाव है।

१० अभव्य स्वभाव—तीनों कालमें भी परस्वरूपका आकार नहीं होनेकी अपेक्षा अभव्य स्वभाव है।

११ सामान्य स्वभाव—पारिणामिक भावोंकी प्रधानतासे परम स्वभाव है। जीवके ये सामान्य स्वभाव है।

जीवके विशेष स्वभावोंके नाम

चेतन-स्वभाव, अमूर्त-स्वभाव, एक-प्रदेश-स्वभाव, अनेक-प्रदेश स्वभाव, विभाव-स्वभाव, शुद्ध-स्वभाव, अशुद्ध-स्वभाव, और उप-चरित-स्वभाव।

जीवके भेद

जघन्य जीवका भेद एक है। और वह चेतना लक्षण है।

जीवके मध्यम भेद

जीवके १४ भेद मध्यम इस प्रकार है।

जीवका १ भेद

चेतना लक्षण है।

जीवके २ भेद

त्रस और स्थावर है

त्रसका लक्षण

जो सर्दी गर्मी या अन्य आपत्ति पड़ने पर चल फिर कर अपने

को बचा सके वह त्रस होता है। जैसे कीड़ी, मच्छर, साप, गौ इत्यादि।

स्थावर

जो एक स्थान पर पड़ा रहे, वृक्ष इत्यादि। मिट्टी, पानी, आग, हवा वनस्पतिके जीव ही स्थावर कहलाते है।

जीवके ३ भेद

स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुसकवेद।

वेद क्या है ?

जिस कर्म प्रकृतिके उदयसे विकारशील इच्छा उत्पन्न हो उसको वेद कहते है। जैसे पुरुषके साथ विषय सेवनकी इच्छा हो उसे स्त्रीवेद कहते है। स्त्रीके साथ सम्भोगकी इच्छा हो उसे 'पुरुषवेद' कहते है। दोनोंके साथ भोग करनेकी इच्छा होने पर 'नपुंसकवेद' कहा जाता है।

जीवके ४ भेद

नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति।

गति क्या है ?

जिसके द्वारा मनुष्य पशु आदि पर्याय अवस्थामे जाता है, वह गति कहलाती है।

जीवके ५ भेद

एकेन्द्रियजाति, द्विन्द्रियजाति, त्रिन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति और पंचेन्द्रिय जाति।

एकेन्द्रिय जीव

आग, पानी, हवा, मिट्टी, वनस्पतिके जीव इनमे एक मात्र शरीर इन्द्रिय है।

द्विन्द्रिय जीव

इन जीवोंमे शरीर और जीभ होती है। जैसे जोंक, शीप, शंख, कीडे, गंडोया आदि जीव।

त्रिन्द्रिय जीव

इनमे शरीर, जीभ और नाक ये तीन इन्द्रियें हैं। जैसे कीड़ी, मकोडा, जू, खटमल, वीरवहूटी आदि।

चतुरिन्द्रिय जीव

इनमें शरीर, जीभ, नाक, आख पाई जाती हैं जैसे विच्छू, भौरा, मक्खी, मच्छर आदि जीव।

पंचेन्द्रिय जीव

जिन्हें शरीर, जीभ, नाक, आख, कान प्राप्त हों। जैसे मनुष्य, मोर, साप, मच्छी, ऊँट, गाय आदि अनेक जीव।

जीवके ६ भेद्

पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय।

जीवके ७ भेद्

नरक, देव, देवी, नर, नारी, पशुमे नर, मादीन।

जीवके ८ भेद्

चार गतिका पर्याप्त और अपर्याप्त। अथवा सलेशी, अलेशी, कृष्ण, नील, कापोत, तेजु., पद्म, शुक्लेशी।

जीवके ६ भेद्

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, द्वीन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय।

जीवके १० भेद्

पाच इन्द्रियोंका पर्याप्त और अपर्याप्त।

जीवके ११ भेद्

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरक, तिर्यंच, मनुष्य, भुवनपति, वानव्यतर, ज्योतिष, और वैमानिक।

जीवके १२ भेद्

६ कायका पर्याप्त और अपर्याप्त।

जीवके १३ भेद

६ कायका अपर्याप्त-पर्याप्त-अकायिक सिद्ध-प्रभु ।

जीवके १४ भेद

एकेन्द्रिय जीवके चार भेद-१ सूक्ष्म, २ वादर, ३ पर्याप्त, ४ अपर्याप्त, वेन्द्रियके दो भेद–५ पर्याप्त, ६ अपर्याप्त, त्रीन्द्रियके दो भेद–७ पर्याप्त, ८ अपर्याप्त। चतुरिन्द्रियके दो भेद-६ पर्याप्त, १० अपर्याप्त। पंचेन्द्रियके चार भेद-११ सञ्ज्ञी, १२ असञ्ज्ञी, १३ पर्याप्त, १४ अपर्याप्त।

सूक्ष्म जीव क्या हैं ?

जिन्हे आख नहीं देख सकती, आग नहीं जला सकती, शस्त्रसे कट नहीं सकता, न वे किसीको आघात पहुचा सकते, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्राणियोंके उपयोगमे नहीं आते, और वे समस्त लोकमे भरे पड़े है।

बादर जीव क्या हैं ?

इन्हे हम देख सकते है। आग उनके शरीरको जला सकती है, मनुष्य आदि प्राणी अपने उपयोगमे लाते है। उनकी गति-आगतिमे रुकावट पैदा की जा सकती है। वे समस्त लोकको घेर कर नहीं रहते है। उनका सृष्टिमे नियत स्थान है।

संज्ञी जीव क्या हैं ?

जिनमे पाच इन्द्रिय और मन पाया जाता है। जैसे देव, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि।

असंज्ञी जीव क्या हैं ?

असज्ञी पंचेन्द्रियके शरीरमे पांच इन्द्रियें तो है परन्तु मन नहीं होता। वे सम्मूर्च्छिम मनुष्य और मैंडक मच्छी आदि होते हैं।

पर्याप्ति क्या है ?

शक्ति विशेषको पर्याप्ति कहते है। जीव सम्पृक्त पुद्गलमे एक ऐसी आहार पर्याप्ति शक्ति है जो खुराकको लेकर उसका रस वनाती है। उस शक्तिका नाम 'आहार-पर्याप्ति' है।

शरीर पर्याप्ति

रस रूप परिणामका खून, मास, चर्वी, हाड-मज्जा (हाड़के अन्दरका सुकोमल पदार्थ) और वीर्य वनाकर शरीर रचना करने वाली शक्तिको 'शरीर पर्याप्ति' कहते है।

इन्द्रिय पर्याप्ति

सात धातुओमे यानी रक्त-मास आदिमे परिणत रसमे इन्द्रियादि यन्त्र वनाने वाली शक्तिको 'इन्द्रिय पर्याप्ति' कहते हैं।

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति

श्वासोच्छ्वास वनने योग्य पुद्गल-द्रव्यको ग्रहण कर उसे श्वासोच्छ्वास रूपमे परिणत करने वाली शक्तिको 'श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति' कहते हैं।

मनः पर्याप्ति

मन बनने योग्य पुद्गल द्रव्यको ग्रहण करके मनके रूपमे परिणत करने वाली शक्तिको 'मन. पर्याप्ति' कहते है।

भाषा पर्याप्ति

भाषाके योग्य पुद्गल-द्रव्यको ग्रहण कर भाषा रूपमे परिणत करनेवाली शक्तिको 'भाषा पर्याप्ति' कहते है।

परिणाम क्या है ?

पदार्थके स्वरूपका बदलना 'परिणाम' कहलाता है। जैसे दूधका परिणाम दही, और बीजका परिणाम वृक्ष इत्यादि।

किसमें कितनी पर्याप्ति हैं ?

आहार-शरीर-इन्द्रिय-श्वासोच्छ्वास ये चार पर्याप्ति एकेन्द्रिय जीवमे होती हैं। मनः पर्याप्तिको छोड कर बाकी पाच पर्याप्ति विकलेन्द्रियमे तथा असज्ञी पचेन्द्रिय जीवमे पाई जाती हैं। और ६ पर्याप्तिया सज्ञी पचेन्द्रियको होती हैं।

विकलेन्द्रिय क्या है ?

दो इन्द्रिय वाले, तीन इन्द्रिय वाले, चार इन्द्रिय वाले जीवोंको विकलेन्द्रिय कहते है। पहली तीन पर्याप्तिया पूरी किये बिना कोई जीव नहीं मर सकता। जिन जीवोंकी जितनी पर्याप्तिया बताई गई हैं, उन पर्याप्तियोंको यदि वे पूर्ण कर चुके हों तो 'पर्याप्त' कहलाते हैं। जिन जीवोंने अपनी पर्याप्ति पूर्ण नहीं की है, वे 'अपर्याप्त' कहलाते हैं।

इस प्रकार मध्यम भेद कहे गए है। अब उत्कृष्ट भेदोंका वर्णन इस प्रकार है।

जीवके उत्कृष्ट भेद

१४ नरक, ४८ तिर्यंच, ३०३ मनुष्य, १९८ देव। इस प्रकार सब मिलकर ५६३ भेद उत्कृष्ट हैं।

नरकके १४ भेद

नरकके ७ नाम—१ घम्मा, २ वंशा, ३ शेला, ४ अजना, ५ रिट्ठा, ६ मघा, ७ माघवती।

नरक के ७ गोत्र—१ रत्नप्रभा, २ शर्करप्रभा, ३ वालुप्रभा, ४ पंकप्रभा, ५ धूमप्रभा, ६ तम.प्रभा, ७ तमस्तमाप्रभा—

सात पर्याप्त और सात अपर्याप्तके भेदसे नरकके १४ भेद बन जाते हैं।

नरकोंके पाथड़े और नरक आवासकी गणना

पहली नरकमे—१३ पाथडे और ३०,००,००० नरकावास हैं।

दूसरी नरकमे—११ पाथडे और २५,००,००० नरकावास हैं।

तीसरी नरकमे—९ पाथडे और १५,००,००० नरकावास हैं।

चौथी नरकमे—७ पाथडे और १०,००,००० नरकावास हैं।

पांचवी नरकमे—५ पाथडे और ३,००,००० नरकावास हैं।

छठी नरकमे—३ पाथडे और ९९,९९५ नरकावास हैं।

सातवी नरकमे—१ पाथडा और पाच नरकावास हैं।

तिर्यञ्चके ४८ भेद

६ कायके नाम—१ इन्दी स्थावर काय, २ विंबी स्थावर काय, ३ सप्पि स्थावर काय, ४ सुमति स्थावर काय, ५ पयावच्च स्थावर काय, ६ जगम काय।

इनका अर्थ—१ इन्द्रकी आज्ञा पृथ्वी की ली जाती है।
२ प्रतिविम्ब पड़ता है, अतः वह पानी है।
३ घी जैसे पदार्थोंको गला देने वाला अग्नि है।
४ गर्मीमे सुमति-सुख-शान्ति देता है, अतः वायु है।
५ बच्चेकी भाति बढता है, दूध निकलता है, आर्यजनका आहार है, अतः वनस्पति है।
६ जंगममे बेंद्रिय, तेंद्रिय, चौंद्रिय, पचेंद्रिय गर्भित हैं।

६ कायके गोत्रोंके नाम

पृथ्वी काय

जिस प्रकार मनुष्यके शरीरका जख्म स्वय भर जाता है, इसी प्रकार खुदी हुई खानें खुद भर जाती हैं। जिस प्रकार नगे पैरों चलनेसे मनुष्यके पैरोंके तलिए घिस जाते हैं उसी प्रकार बढते भी जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य-पशु-पक्षियों तथा सवारीके आने जानेसे पृथ्वी भी सदैव घिसती रहती है और बढती रहती है। जिस प्रकारसे बालक बढ कर बड़ा हो जाता है इसी प्रकार पर्वत पहाड भी धीरे २ नित्य बढ़ते हैं। मनुष्यको यदि लोहा पकड़ना हो तो मनुष्यको लोहेके पास

जाना पड़ता है। तब लोह-चुम्बक नामक पत्थर अपने स्थान पर रह कर अपनी चेतना शक्तिसे लोहेको अपनी तरफ खैंच लेता है। मनुष्यके पेटमें पथरी रोग हो जाता है, वह जीवित पत्थर होनेके कारण नित्य बढता है। मनुष्यके पेटमें काष्ठोदर रोग हो जाता है और उससे काठा पत्थर सा पेट बन जाता है और नित्य बढ़ता रहता है। क्योंकि वह भी एक तरहका जीवित पत्थर होता है। मछलीके पेटमे रहा हुआ मोती भी एक प्रकारका पत्थर है और वह नित्य बढ़ता है। जिस प्रकार मनुष्यके शरीरकी हड्डी मे जीव होता है, इसी तरह पत्थरमे भी जीव होता है।

अप्काय

जिस प्रकार पक्षीके अडेमे प्रवाही पदार्थ पचेन्द्रिय पक्षीका पिड स्वरूप है। इसी भाति पानीके जीव भी एकेन्द्रिय जीवोंका पिड रूप है।

मनुष्य तथा तिर्यंच गर्भावस्थाके आरम्भमे वह प्रवाही पानीके रूपमे होता है, इसी तरह पानीमे भी जीव जानना चाहिये।

जिस प्रकार शरदीमे मनुष्यके मुंहमेसे वाफ निकलता है इसी प्रकार कुएं और नदियोके पानीमेसे भी शीतकालमे वाफ निकलता है।

जिस रीतिसे गर्मीमे मनुष्यका शरीर ठडा हो जाता है इसी तरह गर्मीकी मौसिममे कुएँका पानी ठडा हो जाता है।

जिस प्रकार मनुष्यकी प्रकृतिमे शीतलता और उष्णता होती है, इसी तरह पानीकी भी ठडी और गर्म प्रकृति होती है।

मनुष्यके शरीर पर ठंडकका असर जब पडता है तब ठंडकसे शरीर अकड जाता है, अंगोपांग सब ऐंठ जाते है। इसी प्रकार शीतकालमे तलावका पानी अकड जाता है, और वर्फ बनकर ऐंठ जाता है।

जिस प्रकार मनुष्य बाल्यावस्था, युवावस्था, और वृद्धावस्था, जैसे नवीन रूप अवस्थाऐं धारण करता है, इसी प्रकार पानी भी बाष्प, बर्फ, और वर्षा आदि अनेक रूप धारण करता है। जैसे मनुष्यका देह माताके गर्भमे पकता है, इसी तरह पानीभी छठे मासमे बादलोंमे गर्भके रूपसे परिपाक कालको पाकर वर्षाका रूप धारण करता है।

जिस प्रकार मनुष्यका कच्चा गर्भ किसी समय गल जाता है, इसी तरह पानीका कच्चा गर्भ भी गल जाता है, जिसे ओले-करा-गडे पड़ना भी कहते है।

तेऊकाय

जैसे मनुष्य श्वासोच्छ्वासके विना जी नहीं सकता, इसी प्रकार अग्नि भी श्वासोच्छ्वासके विना जीवित नहीं रह सकता। क्योंकि पुराने बंद कुएँमें दीपक एकदम बुझ जाता है। जिस भूमि गृहको कई वर्षोंमे खोला हो, उसमे दीपक तुरन्त बुझ जाता है। अतः स्वयं सिद्ध है कि अग्नि भी श्वास लेता है।

जिस प्रकार ज्वरमे मनुष्यका शरीर गर्म रहता है, इसी प्रकार अग्निके जीव भी गर्म रहते हैं।

मर जाने पर मनुष्यका शरीर जिस प्रकार ठडा पड जाता है, इसी तरह अग्निके जीव भी मर जानेके बाद ठडे पड़ जाते है।

जिस प्रकार आगिया (पटबीजना) के शरीरमे कुछ प्रकाश होता है, इसी प्रकार अग्निके जीवोंमे भी प्रकाश होता है।

जिस प्रकार मनुष्य चलता है, इसी तरह अग्नि भी चलता है यानी खुब फैलता है और बढ़ता चला जाता है।

जिस प्रकार मनुष्य ऑकसीजन (प्राणवायु) हवा लेता है और कार्वन (विषवायु) बाहर निकालता है, इसी प्रकार अग्निभी ऑक-सीजन हवा लेकर कार्बन हवा बाहर निकालता है।

जिस प्रकार मनुष्यको गर्मी पाकर अश्रु आजाते हैं, इसी प्रकार गंधक मिले अग्निमेसे पानी निकलता है। ज्वालामुखी पहाड़ों की ज्वालाओंमे अकसर यह अनुभव किया गया है।

वायुकाय

हवा हजारों कोस तक स्वतन्त्र रूपमे भागी चली जाती है।

हवा अपने चैतन्य बलसे विशालकाय वृक्षों और बड़े २ महलोंको गिरा देता है।

हवा अपना शरीर छोटेसे बड़ा बना लेता है। वर्तमानमे वैज्ञा-निकोंने पता लगाया है कि हवामे 'थेकसस' नामके सूक्ष्म जन्तु उडते है। और वे इतने सूक्ष्म है कि सुईके अग्रभाग जितने स्थानमे १,००,००० जन्तु सुखसे आरामके साथ बैठ सकते है।

का सत्व अपने पत्तोंके द्वारा चूस लेती है या खाद लेकर हवाके द्वारा मासाहार करती है।

अंगूर और सेवकी जड़ोंमे मछली या मरे हुए पशुका खाद दिया जाता है।

विलायती अनारकी जडें खूनमे सींची जाती हैं। भागमे काले सापको गाडनेसे भागमे भी विपका असर हो जाता है। उसके ४ पत्ते भी ५० आदमियोको भारी नशा दे सकते है।

कीटक भक्षी-वनस्पति

यह दो वार हिंसक क्रिया करने पर वह अपने पत्र नष्ट कर देती है। यह इङ्गलेड, आसाम, वर्मा, छोटा नागपुर, हुवलीमे होता है।

हिंसक वनस्पति

डाई वानियामे हिसक-वनस्पति ३ वार क्रिया करके नष्ट हो जाती है। यह एक अमेरिकन विज्ञानवेत्ता मि० ग्रिटका कहना है।

भेरी वनस्पति

इस वनस्पतिके पत्तोंके मिलनेसे घडेका आकार वन जाता है, और कीड़ा, पतंग आदि जन्तु जव उसमे घुसते है, तव तुरन्त मर जाते हैं और वह फिर गंदी हो कर नष्ट हो जाती है। यह अमेरिकामे होती है।

घड़ा वनस्पति

इसी तरह घड़ा वनस्पति भी छोटे २ कीडे खाकर नष्ट हो जाती है।

मनुष्य पशुकी तरह वनस्पतिसे भी दूध निकलता है। जिनमे कोई दूध पौष्टिक और कोई दूध विषयुक्त होता है।

मक्खन बनाने वाली वनस्पति

अफ्रीकाकी एक वनस्पतिके वीज पानीमे पक कर मक्खन वन जाते है।

तुख्मलंगा

भारतमे तुख्मलगा वनस्पतिके वीज भी हमने ऐसे ही होते, देखे है।

ज्ञान

मनुष्यकी तरह वनस्पतिमे भी ज्ञान होता है, परन्तु वहुत कम ज्ञान होता है।

समय बताने वाली वनस्पति

सूर्य मुखी फूल वादलोंमें भी दिनका अमुक ज्ञान करा देता है।

'टिहाटी' वनस्पतिमे सवेरे श्वेत दोपहरमे लाल और रातमे आस्मानी पानी वनकर समयकी सूचना किया करता है।

गिरने वाली खजूर

मद्रासमे खजूरका एक वृक्ष मध्य रातमे गिरने लगता है, और दोपहर तक सो जाता है, मध्यान्हके वाद फिर खडा होने लगता है और आधी रात तक पूर्णतया खडा हो जाता है।

रोगनाशक वनस्पति

दक्षिण महाराष्ट्रके कुरुकीपुर गावमे तलावके तट पर एक झाड़ है। जिसके नीचेका पानी और पत्तोंका सेवन करनेसे अनेक रोग नष्ट होते हैं।

प्रकाशक वनस्पति

अमेरिकाके तिवाडी प्रान्तकी बस्तीके पास सात फीट ऊंचा 'डाकी' नामक वृक्ष एक मील तक रोशनी देता है। जिसमे बारीक से बारीक अक्षर पढे जा सकते हैं।

सुनहरी वृक्ष

वृन्दावनके शेठके घर पर और रामेश्वरम्‌के देव मन्दिरमे गरुड स्तम्भ सोनेके ताड हैं, और सुना है कि चादीके ताड भी उग आए हैं।

नाना प्रकृति वाली वनस्पति

जिस प्रकार मनुष्यकी अच्छी बुरी शान्त क्रूर आदि कई प्रकारकी प्रकृति होती है। इसी प्रकार काचीपुरम् (मद्रास) के सदाफला नामक आमकी ४ शाखाऐं चारों दिशाओंमे फैली हुई हैं। जिनमे अनुक्रमसे खट्टा, मीठा, तीखा, कड़वे स्वादके आम लगते हैं। यह आमका वृक्ष पहले नित्य फल देता था।

गोला वृक्ष

गीनीमे गोला वृक्ष है, जिसका फल जमीन पर फूट कर तोपके

गोले जैसा शब्द करता है। इसका झाड ६० फीटका ऊंचा होता है। कहा जाता है कि इसके सामने बैठनेसे बालकका दिल मजबूत हो जाता है।

वायु शोधक फूल

जिस प्रकार मनुष्य मैले कपडेको धोकर साफ बना लेता है. इसी प्रकार फिलीपाइनमे वायु शोधक फूल ९ फिटका लम्बा मिला है।

कुमोदनी

कुमोदनी पानीको निर्मल बनाती है।

हँसने वाली वनस्पति

मनुष्यकी तरह हँस-मुखताका गुण वनस्पति मे भी होता है। अभी कोलाईके दरियाई बागमे ८० फिट ऊंचा गुलाबका फूलदार वृक्ष ५०,००० फूल प्रति वर्ष देता है ।

दीर्घायु वनस्पति

अमेरिकाके न्यूयार्क नगरके दूसरे प्रेसिडेंट मि० जॉन एडमकी स्त्रीने १४६ वर्ष पूर्व एक गुलाबका वृक्ष लगवाया था। यह अपने गाममे ही लगाया था जो अब तक फूल देता है।

लज्जा करने वाली वनस्पति

मनुष्य और स्त्रीकी तरह जल्दी ही लज्जित और सकुचित होनेवाली वनस्पति कर स्पर्शसे लजा जाती है।

लड़ाका और क्रोधी वनस्पति

मनुष्य जिस प्रकार स्वार्थसे क्रोधमे आकर प्रतिद्वन्दीको मारने दौड़ता है इसी प्रकार अफ्रीका का क्रोधी वृक्ष अपनी छायामे आने वालेके ऊपर अपनी शाखाएँ गिराकर उसके शरीरमे काटे चुभोकर प्राण लेनेके वाद शात होता है।

डरने वाली वनस्पति

जवागल वनस्पति हथेली पर ज्वर पीड़ित मनुष्यकी तरह कापती है। वह मनुष्यके गर्म स्पर्शसे डर जाती है। यह कश्मीरमे होती है।

अपेक्षक गुण वाली वनस्पति

जिस प्रकार मनुष्य अपने इष्ट मित्रके आने पर प्रसन्न होता है, और उसके वियोगका कष्ट मानता है, इसी प्रकार चन्द्र मुखी फूल चन्द्रके सामने खिल जाता है। सूर्यमुखी फूल सूर्य के सामने खिलता है। और इनके अस्त होने पर सकुन्चित हो जाता है। यह सब उसकी चैतन्यता का परिणाम है।

त्रसकाय

दो, तीन, चार और पाच इन्द्रिय वाले प्राणी तो विश्व विख्यात है ही। जिनमे भी चेतनाका विलक्षण ज्ञान पाया जाता है। और वे मनुष्यो पर अनेक विध उपकार करते हैं।

हलकारे कबूतर

सन्देश पहुंचाने वाले कबूतर एक मिनटमे १२१ गज उडते है, घटे भर मे ५४० मीलका सफर कर सकते है। कितनेक ६३६ माइल की गति वाले भी होते है, जिनकी आयु १६ वर्ष तक की होती है।

ऊंटके नाककी गन्धकी विशेषता

ऊट अपने नाक द्वारा तीन मीलके अन्दर तकके तालावको जान सकता है।

बोलोकी नकल

अमेरिकामे एक जातिका पक्षी दूसरे पक्षीके शब्दकी नकल कर सकता है।

खरगोश

खरगोश अपने बालोंसे अपने बच्चोंके लिये शय्या बना लेता है।

अक्षर बनने वाला सर्प

लन्दनके एक मदारीके पास इल (जल सांप) ऐसा पढ गया है कि–मदारीकी आज्ञानुसार अपने शरीरकी आकृति A B C D. जैसी बना लेता है।

हरटका बैल

हरटका बैल सौ चक्कर पूरे होजाने पर खडा हो जाता है।

बकरियोंका ज्ञान

यदि कुआं मिट्टीसे भरदिया गया है, और ज़मीनके बराबर हो कर भूगर्भ-गुप्त हो गया है। वहा बकरिया घेरा डालकर बैठेंगी उनकी आखें कितनी तेज है।

गऊओंका घेरा

डागके मुल्कमें सिंहके आने पर गउएँ घेरा बनाकर ग्वालेको बीच में कर लेती है। और सींगोंके प्रहार मार मार कर सिंहको भगा देती है। और मनुष्यकी जान बचा लेती हैं। इसी भांतिकी अनेक विशेषताएें नाना तिर्यंचोंमे पाई जाती हैं। जिनके ४८ भेद इस प्रकार हैं।

पृथ्वीकाय

पृथ्वी कायके ४ भेद—१ सूक्ष्म, २ बादर, ३ पर्याप्त, ४ अपर्याप्त।

अपकाय

अपकायके ४ भेद–१ सूक्ष्म, २ बादर, ३ पर्याप्त, ४ अपर्याप्त।

तेजस्काय

तेजस्कायके ४ भेद—१ सूक्ष्म, २ बादर, ३ पर्याप्त, ४ अपर्याप्त।

वायुकाय

वायुकायके ४ भेद—१ सूक्ष्म, २ बादर, ३ पर्याप्त, अपर्याप्त ४।

वनस्पतिकाय

वनस्पतिकायके ६ भेद--१ सूक्ष्म, २ साधारण, ३ प्रत्येक इन तीनोंका पर्याप्त और अपर्याप्त कुल ६।

पृथ्वीकायके भेदान्तर नाम

मणि, रत्न, मूंगा, हिंगलुक, हडताल, मनशिल, पारा, सोना, चांदी, तावा, लोहा, राग, सीसा, जस्ता, खड़िया, गेरु, अभ्रक, खार, नमक, काली-पीली मिट्टी, खानका खुदा हुआ कोयला आदि अनेक भेद पृथ्वीके पाये जाते हैं।

पानी

कुएँ, तालावका पानी, ओस, बरफ, ओले, वर्षाका पानी, धुंध, समुद्र जल, घनोदधि आदि सब जल सजीव हैं।

आग

काठकी आग, अग्नि कण, उल्का, वज्रकी आग, विजलीकी आग, लोहा पत्थर घर्षण करनेसे जो आग निकलती है इत्यादि सव आग सजीव हैं।

हवा

उद्भ्रामक वायु (वंटोलिया, बगुला) मन्द वायु, आधी, गूञ्जने वाला वायु, घनवात, तनुवात आदि वायु सजीव है। घनवात जमे घी की तरह गाढा होता है, तनुवात तपे घी की तरह तरल है।

घन वात स्वर्ग तथा नरक पृथ्वीका आधारभूत है। तनुवात नरक, पृथ्वीके नीचे है।

साधारण वनस्पति

एक शरीरमे अनन्त जीव होने को साधारण वनस्पति कहते है। वे कन्द आलू सूरन, मूली का कन्द आदि। अंकुर, नई कूंपल, पचरङ्गी नीलन, फूलन, नागछत्री, अदरक, हलदी, सौंठ, गाजर, आदि सब अनन्त जीव पिंड हैं। नागरमोथा, वथुआ, पालक, जिनमे वीज न आए हों ऐसे कोमल और कच्चे फल, जिनमे नसें न प्रगट हुई हों, सन आदिके पत्ते, थोहर, घीकुवार, गुग्गुल तथा काटने पर वो देनेसे उगने वाली गुर्च आदि सब साधारण वनस्पति हैं। इन्हे अनन्तकाय और वादर निगोद कहते हैं। ये सब गीली वनस्पतिया सजीव हैं।

अनन्तकायका लक्षण

जिनकी नसें, जोड़, गाठें, दीख नहीं पडतीं। टूटनेके वाद समान भाग, यानी घड़ी हुई टूटती है। जिनमे तंन्तु न हो, जिनके वारीक से वारीक टुकडे तक उग आते हैं। मूल, कन्द, स्कन्द, शाखा, प्रशाखा, त्वचा, पत्र, फूल, फल, बीज आदि ये सब अनन्तकाय होते हैं।

प्रत्येक वनस्पति

जिसके एक शरीरमे एक जीव हो, या सख्यात असंख्यात तक हों वह प्रत्येक वनस्पति है। वे फूल, फल, छाल, काष्ठ, पत्र, वीज आदि हैं।

इनका आयुष्य

प्रत्येक वनस्पतिको छोड कर पांचो स्थावरोंके जीव यानी सूक्ष्म जीवोकी आयु अन्तर्मुहूर्त है। ये आंखो द्वारा नहीं दीख सकते।

अन्तर्मुहूर्त क्या है ?

नव समयसे लगाकर एक समय कम दो घडी जितने कालको अन्तर्मुहूर्त कहते है। नव समयोंका अन्तर्मुहूर्त सबसे छोटा अर्थात् जघन्य होता है। और दो घड़ीमे एक समय कम हो तब वह उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कहलाता है। बीचके कालमे नव समयोंसे अगाड़ी एक एक समय बढ़ाते जाय वह उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक असंख्य अन्तर्मुहूर्त होते है।

समय क्या है ?

यह इतना सूक्ष्म काल है कि जिसका विभाग सर्वज्ञ द्वारा भी नहीं होता। जवान आदमी जब किसी पुराने कपड़ेको फाड़ता है तब, जब कि एक तार टूट कर दूसरा तार टूटता है उतने समयमें असंख्य समय लग जाते है। और मुहूर्त ४८ मिनटका होता है।

विकलेन्द्रिय

विकलेन्द्रियोके ६ भेद—२, ३, ४ इन्द्रिय, इन तीनोंका पर्याप्त और अपर्याप्त। सब मिलकर ६। पांच स्थावरोंके २२ और विकलेन्द्रियोंके ६, सब मिलकर २८ भेद तिर्यञ्चोंके हुए।

पञ्चेन्द्रियके २० भेद

* जलचर, † स्थलचर, + खेचर, × उरपुर, – भुजपुर ।

पाच सज्ञी, पाच असंज्ञी, इन दशोका अपर्याप्त और पर्याप्त । इसप्रकार २० भेद पचेन्द्रिय तिर्यंचोके होनेपर, तिर्यंचोंके सब मिल कर ४८ भेद पूर्ण हुए ।

मनुष्योंके ३०३ भेद

असि—तलवार आदि शस्त्र चलानेका कर्म ।

कृषि—खेती-बाड़ीका कर्म ।

खेत—जिस भूमिमे हल चलाया जाता है ।

सेच—जिसे पानी द्वारा सींचा जाता है ।

अवखेत—जहा विना बोए खड़ अनाज होता है ।

मषी—लिखने, पढने, गणित करनेका कर्म ।

साधु, साध्वी, धर्म, राजनीति कर्म ।

पुरुषकी ७२ कला सीखनेका कर्म ।

स्त्रीकी ६४ कला सीखनेका कर्म ।

---

* मच्छ, कच्छ, मगर, गाह, सुसुमारादि ।

† एक खुरवाले, दो खुरवाले गोल पैरवाले, पंजोंवाले, आदि ।

+ चर्मपक्षी, लोमपक्षी, सकोचपक्षी, विततपक्षी ।

× साप, अजगर, महोरग, आशालिकादि ।

– गोह, नेउला, गिलहरी, चूहा, छछून्दरादि ।

विज्ञान—नाना वस्तुओंको मिलाकर नाना वस्तुओंका आविष्कार करनेका कर्म ।

शिल्प—सब प्रकारकी दस्तकारीसे पेट पालनेका कर्म ।

कर्मभूमि

इत्यादि कर्म जहा विद्यमान हों वे मनुष्य कर्मभूमिके होते हैं ।

अकर्मभूमि

जहा ऊपर लिखी बातें न मिलती हों वे मनुष्य अकर्मभूमिके होते हैं ।

कर्मभूमिक १५ हैं

५ भरतक्षेत्र, ५ ऐरावर्त, ५ विदेह ये १५ क्षेत्र कर्मभूमि मनुष्योंके हैं ।

जम्बूद्वीपमें

१—भरत, १—ऐरावर्त, १—विदेह, ये तीन क्षेत्र जम्बूद्वीपमे पाये जाते हैं ।

धातुखंडके ६ क्षेत्र

२—भरत, २—ऐरावर्त, २—विदेह ।

पुष्करार्धके ६ क्षेत्र

२—भरत, २—ऐरावर्त, २—महाविदेह । सब मिलकर १५ कर्मभूमि क्षेत्र होते हैं ।

तीस अकर्मभूमि क्षेत्र

५ देवकुरु, ५ उत्तरकुरु, ५ हरिवर्ष, ५ रम्यक वर्ष, ५ हैमवर्त, ५ हैरण्यवर्त । ये सब तीस हैं।

जम्बूद्वीपके क्षेत्र

१—देवकुरु, १—उत्तरकुरु, १—हरिवर्ष, १—रम्यक वर्ष, १—हैमवर्त, १—हैरण्यवर्त ।

धातृखंडके क्षेत्र

२—देवकुरु, २—उत्तरकुरु, २—हरिवर्ष, २—रम्यकवर्ष, २—हैमवत, २ हैरण्यवर्त ।

पुष्करार्धके क्षेत्र

२—देवकुरु, २—उत्तरकुरु, २—हरिवर्ष, २—रम्यक वर्ष, २—हैमवर्त, २—हैरण्यवर्त्त ।

सब मिलकर २।। द्वीपमे अकर्मभूमि मनुष्योंके ३० क्षेत्र हैं।

अन्तर्द्वीपोंके नाम

१—एगरुवा, २—अभासिया, ३—वेसाणिया, ४—णंगोलिया, ५—हयकण्णा, ६—गयकण्णा, ७—गोकण्णा, ८—सकुलिकण्णा, ९—आयसमुहे, १०—मिट्टमुहे, ११—अयोमुहे, १२—गोमुहे, १३—आसमुहे, १४—हत्थिमुहे, १५—सीहमुहे, १६—वग्घमुहे, १७—आसकन्ने, १८—हत्थिकन्ने, १९—अकन्न, २०—कण्ण पाउरण, २१—उक्कामुहे, २२—मेहमुहे, २३—विज्जुमुहे, २४—विज्जुदंते, २५—घणदंते, २६—लट्ठदंते, २७—गुढदंते, २८—सुद्धदंते ।

अन्तर्द्वीप कहां हैं ?

जम्बूद्वीपके दक्षिणकी ओर चूलहेम पर्वत है, और उत्तर दिशामे शिखरी पर्वत है, इन दोनों पर्व्वतोंमे प्रत्येक पर्व्वतकी ४-४ दाढाएँ हैं। एक-एक दाढा पर्व्वतपर सात-सात क्षेत्र हैं। इसलिये इन्हें अन्तर्द्वीप कहते हैं। और उक्त दोनों पर्वतोंपर २८-२८ अन्तर्द्वीप है। और फिर दोनों पर्वतोंपर ५६ अन्तर्द्वीप है।

१—३०० योजनका अन्तर, ३०० योजनका द्वीप।

२—४०० योजनका अन्तर, ४०० योजनका द्वीप।

३—५०० योजनका अन्तर, ५०० योजनका द्वीप।

४—६०० योजनका अन्तर—६०० योजनका द्वीप।

५—७०० योजनका अन्तर—७०० योजनका द्वीप।

६—८०० योजनका अन्तर—८०० योजनका द्वीप।

७—९०० योजनका अन्तर—९०० योजनका द्वीप।

सबका जोड़ ८४०० योजनका अन्तर और ८४०० योजनका क्षेत्र होता है।

इनका वर्णन कहां है ?

जम्बूद्वीपके दोनों पर्वतोंकी सीमा पर तथा दोनों पर्व्वतोंकी संध पर लवण समुद्रमे ५६ अन्तर्द्वीप बताए गये है। इनका पूरा वर्णन जीवाभिगम सूत्रमे है।

ये २८ पूर्व और २८ पश्चिम में होनेसे ५६ हुए।

५६ अन्तर्द्वीप।

३० अकर्मभूमि।

१५ कर्मभूमि।

सब मिलकर १०१ होते है।

१०१ पर्याप्त है।

१०१ अपर्याप्त है।

इस तरह २०२ सञ्ज्ञी मनुष्योंके भेद है।

सम्मूर्छिम-असंज्ञो-मनुष्य

इन ही १०१ क्षेत्रोंमे सम्मूर्छिम, असंज्ञी, मनुष्य अपर्याप्त और १४ स्थानोंमे पैदा होते हैं।

१४ स्थानोंके नाम

१—उच्चारेसुवा—मलमूत्रमे उत्पन्न होते है।

२—प्रस्रवणेसुवा—लघुशङ्कामे भी होते हैं।

३—खेलेसुवा—कफमे होजाते है।

४—सघाणेसुवा—नाक के मलमे पैदा होते हैं।

५—वतेसुवा—वमनमे उत्पन्न होते हैं

६—पित्तेसुवा—पित्तके निकल जाने पर उसमे होते है।

७—पूएसुवा—रसी, राधमे हो जाते है।

८—सोणिएसुवा—खूनमे भी होजाते है।

९—सुक्केसुवा—वीर्यमे होते है।

१०—सुक्कपोग्गलपरिसाडेसुवा—वीर्यादिक पुद्गल फिर गीला होने पर होते है।

११—विगत जीवक्लेवरेसुवा—अन्तर्मुहूर्तके वाद मृतकमे जीव हो जाते है।

१२—इत्थिपुरिससजोगेसुवा—स्त्री पुरुषके संयोगमे भी उत्पन्न होते हैं।

१३—नगर निद्धवणेसुवा—नगरकी मोरियोंमे भी हो जाते हैं।

१४—सव्वेसु चेव असुइ ठाणेसुवा—अङ्गोपागादिक सव अशुचि स्थानोंमे हो जाते हैं। ये भी १०१ ही होते हैं। इनके मिलाने पर मनुष्योंके ३०३ भेद होते हैं।

१६८ भेद देवोंके होते हैं

भुवनवासी देव १० हैं।

१ असुर कुमार—१ नागकुमार—३ सुवर्ण कुमार—४ विज्जु कुमार ५ अग्गिकुमार—६ दीवकुमार—७ उदही कुमार—८ दिसा कुमार ९ पवन कुमार—१० थणिय कुमार।

१६ व्यंतर

१ पिशाच—२ भूत—३ यक्ष—४ राक्षस—५ किन्नर—६ किम्पुरुष —७ महोरग—८ गधर्व्व—ये उच्च जातिके होते हैं। ९ आणपन्नि—१० पाणपन्नि—११ इसिवाय—१२ भूयवाय १३ कन्दी—१४ महाकंदी—१५ कुहुड—१६ पतंगदेव।

१० प्रकारके ज्योतिषी देव

१ चन्द्रमा—२ सूर्य—३ ग्रह—४ नक्षत्र—५ तारे, जिनमे पाच चलने फिरने हैं, और पाच स्थिर हैं। अढाई द्वीपमे चलने फिरने वाले हैं, और अढाई द्वीपसे बाहर स्थिर हैं।

तिर्यक जृम्भक देव

१ अन्नजम्भका—२ पानजम्भका—३ लयणजम्भका—४ सयणजभका—५ वत्थजभका—६ पुप्फजभका—७ पुप्फ फलजंभका—८ फलजंभका—९ बीजजभका—१० आवन्तिजभका।

१२ कल्प-देवलोक

१ सुधर्मदेव लोक—२ ईशानदेवलोक—३ सनत्कुमारदेवलोक ४ माहेन्द्रदेवलोक—५ ब्रह्मदेवलोक—६ लान्तकदेवलोक—७ महाशुक्रदेवलोक—८ सहस्रारदेवलोक—९ आण्यदेवलोक—१० पाण्य देवलोक—११ अरण्यदेवलोक—१२ अच्युतदेवलोक।

इनमें देवोंका कितना-कितना आयुष्य है?

१—देवलोकमे जघन्य १ पल्य, उत्कृष्ट २ सागर।

२—मे जघन्य १ पल्यसे अधिक, उत्कृष्ट २ सागरसे अधिक।

३—मे जघन्य २ सागर उत्कृष्ठ ७ सागर।

४—मे जघन्य २ से अधिक, उत्कृष्ट ७ सागरसे अधिक।

५—मे जघन्य ७ सागर, उत्कृष्ट १० सागर।

६—मे जघन्य १० सागर, उत्कृष्ट १४ सागर।

७—मे जघन्य १४ सागर, उत्कृष्ट १७ सागर।

८—मे जघन्य १७ सागर, उत्कृष्ट १८ सागर।

९—मे जघन्य १८ सागर, उत्कृष्ट १९ सागर।

१०—मे जघन्य १९ सागर, उत्कृष्ट २० सागर।

११—मे जघन्य २० सागर, उत्कृष्ट २१ सागर।

१२—मे जघन्य २१ सागर उत्कृष्ट २२ सागर।

१२ स्वर्गोंमें विमान संख्या

१—मे ३२,००,००० विमान संख्या, २—मे २८,००,०००, ३—मे १२,००.०००, ४—मे ८,००,०००, ५—मे ४,००,०००, ६—मे ५०,०००, ७—मे ४०,०००, ८—मे ६०००, ९—१०—में ४००, ११—१२—मे ३००, विमान सख्या।

९ ग्रैवेयकदेवलोक

१—भद्दे, २—सुभद्दे, ३—सुजाय, ४—सुमानस, ५—पियदंसणे, ६—सुदंसणे, ७—अमोहे, ८—सपडीवुद्धे, ९—जसोधरे।

पांच अनुत्तर विमान

१—विजय, २—विजयंत, ३—जयन्त, ४—अपराजित, ५—सर्वार्थसिद्धि।

नव लोकान्तिक देव

१—साइचे, २—माइचे, ३—वह्नी, ४—वरुणी, ५—गन्धतोया, ६—तुसीया, ७—अव्वावाह, ८—अगिच्चा चेव, ९—रिट्ठाय।

तीन किल्विषिक देव

३—पल्यवान, ३—सागरवान, १३—सागरवान्।

ये कहां रहते हैं ?

३—पल्यवान् ज्योतिप देवोंसे ऊपर, १-२ देवलोकके नीचे रहते है।

३—सागरवान् किल्विष देव १-२ स्वर्गसे ऊपर और ३-४ देवलोकके नीचे रहते है।

१३—सागरवान् किल्विषदेव ५ वें स्वर्गके ऊपर और ६ वें स्वर्गके नीचे रहते है।

१५ परम अधार्मिक देव

१—अम्बे, २—अम्बरसे, ३—सामे, ४—सवले, ५—रुद्दे, ६—विरुद्दे, ७—काले, ८—महाकाले, ९—असिपत्ते, १०—धनुपत्त, ११—कुम्भी, १२—वालुए, १३—वेयारणे, १४—खरखरे, १५—महाघोपे।

ये सब ९९ भेद देवोंके पर्याप्त-अपर्याप्त रूप दो भाग करनेसे १९८ भेद होते हैं।

तिर्यंचोंके ४८, नारकके १४, मनुष्योंके ३०३, देवोंके १९८ सब मिलकर ५६३ भेद जीवतत्वके सम्पूर्ण हुए।

इति जीव-तत्व ।

अजीव-तत्त्व

अजीवका लक्षण

जिसमे ज्ञान नहीं होता है।

जड़, अचेतन, अजीव एक ही बात है।

अजीव पांच होते हैं

धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल।

पुद्गल

जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण ये चार गुण पाए जावें उसे 'पुद्गल' कहते हैं।

यह द्रव्य—

अचेतन

है। चैतन्य गुणकी अपेक्षासे अचेतन है।

अनेक अस्तिकाय

अस्तित्व गुण तथा शरीरके समान बहुप्रदेशी होनेकी अपेक्षासे।

परिणामी

स्वभाव तथा विभाव पर्याय रूप परिणमनकी अपेक्षासे परिणामी है।

असर्वगत

यद्यपि पुद्गल लोकरूप महास्कन्धकी अपेक्षासे सर्वगत है, तथापि महास्कन्धसे भिन्न शेष स्कन्धोंकी अपेक्षासे वह असर्वगत है।

प्रवेश-रहित

इसका खुलासा जीवतत्वमे आ चुका है, अतः वहासे देखो।

अकर्ता

यद्यपि पुद्गलादि पाचों द्रव्योंमे अपने २ परिणामोंके द्वारा होनेवाला परिणमनरूप कर्तृत्व पाया जाता है, अर्थात् पुद्गलादिक पाचों ही द्रव्य अपने अपने परिणमनके कर्ता हैं, तथापि वे वास्तवमे पुण्य पापादिके कर्ता न होनेसे अकर्ता ही हैं।

सक्रिय

एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें गमन करने रूप अर्थात् हलन, चलन रूप क्रियाकी अपेक्षासे सक्रिय है।

संख्यात-असंख्यात-व अनन्त प्रदेशी

यद्यपि परमाणु वर्तमान पर्यायकी अपेक्षासे एक प्रदेशी है तथापि वह भूत और भविष्यत् पर्यायकी अपेक्षासे वहुप्रदेशी कहा जाता है। क्योंकि स्निग्ध व रूक्ष गुणके सम्वन्धसे उसमें भी स्कन्ध रूप होनेकी शक्ति है, इसलिये उसको–परमाणुके उपचार से वहुप्रदेशी कहा है।

अनित्य

यद्यपि द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे पुद्गल द्रव्य नित्य है, तथापि अगुरुलघुके परिणमनरूप स्वभावपर्याय तथा विभावपर्यायकी अपेक्षासे अनित्य कहा जाता है।

अक्षेत्र रूप

इसका खुलासा जीव-तत्त्वके विवेचनमें आ चुका है।

कारण व कार्यरूप

परमाणु व स्कन्ध दोनोंकी अपेक्षा पुद्गलद्रव्य कारण तथा कार्य-रूप है। क्योंकि जिस प्रकार परमाणु द्वयणुकादिक स्कन्धोंकी उत्पत्तिमें निमित्त है। इसलिये कथंचित् कारणरूप तथा स्कन्धोंके भेद (खण्ड) होनेसे उत्पन्न होते हैं, इसलिये कथंचित् कार्यरूप हैं। उसी प्रकार द्वयणुकादिक स्कन्ध परमाणुओंके सघातसे उत्पन्न होते हैं। इसलिए कथंचित् कार्यरूप तथा परमाणुओंकी उत्पत्तिमें निमित्त हैं इसलिए कथंचित कारण रूप है। अथवा पुद्गलके पर-माणुओंकी अपेक्षासे ही जीवके शरीर, वचन, मन तथा श्वासोच्छ्वास ही वनते हैं। इसलिए वह (पुद्गलद्रव्य) कारणरूप कहा जाता है।

मूर्तिक

स्पर्श, रस, गन्ध और वर्णकी अपेक्षासे मूर्तिक है।

स्थूल

स्कन्धको अपेक्षासे है।

सूक्ष्म

परमाणुकी अपेक्षासे है।

१ धर्मद्रव्य

जो जीव और पुद्गलको गमन करनेमे सहकारी हो उसे धर्मद्रव्य कहते हैं। जैसे जल गतिक्रिया परिणित मछलीको उदासीन रूपसे सहायता पहुचाता है। वैसे ही धर्मद्रव्य भी गतिक्रिया परिणित जीव तथा पुद्गलको उदासीन रूपसे सहायता पहुंचाता है। क्योकि जिस प्रकार जल ठहरी हुई मछलियोंको जबरदस्ती गमन नहीं कराता है, किन्तु यदि वे स्वयं गमन करें तो जल उनके गमनमे उदासीनरूपसे सहकारी हो जाता है। उसी प्रकार धर्मद्रव्य ठहरे हुए जीव और पुद्गलको जबरन् नहीं चलाता, किन्तु यदि वे स्वयं गमन करें तो धर्मद्रव्य उनके गमनमे उदासीन रूपसे सहकारी हो जाता है।

यह द्रव्य—

अचेतन

चैतन्य गुणके अभावकी अपेक्षा अचेतन है। चेतनारूप नहीं है।

एक

अखंडित होनेकी अपेक्षा एक है।

असर्वगत

यद्यपि धर्मद्रव्य लोकाकाशमे व्याप्त होनेकी अपेक्षासे सर्वगत कहा जाता है, तथापि सम्पूर्ण आकाशमें व्याप्त नहीं होनेके कारण उसे असर्वगत कहते है।

अकार्यरूप

यह किसी अन्यके द्वारा उत्पन्न नहीं होता।

अस्तिकाय

अस्तित्व गुण तथा शरीरके समान बहुप्रदेशी होनेकी अपेक्षा अस्तिकाय है।

अपरिणामी

यद्यपि धर्मद्रव्य स्वभाव पर्यायरूप परिणमनकी अपेक्षासे परिणामी है तथापि विभावव्यंजन पर्यायरूप परिणमनके अभावकी मुख्यताकी अपेक्षासे वह अपरिणामी कहा जाता है।

प्रवेशरहित

यह जीवतत्त्वमे समझा दिया गया है।

अकर्ता

इसका विवेचन पुद्गल द्रव्यमे किया गया है।

निष्क्रिय

एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमे गमन करने रूप क्रियाके अभावकी अपेक्षा निष्क्रिय है।

कारणरूप

गतिक्रिया—परिणित जीव और पुद्गलके गतिरूपी कार्यमे उदासीन रूपसे सहायक होनेकी अपेक्षासे कारणरूप है।

नित्य

यद्यपि धर्मद्रव्य अर्थपर्यायकी अपेक्षासे अनित्य है। तथापि व्यंजनपर्यायके अभावकी मुख्यतासे अथवा अपने स्वरूपसे च्युत नहीं होनेकी अपेक्षासे नित्य कहा जाता है।

अक्षेत्ररूप

इसका खुलासा जीवतत्वमे किया जा चुका है।

यह लोकके बराबर—असंख्यात प्रदेशी है। तथा—

अमूर्तिक

भी है। स्पर्श, रस, तथा गन्ध आदि पुद्गल सम्बन्धी गुण न पाए जानेके कारण अमूर्तिक है।

२ अधर्मद्रव्य

जो जीव और पुद्गलको ठहरानेमे सहकारी हो उसे अधर्मद्रव्य कहते हैं।

उदाहरण

जैसे पृथ्वी गति पूर्वक स्थिति रूप क्रियासे परिणित पथिकोंको उदासीन रूपसे सहायता पहुंचाती है, वैसे ही 'अधर्मद्रव्य' गतिपूर्वक स्थितिरूप क्रिया परिणित (युक्त) जीव और पुद्गलको उदासीन रूपसे सहायता पहुंचाता है। क्योंकि जिस प्रकार पृथ्वी गमन करनेवाले गाय, बैल, घोडा तथा पथिकोंको कभी जबरदस्तीसे नहीं ठहराती है किन्तु यदि वे स्वयं ठहरें तो पृथ्वी उनके ठहरनेमें

सहकारिणी हो जाती है। उसी प्रकार 'अधर्मद्रव्य' गमन करते हुए जीव और पुद्गलको जबरन नहीं ठहराता है, किन्तु यदि वे स्वयं ठहरें तो 'अधर्मद्रव्य' उनके ठहरनेमे सहकारी हो जाता है।

यह १—अचेतन, २—एक, ३—असर्वगत, ४—अकार्यरूप, ५—अस्तिकाय, ६—अपरिणामी, ७—प्रवेशरहित, ८—अकर्त्ता, ९—निष्क्रिय, १०—नित्य, ११—अक्षेत्ररूप, लोकाकाशके बराबर-असंख्यातप्रदेशी—१२—अमूर्तिक और कारण रूप है—१३।

३ आकाश

जो जीवादिक द्रव्योको ठहरनेके लिये युगपत् स्थान देता है उसे आकाश कहते हैं। यह १*—द्रव्य-अचेतन, २—एक, ३—अकार्य-रूप, ४—अपरिणामी, ५—अस्तिकाय, ६—प्रवेशरहित, ७—अकर्त्ता, ८—निष्क्रिय, ९—अमूर्तिक, १०—अनन्तप्रदेशी,

---

१ से १२ तक धर्मद्रव्यमे जिस अपेक्षासे इन विशेषणोंका सद्भाव बताया है, उसी अपेक्षासे अधर्मद्रव्यमें इन विशेषणोका सद्भाव समझना चाहिये। परन्तु यहा धर्मद्रव्य न लगाकर अधर्मद्रव्य समझना चाहिये। १३ स्थितिरूप क्रियासे युक्त जीव और पुद्गलके स्थितिरूपी कार्यमे उदासीन रूपसे सहायक होनेकी अपेक्षासे कारणरूप है।

* १ से १० तक धर्मद्रव्यमे जिस अपेक्षासे इन विशेषणोंका सद्भाव बताया गया है उसी अपेक्षासे ही आकाश द्रव्यमे इन विशेषणों-का सद्भाव समझना चाहिये। परन्तु यहापर धर्मद्रव्य न समझ कर आकाशद्रव्य जानना चाहिये।

११—कारणरूप, १२—सर्वगत तथा १३—क्षेत्ररूप है।

४ काल

जो जीवादिक द्रव्योंके परिणमनमे निमित्त कारण हो, उसे काल कहते हैं।

जैसे कुम्हारके चक्र भ्रमणमे उस चक्रके नीचेकी कीली उदासीन रूपसे सहायता पहुंचाती है, वैसे ही जीवादिक द्रव्योके परिणमनमे कालद्रव्य उदासीन रूपसे सहायता पहुचाता है। क्योंकि जिस प्रकार कीली ठहरे हुए चाकको जवरदस्ती भ्रमण नहीं कराती है, किन्तु यदि वह चाक भ्रमण करे तो उसके भ्रमणमे कीली निमित्त कारण हो जाती है। उसी प्रकार कालद्रव्य जीवादिक द्रव्योंके परिणमनको जवरदस्ती नहीं कराता है, किन्तु अपनी-अपनी उपादान शक्तिसे युक्त होकर स्वयं परिणमन करनेवाले जीवादिक द्रव्योके परिणमनमे कालद्रव्य केवल निमित्त कारण हो जाता है।

यह १—द्रव्य अचेतन, २—अनेक अकार्यरूप, ३—अपरिणामी, ४—प्रवेशरहित, ५-अकर्त्ता, ६-निष्क्रिय, ७-नित्य, ८-अक्षेत्ररूप, ९-अमूर्तिक

११—सम्पूर्ण द्रव्योंको युगपत् अवकाश दान देने रूप कार्यकी अपेक्षामे अर्थात् आकाश द्रव्य जीवादिक द्रव्योंके अवगाहरूप कार्योंको करता है। इसलिये वह कारण रूप समझा जाता है। १२—लोक और अलोकमे व्याप्त होनेकी अपेक्षा। १३—सम्पूर्ण द्रव्योंके अवकाश दान देनेकी सामर्थ्यकी अपेक्षासे।

१ से ९ तक धर्मद्रव्यमें जिस अपेक्षासे इन विशेषणोंका सद्भाव बताया गया है उसी अपेक्षासे कालद्रव्यमें भी इन विशेषणोंका सद्भाव समझना चाहिये। परन्तु यहांपर धर्मद्रव्य न लगाकर कालद्रव्य लगाना चाहिये।

१०—अनस्तिकाय, ११—एकप्रदेशी, १२—कारणरूप, और १३—असर्वगत है।

ये सब द्रव्य है। अत: द्रव्यके लक्षणको कहते हैं।

द्रव्यका लक्षण

द्रव्यका लक्षण वास्तवमे 'सत्' है, जिनवरके सिद्धान्तमे 'सन्' भी द्रव्यका लक्षण कहा है। और 'गुण और पर्यायवान्' को भी द्रव्य कहते हैं, इस प्रकार द्रव्यके दो लक्षण हो जाते हैं। मगर इन दोनों ही लक्षणों मे परस्पर कुछ भी विरोध तथा अर्थभेद नहीं है। क्योकि कथंचित् नित्यानित्यके भेदसे सत् दो प्रकारका कहा जाता है। (ध्रौव्य की अपेक्षा से सन् नित्य कहा जाता है, तथा उत्पाद-व्ययकी अपेक्षासे अनित्य माना गया है) उनमे से नित्यात्मक अंशसे गुणका और अनित्यात्मक अशसे पर्यायका ग्रहण होता है। कारण कि—गुणोमे कथचित् नित्यत्वकी और पर्यायोंमे अनित्यत्व की मुख्यता है। इसलिए जिस प्रकार 'सद्द्रव्य-लक्षणम्' इस द्रव्यके लक्षणसे द्रव्य कथंचित् नित्यानित्यात्मक सिद्ध

१०—बहुप्रदेशी न होनेकी अपेक्षासे अनस्तिकाय है। ११—द्वितीयादिक प्रदेशोके न होनेसे कालद्रव्यको अप्रदेशी भी कहा है। १२—कालद्रव्य जीवादिक द्रव्योंके वर्तनारूप कार्यको करता है। इसलिये वह कारणरूप कहा जाता है। १३—यद्यपि कालद्रव्य लोकके प्रदेशोंके बराबर नाना कालाणुओंकी अपेक्षासे सर्वगत कहा जाता है फिर भी एक-एक कालाणुकी अपेक्षा से उसे असर्वगत कहते हैं।

होता है, उसी प्रकार 'गुणपर्ययवद्द्रव्यम्' इस द्रव्यके लक्षणसे भी द्रव्य कथंचित् नित्यानित्यात्मक सिद्ध होता है, अथवा गुणकी और नित्यत्व (ध्रौव्य) की परस्परमे व्याप्ति है। तथा पर्यायकी और अनित्यत्व (उत्पादव्यय) की परस्परमे व्याप्ति है, इसलिए 'द्रव्य गुणवान है। ऐसा कहने से ही 'द्रव्य ध्रौव्यवान है' ऐसा अथवा 'द्रव्यध्रौव्यवान् है' ऐसा कहने से ही 'द्रव्य गुणवान् है' ऐसा सिद्ध हो जाता है। और "द्रव्य पर्यायवान् है" ऐसा कहनेसे ही द्रव्य उत्पाद व्यय युक्त है" ऐसा अथवा "द्रव्य उत्पाद-व्यय युक्त है" ऐसा कहने से ही "द्रव्य पर्यायवान् है" ऐसा सिद्ध हो जाता है। अर्थात् सद्द्रव्य लक्षण" इस द्रव्यके लक्षणमे 'गुणपर्ययवद्द्रव्य' यह और 'गुणपर्ययवद्द्रव्यं' इसमे 'सद्द्रव्यलक्षण' यह द्रव्यका लक्षण गर्भित हो जाता है। क्योंकि उपर्युक्त कथनानुसार द्रव्यके दोनों ही लक्षण वाक्योंका एक अर्थ है।

इस प्रकार द्रव्यके दोनों लक्षणोंमे परस्पर अविनाभाव होने से कुछ भी विरोध तथा अर्थभेद नहीं है। केवल विवक्षावश दो कहे गये हैं। अर्थात अभेदविवक्षामे 'सन्' द्रव्यका लक्षण कहा गयाहै। और लक्ष्य लक्षणरूप भेदविवक्षासे 'गुणपर्ययवान्' द्रव्यका लक्षण कहा गया है।

सत्का लक्षण

जो उत्पाद[१] व्यय[२] और ध्रौव्य[३] से युक्त हो उसे 'सत्' कहते हैं।

१—द्रव्यमे नवीन पर्यायकी उत्पत्तिको उत्पाद कहते हैं।

२—द्रव्यकी पूर्वपर्यायके नाशको व्यय कहते हैं।

३—पूर्व और उत्तर पर्यायमे रहने वाली प्रत्यभिज्ञानकी कारण भूत द्रव्यकी नित्यताको ध्रौव्य कहते हैं।

यद्यपि दण्डसे युक्त जिनदत्त इत्यादि भेद अर्थमे ही युक्त शब्द आता है, तथापि यहाँ पर रूपादिक युक्त घट, हस्तादिक युक्त शरीर तथा सार युक्त स्तंभकी तरह कथञ्चित अभेद अर्थमे ही युक्त शब्दको ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि उत्पादादिक त्रयात्मक ही सत है। अर्थात् सत्से उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य भिन्न नहीं है। तथा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यसे सत् भिन्न नहीं है। किन्तु उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य ये तीनों ही सद्रूप है। इसलिए इन तीनोंको ही एक शब्दसे सत कहते हैं। और ये उत्पादादिक तीनों पर्यायोंमे होते हैं। द्रव्यमे नहीं। किन्तु द्रव्यसे पर्यायें कथंचित अभिन्न हैं। इसलिए द्रव्यमे उत्पादादि होते है ऐसा कहा गया है।

यहाँ पर इतना और समझ लेना है कि—उत्पाद-व्यय तथा ध्रौव्य इन तीनोंके होनेका एक ही समय है भिन्न भिन्न नहीं। जैसे जो समय मनुष्यकी उत्पत्तिका है, वही समय देव पर्यायके नाश तथा देव व मनुष्य दोनो ही पर्यायोंमे जीवद्रव्यके पाए जाने रूप ध्रौव्यका है। अथवा जो समय घट पर्यायकी उत्पत्तिका है वही समय पिंड पर्यायके नाश तथा घट या पिंड दोनों ही पर्यायोंमे मृतिकात्व (मिट्टी-पन) सामान्य धर्ममे पाए जाने रूप ध्रौव्यका है।

गुण क्या हैं ?

द्रव्योंके गुणोंका विवरण सामान्य और विशेष रूपसे कहा जा चुका है उनके नाम वहाँ से जान लेना चाहिए।

सामान्य गुण किसमें कितने पाये जाते हैं ?

एक एक द्रव्यमे आठ-आठ सामान्य गुण होते है। पुद्गल

द्रव्यमे दश सामान्य गुणोंमे से चेतना और अमूर्तत्वको छोड़ कर शेषके ये आठ गुण पाये जाते है। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व, अचेतनत्व और मूर्तत्व ये आठ गुण पाये जाते है ।

धर्म, अधर्म, आकाश और कालमे से प्रत्येक द्रव्यमे चेतनत्व और मूर्तत्व इन दो गुणोंको छोड कर बाकीके अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व, अचेतनत्व और अमूर्तत्व ये आठ-आठ गुण पाये जाते हैं ।

विशेष गुण

स्पर्श, रस, गन्धवर्ण, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाहनाहेतुत्व, वर्तना हेतुत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व और अमूर्तत्व इन गुणोंमेसे पुद्गलमे स्पर्श, रस, गन्धवर्ण, मूर्तत्व, अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये ६ विशेष गुण पाये जाते हैं ।

धर्मादि चार द्रव्योंसे यानी धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चार द्रव्योंमे से प्रत्येक द्रव्यमे तीन २ विशेप गुण पाये जाते हैं ।

धर्म द्रव्यके विशेष गुण

धर्मद्रव्यमे गति हेतुत्व, अमूर्तत्व-अचेतनत्व ये तीन विशेप गुण पाये जाते हैं ।

अधर्म द्रव्यके विशेष गुण

अधर्म द्रव्यमे स्थितिहेतुत्व-अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये तीन विशेप गुण पाये जाते हैं ।

आकाश द्रव्यके विशेष गुण

आकाश द्रव्यमें अवगाहनहेतुत्व, अमूर्तत्व, और अचेतनत्व, ये तीन विशेष गुण पाये जाते हैं।

काल द्रव्यके विशेष गुण

काल द्रव्यमे वर्तना हेतुत्व-अमूर्तत्व-अचेतनत्व ये तीन विशेष गुण पाये जाते हैं।

अन्तके चेतनत्व-अचेतनत्व-मूर्तत्व और अमूर्तत्व ये चार गुण स्वजातिकी अपेक्षासे सामान्य गुण तथा विजातिकी अपेक्षासे विशेष गुण कहे जाते है।

१—जीव अनन्तानन्त हैं इसलिये चेतनत्व गुण सामान्य रूपसे सब जीवोंमे पाये जानेके कारण वह जीवका सामान्य गुण कहा जाता है। और पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन पाच द्रव्योंमे न पाये जाने के कारण वही (चेतनत्व) गुण जीवका विशेष गुण कहा जाता है।

२—अचेतनत्व गुण सामान्य रूपसे पुद्गलादि पाचों ही द्रव्योंमें पाया जाता है, इसलिये वह उन (पुद्गलादि पाचों द्रव्यों) का सामान्य गुण कहा जाता है। और वह जीवमे नहीं पाया जाता है इसलिये वही अचेतनत्व गुण उन पुद्गलादिक का विशेष गुण कहा जाता है।

३—पुद्गल अनन्तानन्त है, इसलिये मूर्तत्व गुण सामान्य रूपसे सम्पूर्ण पुद्गलोंमे पाये जानेके कारण वह पुद्गल द्रव्यका सामान्य गुण है। और जीव, धर्म, अधर्म, आकाश तथा कालमे न पाया

जानेके कारण वही (मूर्तत्व) गुण पुद्गल द्रव्यका विशेष गुण कहा जाता है।

४—अमूर्तत्व गुण सामान्य रूपसे जीव, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन पाचों ही द्रव्योंमे पाया जाता है। इसलिये वह उन पुद्गल विना पाचों द्रव्यों) का सामान्य गुण है। और पुद्गल द्रव्यमें नहीं पाया जाता इसलिये वही (अमूर्तत्व) गुण उनका विशेष गुण कहा जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त चेतनत्वादि चारों ही गुण भिन्न भिन्न अपेक्षा (स्वजाति तथा विजातिकी अपेक्षा) से सामान्य और विशेष गुण कहे जाते हैं। इसलिये उन चेतनत्वादि गुणोंका सामान्य तथा विशेष दोनों ही प्रकारके गुणोंमे पाठ होनेपर पुनरुक्ति दोष भी नहीं आता है।

पर्याय

पुद्गलका विभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय

पृथ्वी, जल आदि÷ नाना प्रकारके स्कन्धोंको पुद्गलका विभाव द्रव्य व्यजन पर्याय* कहते हैं।

÷आदि शब्दसे शब्द, वन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, सस्थान, भेद, तम, छाया, आतप, और उद्योत आदिको भी ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि ये सव ही पुद्गलकी द्रव्य-व्यंजन पर्याय हैं।

*द्वयणुकादि स्कन्धों द्वारा होनेवाले अनेक प्रकारके स्कन्धोंको यानी द्वयणुकादि स्कन्धरूपसे होनेवाले पुद्गल परमाणुओं के परिणमनको पुद्गलका विभाव द्रव्य-व्यंजन-पर्याय कहते हैं।

पुद्गलका विभाव गुण व्यञ्जन पर्याय

रससे रसान्तर तथा गन्धादिकसे गन्धान्तरादि रूप होनेवाला रसादिक गुणोंका परिणमन पुद्गलकी विभाव, गुण, व्यजन पर्याय है, अर्थात् द्व्यणुकादि स्कन्धोंमें पाये जानेवाले रूपादिकको पुद्गलकी विभाव गुण पर्याय कहते है।

द्व्यणुकादि स्कन्धोंमे एक वर्णसे दूसरे वर्ण रूप, एक रससे दूसरे रस रूप, एक गन्धसे अन्यगन्धरूप और एक स्पर्शसे दूसरे स्पर्श रूप होनेवाले परिणमनको पुद्गलकी विभावगुणव्यजन पर्याय जानना चाहिये।

पुद्गलका स्वभाव-द्रव्य-व्यञ्जन-पर्याय

अविभागी पुद्गल परमाणु पुद्गलकी यानी शुद्ध परमाणु रूपसे पुद्गल द्रव्यकी जो अवस्थिति है उसके पुद्गल द्रव्यकी स्वभाव द्रव्य व्यजन पर्याय है। क्योंकि जो अनादि अनन्त कारण तथा कार्य-रूप विभाव रहित शुद्ध परमाणु है, उसको ही पुद्गलका स्वभाव द्रव्य पर्याय समझा जाता है।

पुद्गलका स्वभाव-गुण-व्यञ्जन-पर्याय

परमाणु सम्बन्धी एक वर्ण, एक रस, एक गन्ध, और अविरोधी दो स्पर्श* पुद्गलका स्वभाव गुण व्यंजन

---

* परमाणुमे शीत और उष्णमेसे एक तथा स्निग्ध व रूक्षमेसे एक इस तरह दो ही स्पर्श पाये जाते हैं, क्योंकि मृदु आदि शेषके चार स्पर्श अपेक्षाकृत है। इसलिये वे परमाणुमे नहीं पाये जाते।

पर्याय है।(१) यानी परमाणुमे जो एक वर्ण, रस, गन्ध और अविरोधी दो स्पर्श पाये जाते हैं। जो अगुरुलघुगुणके निमित्तसे अपने-अपने अविभागी प्रतिच्छेदोंके द्वारा परिणमनशील है। उनको पुद्गलका स्वभाव गुण व्यंजन पर्याय कहते हैं।

किस द्रव्यमें कितनी पर्याय हैं ?

धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चार द्रव्य अर्थपर्यायके विषय हैं। अर्थात् इन चारो द्रव्योंमे अर्थपर्याय होती है। और जीव तथा पुद्गलमे व्यंजनपर्याय पाई जाती है। क्योंकि प्रदेशवत्व गुणके विकारको व्यजन या द्रव्यपर्याय कहते है। तथा प्रदेशवत्व गुणको छोड़कर अन्य सब गुणोंके विकारको अर्थपर्याय कहते है। और उस (गुण पर्याय) के दो भेद है। एक स्वभाव गुणपर्याय और दूसरी विभाव गुणपर्याय। इनमेंसे धर्मादि ४ द्रव्योंमे स्वभाव गुण पर्याय और स्वभाव द्रव्यपर्याय होता है। धर्मद्रव्य गतिहेतुत्व अधर्म-द्रव्यमे स्थिति हेतुत्व, आकाशद्रव्यमें अवगाहनहेतुत्व तथा कालद्रव्यमे वर्तनाहेतुत्व स्वभाव गुणपर्याय× है, और धर्मादि चारों द्रव्य जिस-जिस आकारसे संस्थित है वह-वह आकार उनकी स्वभाव द्रव्य

---

(१) परमाणुमे पाये जानेवाले रूप, रस, गन्ध और स्पर्शको पुद्गलका स्वभावगुणपर्याय कहते हैं।

× गति, स्थिति, वर्तना और अवगाहन ये चारों क्रमसे धर्म, अधर्म, काल तथा आकाशकी स्वभाव गुण पर्याय हैं।

पर्याय हैं+। तथा जीव और पुद्गलमे स्वभाव और विभाव दोनों प्रकारकी पर्यायें पाई जाती हैं।

पुद्गलसे जीव अलग है

चैतन्यमे ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि अनन्त गुण है, और आत्मगुणोंके अतिरिक्त स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द, प्रकाश, धूप, चादनी, छाया अन्धकार, शरीर, भाषा, मन, श्वासोच्छ्वास तथा काम, क्रोध, लोभ, माया आदि जो कुछ इन्द्रिय और मनके अनुभवमें है वह सब पुद्गलकी रचना है। ये सब विभाव और अचेतन हैं। ये हमारे स्वरूप नहीं हैं, आत्म अनुभवमें एक ब्रह्मको छोड़कर और कुछ नहीं है। और जब आत्मा अपनी शक्तिको संभालता है और ज्ञान नेत्रोंसे अपने असली स्वभावको परखता है तब आत्माका स्वभाव आनन्द रूप, नित्य निर्मल और लोकका शिरोमणि जानता हैं। तथा शुद्ध चैतन्यका अनुभव करके अपने स्वभावमे लीन होकर सम्पूर्ण कर्मदलको दूर करता हैं। इस प्रयत्नसे मोक्षमार्ग सिद्ध होता हैं। और निराकुलताका आनन्द सन्निकट आ जाता है।

+ जीवादिक छहों द्रव्योंके अपने-अपने स्वभावमे स्थित जो-जो प्रदेश हैं वे वे प्रदेश उनकी स्वभावद्रव्यपर्याय हैं। पर्यायका अर्थ परिणमन है। परन्तु धर्मादिक चारों द्रव्योंके प्रदेशोंमे प्रदेशरूपसे कोई परिवर्तन नहीं होता है। इसलिये व्यञ्जनपर्याय वास्तविक रीतिसे जीव और पुद्गलमे ही समझना चाहिये। इन चारों द्रव्योंमें व्यञ्जनपर्याय कथंन उपचार मात्रसे चारों द्रव्योंमे व्यञ्जनपर्यायका निषेध हो जाता है।

देह और जीव अलग-अलग है

सुवर्णके म्यानमे रखी हुई लोहेकी तलवार सोनेकी कहलाती है ; परन्तु जब वह लोहेकी तलवार सोनेकी म्यानसे अलग की जाती है तब लोग उसे लोहेकी ही कहते है। अर्थात् शरीर और आत्मा एक क्षेत्रावगाह स्थित है। इसी कारण संसारी जीव भेद-विज्ञानके अभावसे शरीरको ही आत्मा समझ रहे हैं। परन्तु जब भेद-विज्ञानमे उनकी पहचानकी जाती है तब चिन्का चमत्कार आत्मासे अलग प्रतीत होने लगता है। और शरीरमेसे आत्मबुद्धि एकदम हट जाती है।

जीव और पुद्गलकी भिन्नता

रूप रस आदि गुण पुद्गलके बताये गये हैं, इनके निमित्तसे जीव अनेक रूप धारण करता है, परन्तु यदि वस्तु स्वरूपका विचार किया जावे तो वह कर्मसे बिल्कुल अलग और चैतन्य स्वरूप है। अर्थात् अनन्त ससार भ्रमण करता हुआ यह जीव नर-नारक आदि जो अनेकानेक पर्यायें प्राप्त करता है वे सब पुद्गल-मय हैं और कर्मजनित हैं। यदि वस्तुगत स्वभावको विचारा जावे तो वे जीवकी पर्यायें नहीं हैं। जीव तो शुद्ध, बुद्ध, नित्य, निर्विकार, देहातीत और चैतन्यमय है।

जिस प्रकार घीके सयोगसे मिट्टीके घड़ेको घीका घडा कहा जाता है, परन्तु घडा घी रूप नहीं हो जाता, उसी प्रकार शरीरके सम्बन्धसे जीव छोटा, बड़ा, काला, गोरा आदि अनेक नाम प्राप्त

करता है, परन्तु वह शरीरके समान अचेतन नहीं हो जाता, क्योंकि शरीर अचेतन है, और जीवका उसके साथ अनन्तकालसे सम्बन्ध है तथापि जीव शरीरके सम्बन्धसे कभी अचेतन नहीं होता अर्थात् सदा चेतन ही रहता है।

आत्माका साक्षात्कार

जीव पदार्थ सुख-दु:खकी बाधासे रहित है, इससे निराबाध है। सदा चेतता रहता है, इस कारण चेतन है, इन्द्रिय गोचर न होनेसे अलग है। अपने स्वभावको स्वयं ही जानता है इसलिये स्वकीय है। अपने ज्ञान स्वभावसे चलित न होनेसे अचल है। आदि रहित होनेसे अनादि है। अनन्तगुण रहित है जिससे अनन्त है। कभी नाश न होनेसे नित्य है। और इसका प्रतिपक्षी पुद्गलद्रव्य रसादि सहित मूर्तिमान् है। शेप धर्म, अधर्म, आदिक चार अजीव द्रव्य अमूर्त हैं। जीव भी अमूर्त है, जब कि जीवके अतिरिक्त अन्य भी अमूर्त हैं। तब अमूर्तका ध्यान होनेसे जीवका ध्यान नहीं हो सकता। अत अमूर्तका ध्यान करना अज्ञानता है। जिन्हे स्वआत्म रसका स्वाद इष्ट है उन्हें मात्र अमूर्तका ध्यान न करके शुद्ध चैतन्य नित्य, स्थिर और ज्ञान स्वभावी आत्माका ध्यान करना चाहिये।

मूर्ख स्वभाव

जीव चेतन है, अजीव जड़ है। इस प्रकार लक्षण भेदसे दोनों प्रकारके पदार्थ पृथक् पृथक् हैं। विद्वान लोग सम्यग्दर्शनके प्रकाशसे

उन्हें भिन्न-भिन्न देखते हैं तथा निश्चय करते हैं। परन्तु संसारमे जो मनुष्य अनादि कालसे दुर्निवार मोहकी तीक्ष्ण मदिरासे उन्मत्त हो रहे हैं। वे जीव और जड़को एक ही कहते हैं उनकी यह कुटेव न जाने कब टलेगी।

आत्म ज्ञाताका विलास

इस हृदयमे अनादि कालसे मिथ्यात्वरूप महाअज्ञानकी लम्बी-चौड़ी एक नाटकशाला है, उसमे और कोई शुद्ध-स्वरूप नहीं दीखता, केवल पुद्गल ही एक बडा भारी नाच नचा रहा है। वह अनेक रूप पलटता है, और रूप आदि विस्तारके नाना कौतुक दिखलाता है। परन्तु मोह और जड़से निराला समदृष्टि आत्मा उस अजीव नाटकका मात्र देखनेवाला है। हर्ष तथा और शोक नहीं करता।

भेद विज्ञानका परिणाम

जिस प्रकार आरा काठके दो खड कर डालता है। अथवा राजहस जिस प्रकार दूध पानीको अलग कर देता है। उसी प्रकार भेद विज्ञान भी अपनी भेदक शक्तिसे जीव और पुद्गलको जुदा कर डालता है। पश्चात् यह भेद-विज्ञान उन्नति करते-करते अवधि ज्ञान मन.पर्ययज्ञान और परमावधिज्ञानकी अवस्थाको पाता है। और इस रीतिसे वृद्धि करके पूर्ण स्वरूपका प्रकाश अर्थात् केवल ज्ञान हो जाता है जिसमें लोक और अलोकके सम्पूण पदार्थ प्रतिविम्बित होने लगते हैं। जिनमे अजीव पदार्थ ५६० होते हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है।

अजीव-तत्वके जघन्य १४ भेद हैं।

धर्मास्तिकायके तीन भेद

१—स्कन्ध, २—देश, ३—प्रदेश।

अधर्मास्तिकायके तीन भेद

१—स्कन्ध, २—देश, ३—प्रदेश।

आकाशास्तिकायके तीन भेद

१—स्कन्ध, २—देश, ३—प्रदेश।

कालका एक भेद

१—काल।

पुद्गलास्तिकायके ४ भेद

१—स्कन्ध, २—देश, ३—प्रदेश, ४—परमाणु।

ये सब मिलकर अजीव तत्वके जघन्य १४ भेद हुए।

स्कन्ध किसे कहते हैं ?

१४ राजुलोकमे पूर्ण जो धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय हैं, वे प्रत्येक स्कन्ध कहलाते हैं। मिले हुए अनन्तपुद्गलपरमाणुओंके छोटे समूहको भी 'स्कन्ध' कहते हैं।

देश क्या है ?

स्कन्धसे कुछ कम अथवा बुद्धि कल्पित स्कन्धभागको 'देश' कहते हैं।

प्रदेश क्या है ?

स्कन्धसे अथवा देशसे लगा हुआ अति सूक्ष्म भाग (जिसका फिर विभाग न हो सके) 'प्रदेश' कहलाता है।

परमाणु क्या है ?

स्कन्ध अथवा देशसे अलग, प्रदेशके समान अतिसूक्ष्म स्वतन्त्र भाग 'परमाणु' कहलाता है।

धर्मास्तिकाय-अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकायके परमाणु नहीं होते।

अस्तिकाय क्या है ?

अस्तिका अर्थ है प्रदेश, और कायका अर्थ है समूह, प्रदेशोंके समूहको 'अस्तिकाय' कहते हैं।

कालको कालास्तिकाय क्यों नहीं कहा ?

काल द्रव्यका वर्तमान समयरूप एक ही प्रदेश है, प्रदेशोंका समूह न होनेसे आकाशास्तिकायकी तरह 'कालास्तिकाय' नहीं कह सकते।

कालका स्वरूप

समय—जिसका विभाग न हो सके वह 'समय' कहलाता है।

आवलिका—असख्य समयोंकी एक 'आवलिका' होती है।

मुहूर्त—१६७७७२१६ आवलिकाओंका एक मुहूर्त (४८ मिनिट) होता है।

दिन—३० मुहूर्तका एक अहोरात्रि होता है।

पक्ष—१५ दिनका पक्ष होता है।

मास—२ पक्षका महीना होता है।

१२ मासका एक वर्ष होता है। असख्य वर्षोंका एक 'पल्योपम' होता है। दस कोड़ाकोडी पल्योपमका एक सागरोपम होता है। दश कोड़ाकोड़ी सागरोपमकी एक 'उत्सर्पिणी' होती है। इतने ही प्रमाणकी अवसर्पिणी होती है। दोनोंके मिलनेको एक 'कालचक्र' कहते हैं। ऐसे अनन्त कालचक्र बीतने पर एक 'पुद्गल-परावर्तन' होता है।

कोड़ाकोड़ी

क्रोड़को क्रोड़से गुणने पर जो संख्या होती है। उसे 'कोड़ाकोडी' कहते हैं।

संठाण पांच होते हैं

१—परिमंडल—चूडीके समान गोलाकार।

२—वट्ट—वृत्ताकार, मोदकके समान।

३—त्र्यंस्य—त्रिकोन, सिघाड़ेकी तरह।

४—चतुरस्त्र—चौकी जैसा चौकोर।

५—आयत—वांसकी तरह लम्बा आकार।

पांच वर्ण

१—काला, २—नीला, ३—पीला, ४—लाल, ५—सफेद।

पांच रस

१—तिक्त, २—कटुक, ३—कषायरस, ४—खट्टारस, ५—मीठा-रस, (लवण मीठे रसमे है)।

२ गन्ध

१—सुगन्ध, २—दुर्गन्ध।

८ स्पर्श

१—कठोर—जैसे पैरका तलुआ कठोर होता है।

२—सुकोमल—कानके नीचेके मासकी तरह।

३—रूखा—जैसे जीभ चिकनी नहीं होती।

४—चिकना—आखें चिकनी होती है।

५—हल्का—बाल हल्के होते हैं।

६—भारी—हाड़ भारी होते हैं।

७—ठंढा—नाकका अगला भाग ठढा होता है।

८—गर्म—छाती या कलेजा गर्म रहता है।

परिमंडल संस्थानका भाजन हो, वट्ट संस्थान उसका प्रतिपक्षी हो, तब परिमडल संस्थानमे २० बातें पाई जाती है। जैसे—

५—वर्ण ५—रस, २—गंध, ८—स्पर्श।

इसी प्रकार वट्ट संस्थानमें २०, त्र्यंसमे २०, चतुरंसमें २०, और आयतनमे २०।

सब मिलकर ५ सस्थानोंके १०० भेद बने हैं।

काले रगकोभाजन बनानेपर २० बोल होंगे।

५—रस, ५—सस्थान, २—गंध, ८—स्पर्श।

नील वर्णके भाजनमे २० बोल पाते हैं।

५—रस, ५—संस्थान, २—गध, ८ स्पर्श।

पीतवर्णके भाजनमे २० बोल पाते हैं।

५—रस, ५—संस्थान २—गंध, ८—स्पर्श।

लाल रंगके भाजनमे २० बोल मिलते हैं।

५—रस, ५—संस्थान, २—गंध, ८—स्पर्श।

श्वेतवर्णके भाजनमे २० बोल मिलते हैं।

५—रस, ५—सस्थान, २—गंध, ८—स्पर्श।

१—तिक्त रसके भाजनमे २० बोल मिलते हैं।

५—वर्ण, ५—संस्थान, २—गध, ८—स्पर्श।

२—कडुवे रसके भाजनमे २० बोल मिलते हैं।

५—वर्ण, ५—संस्थान, २—गंध, ८—स्पर्श।

३—कषाय रसके भाजनमे २० बोल मिलते हैं।

५—वर्ण, ५—संस्थान, २—गंध, ८—स्पर्श।

४—खट्टे रसके भाजनमे २० बोल पाये जाते हैं।

५—वर्ण, ५—संस्थान, २—गध, ८—स्पर्श।

५—मीठे रसके भाजनमे २० बोल गर्भित हैं।

५—वर्ण, ५—संस्थान, २—गंध, ८—स्पर्श।

१—सुगन्धके भाजनमे २३ बोल मिलते हैं।

५—वर्ण, ५—रस, ५—सस्थान, ८—स्पर्श ।

२—दुर्गन्धके भाजनमे २३ बोल पाये जाते हैं ।

५—वर्ण, ५—रस, ५—संस्थान, ८—स्पर्श ।

१—कठोर स्पर्शके भाजनमे २३ बोल होते हैं ।

५—वर्ण, ५—रस, ५—संस्थान, २—गध, ६—स्पर्श ।

२—सुकोमल स्पर्शके भाजनमें २३ बोल होते हैं ।

५—वर्ण, ५—रस, ५—संस्थान, २—गंध, ६—स्पर्श ।

३—लघु स्पर्शके भाजनमें २३ बोल मिलते हैं ।

५—वर्ण, ५—रस, ५—सस्थान, २—गन्ध, ६—स्पर्श ।

४—गुरु स्पर्शके भाजनमे २३ बोल पाये जाते हैं ।

५—वर्ण, ५—रस, ५—संस्थान, २—गन्ध, ६—स्पर्श ।

५—उष्ण स्पर्शके भाजनमे २३ वोल पाये जाते हैं ।

५—वर्ण, ५—रस, ५—संस्थान २—गन्ध, ६—स्पर्श ।

६—शीत-स्पर्शके भाजनमे २३ वोल मिलते हैं ।

५—वर्ण, ५—रस, ५—सस्थान, २—गन्ध, ६—स्पर्श ।

७—रूक्ष स्पर्शके भाजनमे २३ वोल मिलते हैं ।

५—वर्ण, ५—रस, ५—सस्थान, २—गन्ध, ६—स्पर्श ।

८—स्निग्ध रसके भाजनमें २३ वोल मिलते हैं ।

५—वर्ण, ५—रस, ५—संस्थान, २—गन्ध, ६—स्पर्श ।

इस प्रकारसे १०० सस्थानोंमे, १०० वर्णोमें, १०० रसोमे, ४६ गन्धोंमे, १८४ स्पर्शोंमे ।

५३०, कुल इतने भेद अरूपी अजीव-तत्त्वके हुए । मगर पक्ष-

प्रतिपक्षकी सम्भावना स्वयमेव कर ली जानी चाहिये। क्योंकि जहाँ कर्कश स्पर्श है वहाँपर सुकोमल स्पर्श कभी न मिलेगा। इसी भांति संस्थान, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शोंके विषयमे भी जान लेना योग्य है।

अरूपी अजीवके ३० भेद

धर्मास्तिकायके ३ भेद।

स्कन्ध, देश, प्रदेश।

अधर्मास्तिकायके तीन भेद।

स्कन्ध, देश, प्रदेश।

आकाशास्तिकायके तीन भेद।

स्कन्ध, देश, प्रदेश।

दशवां कालका भेद।

धर्मास्तिकायके पांच भेद

१—द्रव्यसे एक है।

२—क्षेत्रसे लोक प्रमाण है।

३—कालसे अनादि अनन्त।

४—भावसे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, संस्थानसे रहित।

५—गुणसे चलन गुण स्वभाव (गति लक्षण)।

अधर्मास्तिकायके ५ भेद

१—द्रव्यसे एक है।

२—क्षेत्रसे लोक प्रमाणमें है।

३—कालसे अनादि-अनन्त है।

४—भावसे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श रहित है।

५—गुणसे स्थिर स्वभाव (स्थिति लक्षण)।

आकाशास्तिकायके ५ भेद

१—द्रव्यसे एक है।

२—क्षेत्रसे लोक-अलोक प्रमाणमे है।

३—कालसे अनादि अनन्त है।

४—भावसे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श रहित है।

५—गुणसे अवगाहदान लक्षण (अवकाश देना)।

कालद्रव्यके ५ भेद

१—द्रव्यसे १ प्रदेश।

२—क्षेत्रसे २॥ द्वीप प्रमाण।

३—कालसे अनादि अनन्त।

४—भावसे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शसे रहित है।

५—गुणसे वर्तना, लक्षण।

इस प्रकार ३० हुए। ५३० रूपी भेद ३० अरूपी भेद सब मिल कर ५६० भेद अजीव-तत्त्वके हुए।

इति अजीव-तत्त्व।

पुण्य-तत्त्व

पुण्य क्या है ?

जिस कर्मके उदयसे जीव सुख पाता है, मोक्ष प्राप्तिके लिये सहकारी है, संसारमे स्थिति स्थापकता रहती है। अन्तमे त्यागने योग्य भी है। इसे पुण्य कहते हैं।

अध्यात्मिक दृष्टिसे पुण्य-पाप क्या हैं ?

जैसे किसी चांडालनीके दो पुत्र हुए, उनमेसे उसने एक पुत्र ब्राह्मणको दे दिया, और एकको अपने घरमे रख लिया। जिसे ब्राह्मण को सोंपा था, वह ब्राह्मण कहलाया और मद्य मासका त्यागी हुआ। परन्तु जो उसके घरमे रह गया था वह चाण्डाल कहलायो, तथा मद्य मासका भक्षी होगया। इसी तरह एक वेदनी कर्मके पाप और पुण्य जिनके अलग अलग नाम है ऐसे दो पुत्र हैं। अतः दोनो ही मे संसार भ्रमणा है, और दोनो ही वंध परम्पराको बढाते हैं। जिससे आत्मज्ञानीजन तो दोनों ही की अभिलापा नहीं करते। और दोनों ही निर्जरा करनेके प्रयत्नमें लगे रहते हैं, क्योंकि जिस प्रकार पापकर्म बंधन है नरकादि दुःखद संसारमें फिरानेवाला है, उसी प्रकार पुण्य भी बंधन है और उसका विपाक भी संसार ही है, इसलिये दोनों समान ही हैं। परन्तु पुण्य

सोनेकी बेडीके समान है और पाप लोहेकी बेडीके सदृश है। दोनों बधन हैं।

पुण्य-पापकी समानतामें शंका ?

कोई यह शका करे कि—पुण्य-पाप समान नहीं हैं, क्योंकि उनके कारण, रस, स्वभाव तथा फल अलग अलग हैं, एकके (कारण, रस, स्वभाव, फल) अप्रिय और एकके प्रिय लगते हैं, तब समान क्यों कर हो सकते हैं। संक्लिष्ट भावोंसे पाप और निर्मल भावोंसे पुण्य बंध होता है, इस प्रकार दोनोंके बधमे कारण भेद है। पापका उदय असाता है, जिसका स्वाद कडुआ है, और पुण्यका उदय साता है, जिसका स्वाद मीठा है, इस तरह दोनोंके स्वादमे भी अन्तर है, पापका स्वभाव तीव्र कषाय और पुण्यका स्वभाव मद कषाय है। इस प्रकार दोनोंके स्वभावमे भी भेद है। पापसे कुगति और पुण्यसे सुगति होती है, इस प्रकार दोनोंमे फल भेद प्रत्यक्ष जान पड़ता है, तब दोनोंको समान पद क्यों कर दिया जा सकता है ?

इसका समाधान

पापबंध और पुण्यबंध दोनों मुक्ति मार्गमें बाधक रूप है, इसमें दोनों ही समान हैं। इनके कडवे और मीठे स्वाद पुद्गलके हैं, अतः दोनोंके रस भी समान हैं। सक्लेश और विशुद्ध भाव दोनों विभाव हैं, अतएव दोनोंके भाव भी समान है। कुगति और सुगति दोनों संसारमय हैं, इसलिये दोनोके फल भी समान हैं। दोनोंके कारण, रस, स्वभाव और फलमे अज्ञानसे भेद दीखता है, परन्तु

ज्ञान दृष्टिसे दोनोंमे कुछ अन्तर नहीं है। दोनों आत्म स्वरूपको भुलानेवाले हैं, इसलिये महाअंध कूपके समान हैं। और दोनों ही कर्म बन्ध रूप हैं, इसलिये निश्चयनयसे मोक्ष मार्गमे इन दोनोंका त्याग कहा गया है। राग, द्वेष, मोह रहित, 'निर्विकल्प', आत्म-ध्यान ही मोक्ष रूप है। इसके विना और सव भटकना पुद्गल जनित है। आत्मा सदैव शुद्ध अर्थात् अबन्ध है, और क्रिया बन्धमय कहलाती है। अत' जितने समयतक जीव जिसमे (स्वरूप या क्रियामे) रहता है उतने समय तक उसका स्वाद लेता है। अर्थात् जवतक आत्मानुभव रहता है तबतक अबन्ध दशा रहती है, परन्तु जव स्वरूपसे क्रियामे हटकर लगता है तब बन्धका प्रपच बढ़ता है। अतः ज्ञान और चरित्र ही प्रधान हैं, क्योंकि सम्यक्त्व सहित ज्ञान और चरित्र परमेश्वरका स्वभाव है और यही परमेश्वर बननेका उपाय है।

बाहरकी दृष्टिसे मोह नहीं है

शुभ और अशुभ ये दोनों कर्म मल हैं। पुद्गल पिण्ड हैं, आत्माके विभाव हैं, इनसे मोक्ष नहीं होता है और न केवल ज्ञान ही पाता है, क्योंकि जवतक शुभ-अशुभ क्रियाके परिणाम रहते हैं तवतक ज्ञान, दर्शन, उपयोग और मन, वचन, कायके योग चञ्चल रहते हैं। तथा जवतक ये स्थिर न होंगे तवतक शुद्ध अनुभव नहीं होता है। इससे दोनों ही क्रियाएँ मोक्ष मार्गमें वाधक है। दोनों ही वन्ध उत्पन्न करती हैं।

ज्ञान और शुभाशुभ कर्मका हाल

जबतक आठों कर्म बिल्कुल नष्ट नहीं होते तबतक सम्यक्त्व दृष्टिमें ज्ञानधारा और शुभाशुभ कर्मधारा दोनों वर्तती रहती हैं। दोनों धाराओंका अलग-अलग स्वभाव और भिन्न-भिन्न सत्ता है। विशेष भेद इतना ही है कि कर्मधारा बन्धरूप है आत्म-शक्तिको पराधीन करती है। तथा अनेक प्रकारसे बन्ध बढाती है। और ज्ञानधारा मोक्ष स्वरूप है, मोक्षदाता है, दोषोंको हटाती है तथा संसार सागरसे पार करनेके लिये नौकाके समान है।

पुण्यका वर्णन

यह पुण्य शुभ भावोंसे बंधता है। इसके द्वारा स्वर्गादि सुख-को पाता है और यह लौकिक सुखका ही देनेवाला है। वह पुण्य पदार्थ नौ प्रकारसे बाधकर ४२ प्रकारसे भोगा जाता है।

नौ पुण्योंके नाम

१—अन्नपुण्णे--अन्नदानसे पुण्य होता है।

२—पाणपुण्णे--जलदानसे।

३—लयणपुण्णे--आरामके लिये मकान देनेसे।

४—सयनपुण्णे--आसन विस्तर देनेसे।

५—वत्थपुण्णे--वस्त्रादि दान करनेसे।

६—मनपुण्णे--मनको निर्विकार और शुद्ध रखनेसे।

७—वचनपुण्णे--सत्य और शुभ वचन योगसे।

८—कायपुण्णे--कायकी निष्पाप सेवासे।

९—नमस्कारपुण्णे—मानरहित होकर नमन करने से।

पुण्यके उत्कृष्ट ४२ भेद

१—'सातावेदनीय' जिस कर्म-प्रकृतिके उदयसे सुखका अनुभव करता है।

२—उच्चगोत्र' सच्चरित्र माता-पिताके रजोवीर्य, रूप, उच्चकुल, उच्चजातिमे पैदा होता है।

३—जिस कर्मके उदयसे जीवको 'मनुष्यगति' मिलती है।

४—जिस कर्मके उदयसे मनुष्यको मनुष्यकी आनुपूर्वी' मिले।

आनुपूर्वी क्या है ?

आनुपूर्वीका आशय यह है कि—विग्रहगतिसे गत्यन्तरमे जानेवाला जीव जब शरीरको छोडकर समश्रेणीसे जाने लगता है तब आनुपूर्वीकर्म उस जीवको जबरदस्तीसे जहा पैदा होना हो वहाँ पहुंचा देता है। मनुष्यगतिकर्म और मनुष्यानुपूर्वीकर्म इन दोनों की 'मनुष्यद्विक' सञ्ज्ञा है!

५—जिस कर्मसे जीवको देवगति मिले, उसे 'देवगति' कहते हैं।

६—जिस कर्मसे जीवको देवताकी आनुपूर्वी मिले, उसे 'देवानुपूर्वी' कहते हैं।

७—जिस कर्मसे जीवको पाचों इन्द्रिया मिलें, उसे 'पंचेन्द्रिय-जातिकर्म' कहते हैं।

८—जिस कर्मसे जीवको औदारिक शरीर मिले, उसे 'औदारिकशरीरकर्म' कहते हैं।

औदारिक शरीर क्या है ?

उदार अर्थात् बड़े बड़े अथवा तीर्थंकरादि उत्तम पुरुषोंकी अपेक्षा उदार-प्रधान पुद्गलोंसे जो शरीर बनता है उसे 'औदारिक' कहते है। मनुष्य, पशु, पक्षी आदिका शरीर भी औदारिक कहलाता है।

६--जिस कर्मके उदयसे वैक्रिय शरीर मिले, उसे 'वैक्रियकर्म' कहते हैं।

वैक्रिय शरीर क्या है ?

अनेक प्रकारकी क्रियाओंसे बना हुआ शरीर 'वैक्रिय' कहलाता है। उसके दो भेद है 'औपपातिक' और 'लब्धिजन्य', देवता, नरक निवासी जीवोंका शरीर 'औपपातिक' होता है। लब्धि अर्थात् तपोबलके सामर्थ्य विशेषसे प्राप्त होने पर तिर्यंच और मनुष्य भी कभी कभी वैक्रिय शरीर धारण करते हैं वह 'लब्धिजन्य' है।

१०--जिस कर्मसे आहारक शरीरको प्राप्ति हो उसे 'आहारिक-शरीर कर्म' कहते हैं। दूसरे द्वीपमे विद्यमान तीर्थंकरसे अपना सन्देह दूर करनेके लिये या उनका ऐश्वर्य देखनेके लिये १४ पूर्वधारी मुनिराज जब चाहे तब निज शक्तिसे एक हाथका लम्बा, चर्मचक्षुके देखनेमे न आवे ऐसा अदृश्य अति सुन्दर शरीर बनाते हैं उसे 'आहारिक शरीर' कहते हैं।

११--जिस कर्मके उदयसे तैजस शरीरकी प्राप्ति हो उसे 'तैजस शरीर' कहते हैं।

तैजस शरीर क्या है ?

किये हुए आहारको पकाकर रस-रक्त आदि बनानेवाला तथा तपोबलसे तेजोलेश्या निकालने वाला 'तैजस' कहलाता है।

१२—जीवोंके साथ लगे हुये आठ प्रकारके कर्मोंका विकाररूप तथा सब शरीरोंका कारणरूप 'कार्मण' कहलाता है। तैजस शरीर और कार्मण शरीरका अनादि कालसे जीवके साथ सम्बन्ध है। और मोक्ष पाये बिना उनके साथ वियोग नहीं होता।

१३-१४-१५—जिन कर्मोंसे अंग-उपांग और अंगोपांग मिलें, उनको अंग कर्म-उपांग कर्म और अंगोपांग कर्म कहते हैं।

जानु, भुजा, मस्तक, पीठ आदि सब अंग है। अंगुली आदि उपांग और अंगुलीके पर्व रेखा आदि 'अंगोपांग' कहलाते हैं।

औदारिक-वैक्रिय-आहारक शरीरको अंग-उपांग आदि होते हैं। लेकिन तैजस कार्मण शरीरको नहीं।

१६—'प्रथम संहनन'—वज्रऋषभनाराच—जिस कर्मसे मिले, उसे 'वज्रऋषभनाराच' नाम कर्म कहते हैं।

संहनन क्या है ?

हड्डियोंकी रचनाको 'संहनन' कहते है। दो हाडोंसे मर्कटबन्ध होनेपर एक पट्टा (वेष्टन) दोनोंपर लपेट दिया जाय फिर तीनोंपर खीला ठोक दिया जाय इस प्रकारकी मजबूतीवाली रचनाको 'वज्र-ऋषभ नाराच संहनन' कहते हैं।

१६—प्रथम संस्थान—समचतुरस्र जिस कर्मसे मिले उसे 'समचतुरस्र' संस्थान नाम कर्म कहते हैं।

"पर्यंक आसन लगाकर बैठनेसे दोनों जानु और दोनों कन्धों-का इसी तरह बाएँ जानु और वामस्कन्धका अन्तर समान हो तो उस संस्थानको 'समचतुरस्र' सस्थान कहते हैं। जिनेश्वर भगवान तथा देवताओंका यही संस्थान है।

१८ से २१—जिन कर्मोसे जीवका शरीर, शुभ-वर्ण, शुभ-गंध, शुभ-रस और शुभ-स्पर्शवाला हो उन कर्मोंको भी अनुक्रमसे 'शुभ-वर्ण', 'शुभ-गन्ध', 'शुभ-रस', और शुभ-स्पर्श 'नामकर्म' कहते हैं।

पीला, लाल, सफेद रंग, शुभवर्ण कहलाता है। सुगन्धको शुभ गन्ध कहते हैं। खट्टा, मीठा और कसायला रस शुभ रस कहलाता है। हल्का, सुकोमल, गर्म और चिकना स्पर्श शुभ स्पर्श है।

२२—जिस कर्मसे जीवका शरीर न लोहेके समान भारी होता है, न रुई जैसा हल्का हो वह 'अगुरुलघु' नाम कर्म कहलाता है।

२३—जिस कर्मसे जीव, बलवानोंसे भी पराजित न हो उसे 'पराघात' नाम कर्म कहते हैं।

२४—जिस कर्मसे जीव श्वासोच्छ्वास ले सके उसे 'श्वासो-च्छ्वास' नाम कर्म कहते हैं।

२५—जिस कर्मसे जीवका शरीर उष्ण न होकर उष्णता प्रकाश करे उसे 'आतप' नाम कर्म कहते हैं। सूर्यमण्डलमे रहनेवाले पृथ्वी-कायके जीवोंका शरीर ऐसा ही है।

२६—जिस कर्मसे जीवका शरीर शीतल प्रकाश करनेवाला हो, उसे 'उद्योत' नाम कर्म कहते हैं। ऐसे जीव चन्द्रमण्डल और ज्योतिष्चक्रमे होते है। वैक्रियलब्धीसे साधु, 'वैक्रिय' शरीर धारण

करते हैं। उस शरीरका प्रकाश शीतल होता है। वह इस 'उद्योत' नाम कर्मसे समझना चाहिये।

२७—जिस कर्मसे जीव हाथी, हंस बैल, जैसी चाल चले उसे शुभ 'विहायोगति' कहते हैं।

२८—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरके अवयव नियत स्थान पर ही व्यवस्थित हों उसे 'निर्माण' नामकर्म कहते हैं।

२९—३८—त्रस-दशकका विचार अगाड़ी किया जायगा।

३९-४१—जिन कर्मोंसे जीव देव-मनुष्य और पशुकी योनीमें जीता है, उनको क्रमसे 'देवायु' 'मनुष्यायु' और 'तिर्यंचायु' कहते हैं।

४२—जिस कर्मसे जीव तीन लोकका पूजनीय होता है उसे 'तीर्थंकर' नाम कर्म कहते हैं।

त्रसदशक क्या होते हैं ?

१—जिस कर्मसे जीवको 'त्रस' शरीर मिलता है उसे 'त्रस' नाम कर्म कहते हैं। त्रस जीव वे होते हैं, जो धूपसे व्याकुल होने पर छायामे जाय और शीतसे दुःख पाकर धूपमे जा सकें। २, ३, ४, ५ तक इन्द्रिय युक्त जीव 'त्रस' कहलाते हैं।

२—जिस कर्मसे जीवका शरीर या शरीर समुदाय देखनेमें आ सके उसे इतना स्थूल होनेपर 'बादर' नाम कर्म कहते हैं।

३—जिसके उदयसे जीव अपनी पर्याप्तियोंसे युक्त हो, उसे 'पर्याप्ति' नाम कर्म कहते हैं।

४—जिस कर्मसे एक शरीरमे एकही जीव स्वामी होकर रहे उसे 'प्रत्येक' नाम कर्म कहते हैं।

५—जिस कर्मसे जीवकी हड्डी-दाँत आदि अवयव मजबूत हों उसे 'स्थिर' नाम कर्म कहते हैं।

६—जिस कर्मसे जीवकी नाभिके ऊपरका भाग शुभ हो उसे 'शुभ' नाम कर्म कहते हैं।

७—जिस कर्मसे जीव सबका प्रीतिपात्र हो, उसे 'सौभाग्य' नाम कर्म कहते हैं।

८—जिस कर्मसे जीवका स्वर (आवाज) कोयलकी तरह मीठा हो उसे 'सुस्वर' नाम कर्म कहते हैं।

९—जिस कर्मसे जीवका वचन लोगोंमे आदरणीय हो उसे 'आदेय' नाम कर्म कहते हैं।

१०—जिस कर्मसे लोगोंमें यशःकीर्ति फैले उसे 'यशःकीर्ति' नाम कर्म कहते हैं।

इति पुण्य-तत्त्व ।

पाप-तत्त्व

पाप किसे कहते हैं ?

जिस कर्मसे जीव दुःख पाता है, जो अशुभ भावोंसे वन्धता है, तथा अपने आप नीच गतिमे गिरता है और ससारमें दुःखका देने-वाला है, वह पाप पदार्थ है।

पापकर्म १८ प्रकारसे बांधता है

१—प्राणातिपात—हिंसा करना। २—मृषावाद—असत्य बोलना। ३—अदत्तादान—बिना आज्ञा किसीकी वस्तु लेना, धरना। ४—मैथुन—व्यभिचार सेवन करना। ५—परिग्रह—वस्तुको ममता बुद्धिसे देखना रखना। ६—क्रोध। ७—मान। ८—माया। ९—लोभ। १०—राग। ११—द्वेष। १२—कलह। १३—अभ्याख्यान—सामने किसीको बुरा कहना। १४—पैशुन्य—पीठ पीछे बुराई करना। १५—परपरिवाद—दोनों तरहसे अपवाद करना। १६—रति—अनुकूल सयोग पाकर हर्षित होना। १७—अरति—प्रतिकूल संयोग पाकर उदास होना। १८—मायामृषा, मिथ्यात्व दर्शन, शल्य।

पाप ८२ प्रकारसे भोगता है

१—मन और पाच इन्द्रियोंके सम्बन्धसे जीवको जो ज्ञान

होता है, उसे मतिज्ञान कहते है, उस ज्ञानका 'आवरण' अर्थात् 'आच्छादन' 'मतिज्ञानावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

२—शास्त्रको 'द्रव्यश्रुत' कहते हैं, और उसके सुनने या पढ़नेसे जो ज्ञान होता है उसे 'भावश्रुत' कहते है, उसका आवरण 'श्रुतज्ञानावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

३—अतीन्द्रिय—अर्थात् इन्द्रियोंके बिना आत्माको रूपीद्रव्यका जो ज्ञान होता है, उसे 'अवधिज्ञानावरणीय' पापकर्म कहते हैं।

४—सञ्ज्ञी पंचेन्द्रियके मनकी बात जिस ज्ञानके द्वारा मालूम होती है उसे 'मनःपर्ययज्ञान' कहते है, उसका आवरण 'मनःपर्ययज्ञानावरणीय' पापकर्म है।

५—समस्त संसारका पूरा ज्ञान जिससे होता है, उसे केवलज्ञान कहते हैं। उसका आवरण 'केवलज्ञानावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

६—दानसे लाभ होता है, उसे जानता हो, पासमे धन हो, सुपात्र भी मिल जाय, परन्तु दान न कर सके, इसका कारण 'दानान्तराय' पापकर्म है।

७—दान देनेवाला उदार है, उसके पास दानकी सब वस्तुएँ भी हैं, लेनेवाला भी समझदार है, तब भी मागी वस्तु न मिले इसका कारण 'लाभान्तराय' है।

८—भोग्य चीजें विद्यमान हैं, भोगनेकी शक्ति भी है, लेकिन भोग न सके उसका कारण है 'भोगान्तराय' पापकर्म।

९—उपभोग्य वस्तुएँ भी हैं, उपभोग करनेकी शक्ति भी है, लेकिन उपभोग न कर सके उसका कारण 'उपभोगान्तराय' है।

जो वस्तु एक बार भोगनेमे आवे वह भोग्य है, जैसे आहार, स्त्री आदि। जो पदार्थ वार-वार उपयोगमे आवे उसे उपभोग्य कहते हैं, जैसे पुस्तक, वस्त्र आदि।

१०—रोगरहित युवावस्था रहनेपर और सामर्थ्य होते हुए भी अपनी शक्तिका विकास न कर सके उसका कारण 'वीर्यान्तराय' है।

११—आखसे पदार्थोंका जो सामान्य प्रतिभास होता है, उसे 'चक्षुदर्शन' कहते है। उसका आवरण 'चक्षुदर्शनावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

१२—कान, नाक, जीभ, त्वचा, तथा मनके सम्बन्धसे शब्द, गन्ध, रस, और स्पर्शका जो सामान्य प्रतिभास होता है उसे 'अचक्षुदर्शन' कहते हैं। उसका आवरण 'अचक्षुदर्शनावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

१३—इन्द्रियोंके विना रूपीद्रव्यका जो सामान्य वोध होता है, उसे 'अवधिदर्शन' कहते हैं। उसका आवरण 'अवधिदर्शनावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

१४—संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंका जो सामान्य वोध होता है, उसे 'केवलदर्शन' कहते हैं। उसका आवरण 'केवलदर्शनावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

१५—जो सोया हुआ आदमी जरासी आहट पाकर भी जाग उठता है, उसकी नींदको 'निद्रा' कहते है जिस कर्मसे ऐसी नींद आवे उस कर्मका नाम भी निद्रा है।

१६—जो आदमी वड़े जोरसे चिल्लाने, या हाथसे खूब हिलाने

पर बड़ी कठिनाई से जागता है, उसकी नींदको 'निद्रा-निद्रा' कहते हैं। जिस कर्मसे ऐसी नींद आवे उस कर्मको भी 'निद्रा-निद्रा' कहा है।

१७—खड़े-खड़े या बैठे-बैठे जिसको नींद आती है, उसकी नींद-को 'प्रचला' कहते हैं। जिस कर्मसे ऐसी नींद आवे, उस कर्मका नाम भी 'प्रचला' है।

१८—चलते फिरते जिसको नींद आती हो, उसकी नींदको 'प्रचला-प्रचला' कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे ऐसी नींद आवे उसे भी 'प्रचला-प्रचला' कर्म प्रकृति कहते हैं।

१९—दिनमे सोचे हुए कामको रातमे नींदकी अवस्थामे जो कर डालता है, उसकी नींदको 'स्त्यानर्द्धि' कहते हैं, जिस कर्मसे ऐसी नींद आती है उस कर्मको 'स्त्यानर्द्धि' या 'स्त्यानगृद्धि' कहते हैं।

स्त्यानर्द्धिकी हालतमे वज्रऋृषभनाराच संहनन वाले जीवको वासुदेवका आधा बल होता है।

२०—जिस कर्मसे नीच कर्म करने वाले माता-पिताके रजोवीर्य से नीच कुलमे जन्म हो उसे 'नीचैर्गोत्र कहते हैं।

२१—जिस कर्मसे जीव दुःखका अनुभव करे, उसे 'असाता-वेदनीय' पाप कर्म कहते हैं।

२२—जिस कर्मसे मिथ्यात्वकी प्राप्ति हो उसे 'मिथ्यात्व मोहनीय' पाप कर्म कहते हैं।

मिथ्यात्व क्या है ?

जिसके द्वारा वस्तु-स्वभावसे अनभिज्ञ रहता है, एकान्त पक्ष

लेकर लड़ता है, अहकारके आनेसे चित्तमे उपद्रव सोचता है। डावाडोल रहनेसे आत्मा विश्राम नहीं पाता। वगूलेके पत्तेकी तरह संसारमे रुलता रहता है, क्रोधमे तप्त रहता है, लोभसे मलिन रहता है, मायासे कुटिलता आजाती है, मानसे वड़वोला होकर कुवाक्य बोलता है, आत्माकी घात करने वाला ऐसा मिथ्यात्व है। इससे आत्मा कठोर हो जाता है। यह दुःखोंका दूत है, परद्रव्य जनित है, अन्धकूपके समान है, कठिनाईसे हटाया जा सकता है, यह मिथ्यात्व विभाव है। जीवको अनादि कालसे यह रोग लगा हुआ है, इसी कारण जीव परद्रव्यमें अहवुद्धि रखकर अनेक अवस्थाएँ धारण करता है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाययोग इसके कारण हैं। जिसमे देवके गुण न हों उसे देव मानता है, जिसमे गुरुके गुण न हों तथा हिंसाके उपदेशकको गुरु मानता है, और हिंसा आदि अधर्ममें धर्म समझता है उसका नाम मिथ्यात्व है।

२३-३२—स्थावर दशक जिसे अगाडी कहा जायेगा।

३३—जिस कर्मसे जीव नरकमें जाता है उसे 'नरक गति' कहते है।

३४—जिस कर्मके उदयसे जीव नरकमें जीवित रहता है, उसे 'नरकायु' पापकर्म कहते हैं।

३५—जिस कर्मके उदयसे जीवको विना इच्छाके नरकमें जाना पड़े, उसे 'नरकानुपूर्वी' पापकर्म कहते हैं।

३६-३९—जिस कर्मसे जीवको संसारमे अनन्त कालतक घूमना पडता है, उसे अनन्तानुवन्धी' पापकर्म कहते हैं। इसके चा

भेद हैं। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ जबतक जीवित रहता है ये प्रायः तबतक बने रहते हैं, और अन्तमें प्रायः नरकगति प्राप्त करता है।

अनन्तानुबन्धी चौकड़ीमें विशेषता

अनन्तानुबन्धी क्रोध-पर्वतकी लकीर जसा अमिट होता है। अनन्तानुबन्धी मान पत्थरका स्तंभ होता है। अनन्तानुबन्धी माया बांसकी जड़की तरह दृढ़ होती है। अनन्तानुबन्धी लोभ कृमिज रंगके समान पक्का होता है। इससे समदृष्टि नहीं होने पाता।

४०-४३—जिस कर्मसे जीवको देशविरतिरूप प्रत्याख्यानकी प्राप्ति न हो, उसे 'अप्रत्याख्यानी' पाप कर्म कहते हैं। इसके भी चार भेद हैं। 'अप्रत्याख्यान' क्रोध, मान, माया और लोभ। इनकी स्थिति एक वर्षकी है। इनके उदयसे अणुव्रत धारण करनेकी इच्छा नहीं होती, और मरने पर प्रायः 'तिर्यंचगति' होती है। अप्रत्याख्यान क्रोध पृथ्वीकी लकीरके समान है, मान दातका स्तभ है, माया मेढेके सींगके समान है। लोभ नगरके कीच जैसा है।

४४-४७—जिसके उदयसे सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यानकी प्राप्ति न हो, उसे 'प्रत्याख्यान' पापकर्म कहते हैं।

इसके चार भेद हैं, प्रत्याख्यानका क्रोध, मान, माया, लोभ इनकी स्थिति चार मासकी है। ये पापकर्म सर्वविरतिरूप पवित्र चरित्रको रोकते हैं, और मरकर प्राय. मनुष्यगति पा सकता है। प्रत्याख्यानका क्रोध वालुकी लकीरके समान है, मान लकडीके स्तभ

जैसा है, माया बैलके पेशावके आकारके समान है, लोभ गाड़ीके पहियेके खजनके रग जैसा है।

४८-५१—जिस कर्मसे यथाख्यात चरित्रकी प्राप्ति न हो, उसे 'संज्वलन' पापकर्म कहते हैं। इसके भी चार भेद है। सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, इनकी स्थिति १५ दिनकी है, और मरकर देवता बनता है। इसका क्रोध पानीकी लकीरकी भाति है। मान तृण स्तंभ जैसा है। माया वेतके फच्चट जैसा है, लोभ हल्दीके रंग जैसा है।

५२—जिस कर्मके उदयसे विना कारण या कारणवश हँसी आ जाय, उसे 'हास्य मोहनी' पापकर्म कहते हैं।

५३ – जिस कर्मके उदयसे अच्छे और मनके अनुकूल संयोग या पदार्थोमे अनुराग या प्रसन्नता हो, उसे 'रतिमोहनीय' पापकर्मकहते हैं।

५४—जिस कर्मसे बुरे और मनके प्रतिकूल संयोग तथा अनिष्ट पदार्थोंसे घृणा हो उसे 'अरतिमोहनीय' पापकर्म कहते हैं।

५५—जिस कर्मसे इष्ट वस्तुका वियोग होनेपर शोक हो उसे 'शोकमोहनीय' पापकर्म कहते हैं।

५६—जिस कर्मसे विना कारण या कारणवश मनमें भय हो उसे 'भयमोहिनी' कहते हैं।

५७—जिस कर्मसे दुर्गन्धी या बीभत्स पदार्थोंको देखकर घृणा हो उसे 'जुगुप्सामोहनीय' पापकर्म कहते हैं।

५८-६०—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेदका अर्थ पहले लिखा जा चुका है।

६१—जिस कर्मसे तिर्यंचगति मिले उसे 'तिर्यंचगति' कहते हैं।

६२—जिस कर्मसे जीवको जबरदस्ती तिर्यंचगतिमे जाना पड़े उसे 'तिर्यंचानुपूर्वी' पापकर्म कहते हैं।

६३—जिस कर्मके उदयसे जीवको एकेन्द्रिय जातिमे प्राप्त होना पड़े उसे 'एकेन्द्रिय जाति' पापकर्म कहते हैं। इसी प्रकार—

६४—बेन्द्रियजाति। ६५—तेन्द्रियजाति भी जानना चाहिये।

६६—चतुरिन्द्रियजाति पापकर्मोको भी समझना योग्य है।

६७—जिस कर्मके उदयसे जीव ऊंट, गधा, कव्वा, टीडे जैसी चाल चले उसे 'अशुभविहायोगति' पापकर्म कहते हैं।

६८—जिस कर्मसे जीव अपने ही अवयवोंसे दुःखी हो उसे 'उपघात' पापकर्म कहते है। वे अवयव प्रतिजिह्वा, (पडजीभ) कण्ठमाला छठी उंगली आदि हैं।

६९-७२—जिन कर्मोसे जीवका शरीर अशुभवर्ण, अशुभगन्ध, अशुभ रस और अशुभ स्पर्शयुक्त हो, उनको क्रमसे अप्रशस्तवर्ण, अप्रशस्तगन्ध, अप्रशस्तरस, अप्रशस्तस्पर्श पापकर्म कहते हैं।

लील और तवेकी स्याही जैसे रंग अशुभवर्ण हैं। दुर्गन्ध अशुभ गन्ध है। भारी, खरदरा, रूखा और शीतस्पर्श अशुभ स्पर्श हैं। तीखा और कडुवा रस अशुभ रस हैं।

७३-७७—जिन कर्मोंसे अन्तिम पाच सहननोंकी प्राप्ति हो उन्हे 'अप्रथमसंहनन' नाम पापकर्म कहते हैं।

वे पाच संहनन ये है—१—ऋषभनाराच, २—नाराच, ३—अर्धनाराच, ४—कीलिका, ५—सेवार्त।

१—हड्डियोंकी सन्धिमे दोनो ओरसे मर्कटवन्ध और उनपर लपेटा हुआ पट्टा हो लेकिन खीलना न हो वह 'ऋपभनाराच' संहनन है।

२—दोनों ओर मात्र मर्कटवंध हो वह 'नाराच' है।

३—एक ओर मर्कट वन्ध और दूसरी ओर खीला हो वह 'अर्धनाराच' है।

४—मर्कट वंधन न हो, सिर्फ खीलेसे ही हड्डिया जुड़ी हुई हों, वह 'कीलिका' है।

५—खीला न होकर योंही हड्डिया आपसमे जुड़ी हुई हों वह 'सेवार्त' है।

७८-८२—जिन कर्मोंसे अन्तिम पाच सस्थानोंकी प्राप्ति हो उन्हे 'अप्रथमसंस्थान' नाम पापकर्म कहते हैं। पाच सस्थान ये हैं। १—न्यग्रोधपरिमण्डल, २—सादि, ३—कुब्ज, ४—वामन और हुंड।

१—वड़के वृक्षको न्यग्रोध कहते हैं। वह जैसा ऊपर पूर्ण और नीचे हीन होता है, वैसे ही जिस जीवके नाभिका ऊपरी भाग पूर्ण और नीचेका हीन हो तो 'न्यग्रोधपरिमण्डल' सस्थान जानना चाहिये।

२—नाभिके नीचेका भाग पूर्ण हो ऊपरका हीन हो वह 'सादि' होता है।

३—हाथ, पर, सिर आदि अवयव ठीक हा और पेट तथा छाती हीन हो वह 'कुब्ज' है।

४—छाती और पेटका परिमाण ठीक हो और हाथ, पैर, सिर आदि छोटे हों तो 'वामन' होता है।

५—शरीरके सब अवयव हीन हों तो 'हुंड' होता है।

विपरीत त्रशदशक क्या हैं ?

१—जिस कर्मके उदयसे स्थावर शरीरकी प्राप्ति हो, उसे 'स्थावरनामकर्म' कहते हैं। स्थावर शरीरवाले एकेन्द्रिय जीव गर्मी या सर्दीसे चल फिर न सकनेके कारण दु:खसे अपना बचाव नहीं कर सकते।

२—जिस कर्मसे आखोंसे न देखने योग्य शरीर मिले, उसे 'सूक्ष्म' नामकर्म कहते हैं। निगोदके जीवोंका सूक्ष्म शरीर होता है।

३—जिस कर्मसे अपनी पर्याप्तिया पूरी किये विना ही जीव मर जावे, उसे 'अपर्याप्त' नामकर्म कहते है।

४—जिस कर्मसे अनन्त जीवोंको एक शरीर मिले उसे 'साधारण' नामकर्म कहते है। जैसे कि आलू, जमीकन्द आदि।

५—जिस कर्मसे कान, भौह, जीभ आदि अवयव अस्थिर होते है, उसे 'अस्थिर' नामकर्म कहते हैं।

६—जिस कर्मसे नाभिके नीचेका भाग अशुभ हो उसे 'अशुभ' नामकर्म कहते हैं।

७—जिस कर्मसे जीव किसीका प्रीतिपात्र न हो, उसे 'दुर्भग' नामकर्म कहते हैं।

८—जिस कर्मसे जीवका स्वर सुननेमें बुरा लगे, उसे 'दु:स्वर' नामकर्म कहते है।

९—जिसकर्मसे जीवका वचन लोगोमे माननीय न हो, उसे 'अनादेय' नामकर्म कहते है।

१०—जिस कर्मसे लोकमे अपयश और अपकीर्त्ति हो, उसे 'अयश कीर्त्ति' नामकर्म कहते है।

नोट—५—ज्ञानावरणकी, ६—दर्शनावरणकी, १—वेदनीय कर्मकी, २६—मोहनीय कर्मकी, १—आयुष्य कर्मकी, ३४—नाम-कर्मकी, १—गोत्रकर्मकी ५—अतराय कर्मकी।

सव मिलकर ८२ प्रकृतिएँ हुईं, जिन्हे जीव पाप प्रकृतिएँ होनेके कारण दुःख भोग करता है।

इति पाप-तत्त्व।

आस्रव-तत्त्व

आस्रव किसे कहते हैं ?

आत्मामे समवन्ध करनेके लिये जिसके द्वारा पुद्गल द्रव्य आते हैं उसे आस्रव कहते हैं, आस्रवमे पुण्य और पाप प्रकृतियें आत्मामे समय समय मिलती और निर्जरित होती रहतीं हैं। इसके सामने त्रस और स्थावर सव जीव वलहीन हो जाते हैं। ये द्रव्यास्रव- और भावास्रवके भेदसे दो तरहके हैं जैसे—

द्रव्यास्रव

आत्माके असंख्य प्रदेशोंमे पुद्गलका आगमन होना द्रव्यास्रव है।

भावास्रव

जीवके राग, द्वेष, मोह रूपी परिणाम भावास्रव है।

द्रव्यास्रव और भावास्रवका अभाव आत्माका सम्यक् स्वरुप है। जहां ज्ञानकी कलायें प्रगट होती हैं वहां अन्तरंग और वहिरंगमे ज्ञानको छोड़ कर और कुछ नहीं रहने पाता!

ज्ञायक आस्रव रहित होता है।

जो द्रव्यास्रव रूप नहीं होता और जहां पर भावास्रव भाव भी

नहीं है। और जिसकी अवस्था ज्ञानमय है, वही ज्ञायक आस्रव रहित समझा जाता है।

सम्यग्ज्ञायक निरास्रव रहता है

जिन्हें मन जान सके ऐसे बुद्धिग्राही अशुद्ध परिणामोंमें आत्म-बुद्धि नहीं रखता, और मनके अगोचर अर्थात् बुद्धिके अग्राह्य अशुद्ध भावोंको न होने देनेमें जो सावधान रहता है। इस प्रकार परपरिणतिका नाश करके जो मोक्ष मार्गमे प्रयत्न करता हुआ संसार सागरसे पार होता है, वह सम्यग्ज्ञानी आस्रव रहित कहलाता है।

प्रश्न

संसारमे जिस तरह मिथ्यात्वी जीव स्वतन्त्र वर्ताव करता है उसी प्रकार समदृष्टि जीवकी सदैव प्रवृति रहती है। दोनोंके मनकी चंचलता, असंयत वचन, शरीरका स्नेह, भोगोंका सयोग, परिग्रह-का संचय और मोहका विकाश एक ही तरहका होता है, फिर सम-दृष्टि जीव किस प्रकारसे आस्रव रहित हो सकता है ?

उत्तर

पूर्व कालमे अज्ञानावस्थासे जो कर्म बंध किए थे, अब वे उदयमे आकर अपना फल देते हैं, उनमे अनेक तो शुभ हैं जो सुखदायक है, और अनेक अशुभ भी है जो दु खदायक हैं। अतः समदृष्टि जीव इन दोनों प्रकारके कर्मेन्द्रियमे हर्ष और शोक न रख-कर समभाव रखते है। वे अपने पदके योग्य क्रिया करते हैं परन्तु उसके फलकी आशा नहीं करते। संसारी होते हुए भी मुक्त कहलाते

हैं। क्योंकि सिद्धोंके समान देह आदिके ममत्वसे अलिप्त है। वे मिथ्यात्व रहित है अनुभव युक्त हैं। अत: ज्ञानी निरास्रव हैं।

राग, द्वेष, मोह और ज्ञानका लक्षण

मुहब्बतमे राग भाव है, नफरतका भाव द्वेप है, परद्रव्यमे अह-बुद्धिका भाव मोह और तीनोंसे रहित निर्विकार भाव सम्यग्ज्ञान है।

राग, द्वेष, मोह ही आस्रव है

राग, द्वेष, मोह ये तीनों आत्माके विकार हैं। आस्रवके कारण हैं, और कर्मवन्ध करके आत्माके स्वरूपको भुलाने वाले हैं। परन्तु जहा राग-द्वेप और मोह नहीं है वह सम्यक्त्व भाव है, इसीसे समदृष्टि आस्रव रहित है।

निरास्रवी जीवोंका सुख

जो कोई निकट भव्यराशि ससारी जीव मिथ्यात्वको छोड़कर सम्यग्भाव ग्रहण करता है, निर्मल श्रद्धानसे राग, द्वेप, मोहको जीत लेता है, प्रमादको हटाता है, चितको शुद्ध कर लेता है। योगोंको निग्रह कर शुद्धोपयोगमे लीन रहता है, वह ही वन्धकी परम्पराको नष्ट करके परवस्तुका सम्वन्ध छोड़ देता है, और अपने रूपमे मग्न होकर निज स्वरूपको प्राप्त होकर सिद्ध अवस्थाको पा लेता है।

उपशम तथा क्षयोपशमकी अस्थिरता क्यों है ?

जिस प्रकार लुहारकी संडासी कभी अग्निमे गर्म होती है और कभी पानीमे ठढी होती है, उसी प्रकार क्षयोपशमिक और औपश-

मिक समदृष्टि जीवोकी दशा है, अर्थात कभी मिथ्यात्व भाव प्रगट होता है तो कभी ज्ञान ज्योति चमक जाती है, जब तक ज्ञानका अनुभव रहता है तब तक चरित्र मोहनीयकी शक्ति और गति-कीलित सर्पके समान शिथिल रहती है, और जब मिथ्यात्वरस देने लगता है तब वह उकीले हुए सर्पकी प्रगट हुई शक्ति और गतिके समान अनन्त कर्मोका बन्ध बढ़ाता है।

विशेषार्थ

उपशम* सम्यक्त्वका उत्कृष्ट व जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, और क्षयोपशम१ सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल ६६ सागर२ और जघन्य काल अन्तर मुहूर्त है। ये दोनों सम्यक्त्व नियमसे नष्ट ही हो जाते है। अत जब तक सम्यक्त्व भाव रहता है तब तक आत्मा एक प्रकारकी विलक्षण शाति और आनन्दका अनुभव करता है, और जब तक सम्यक्त्व भाव नष्ट होकर मिथ्यात्वका उदय होता है तब आत्मा अपने स्वरूपसे स्खलित होकर कर्म परम्पराको बढ़ाता है।

---

* अन्तानुबन्धीकी चार और दर्शनमोहनीयकी ३ इन सात प्रकृतिओंका उपशम होनेसे उपशम सम्यक्त्व होता है।१ अनन्तानु-बन्धीकी चौकड़ी और मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व मिथ्यात्व इन छह प्रकृतिओंका अनुदय और सम्यक्प्रकृतिका उदय रहते हुए क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है।२ अनन्त संसारकी अपेक्षासे तो यह बहुत ही थोड़ा है।

अशुद्धनयसे वन्ध और शुद्ध नयसे मुक्ति

आत्माको शुद्ध नयकी रीति छोड़नेसे वन्ध और शुद्धनयकी रीति ग्रहण करने से मोक्ष होता है। ससारी जीव कर्मके चक्करमे भटकता हुआ मिथ्यात्वी हो रहा है और अशुद्धतामे घिरा पड़ा है, मगर जव अन्तरगका ज्ञान उज्वल होता है तव निर्मल प्रभुताकी झाकी होती है। शरीरादिसे स्नेह हटा देता है। राग, द्वेप, मोह छूट जाता है तव समता रसका स्वाद मिलता है, शुद्धनयका सहारा पाकर अनुभवका अभ्यास वढ़ाता है। तव पर्यायमेसे अहवुद्धि नष्ट हो जाती है और अपने आत्माका अनादि, अनन्त, निर्विकल्प नित्यपद अवलम्वन करके आत्मस्वरूपको देखता है।

शुद्धात्मा ही निरास्रव और सम्यग्दर्शन है।

जिसके उजालेमे राग, द्वेप, मोह नहीं रहते हैं, आस्रवका अत्यन्ताभाव हो जाता है। तव वन्धका त्रास मिट जाता है। जिसमे समस्त पदार्थोके त्रिकालवर्ती अनन्तगुणपर्याय प्रतिविंवित होते है, और जो आप स्वय अनन्तानन्त गुण पर्यायोंकी सत्ता सहित है, ऐसा अनुपम, अखण्ड, अचल नित्य ज्ञानका निधान चिदानन्द घन ही सम्यग्दर्शन है। भावश्रुतज्ञान प्रमाणसे पदार्थको विचारा जाय तो वह अनुभव गम्य है, और द्रव्यश्रुत अर्थात् शव्द शास्त्रसे विचारा जाय तो वचनसे कहा नहीं जाता। अत आत्मानुभवमे लीन रहने के लिये उस आस्रवके अलग २ भेद ज्ञानिओंने इस प्रकार कह कर वताये हैं।

जघन्य आस्रवके २० भेद

(१) मिथ्यात्व, आस्रव, (२) अव्रत आस्रव, (३) कषाय आस्रव, (४) योग आस्रव, (५) प्रमाद आस्रव. (६) प्राणातिपातास्रव, (७) मृषावादास्रव, (८) अदत्तादानास्रव, (९) मैथुनास्रव, (१०) परिग्रहास्रव (११) श्रुतेन्द्रियास्रव, (१२) चक्षुरिन्द्रियास्रव, (१३) घ्राणेन्द्रियास्रव, (१४) रसेन्द्रियास्रव, (१५) स्पर्शेन्द्रियास्रव, (१६) मनोयोगास्रव, (१७) वचनयोगास्रव, (१८) काययोगास्रव (१९) अयत्न पूर्वक भंडोपकरणदानादानास्रव, (२०) अयत्न पूर्वक सूची कुशाग्रग्रहणस्थापनास्रव।

उत्कृष्ट आस्रवके ४२ प्रकार

५—इन्द्रियाँ, ४—कषाय, ५—अव्रत. ३—योग २५—क्रियाये ये आस्रवके ४२ प्रकार है।

आस्रवके दो प्रकार

भावास्रव, द्रव्यास्रव।

भावास्रव

जीवका शुभ-अशुभ परिणाम भावास्रव है।

द्रव्यास्रव

शुभ-अशुभ परिणामोंको पैदा करनेवाली ४२ प्रकारव वृत्तियोको द्रव्यास्रव कहते हैं।

दो प्रकारकी इन्द्रियें

द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय पुद्गल रूप है, और भावेन्द्रिय जीवकी शब्दादिके ग्रहण करनेकी शक्ति है।

कषाय चार हैं

१—क्रोध, २—मान, ३—माया, ४—लोभ।

अव्रत पांच हैं

५—प्राणातिपात, ६—मृषावाद, ७—अदत्तादान, ८—मैथुन, ९—परिग्रह।

तीन योग

१०—मनोयोग, ११—वचनयोग, १२—कायायोग।

पांच इन्द्रिय

१३—श्रोतेंद्रिय, १४—चक्षुरिन्द्रिय, १५—घ्राणेन्द्रिय, १६—रसेन्द्रिय, १७—स्पर्शेंद्रिय।

२५ क्रिया

१८—असावधानीसे शरीरके व्यापारसे जो क्रिया लगती है उसे 'कायिकी' क्रिया कहते हैं।

१९—जिस क्रियासे जीव नरकमे जानेका अधिकारी होता है, उसे 'अधिकरणिकी' कहते हैं। जैसे तलवार आदिसे सक्लिष्ट भावों द्वारा किसी जीवकी हत्या करना।

२०—जीव तथा अजीवके ऊपर द्वेष करनेसे 'प्राद्वेषिकी'।

२१—अपने आपको और दूसरोंको तकलीफ देनेसे 'पारितापनिकी' क्रिया लगती है।

२२—दूसरोंके प्राणोंका नाश करनेसे 'प्राणातिपातिकी'।

२३—खेती वाडी आदि करनेसे 'आरम्भिकी'।

२४—धान्यादिके संग्रह तथा उनपर ममता रखनेसे 'पारिग्रहिकी'।

२५—औरोंको ठगनेसे 'मायाप्रत्ययिकी'।

२६—वीतरागके वचनसे विपरीत-मिथ्यादर्शनसे 'मिथ्यादर्शन-प्रत्ययिकी' क्रिया लगती है।

२७—संयमके नाशक कषायोंके उदयसे प्रत्याख्यानका न करना 'अप्रत्याख्यानिकी'।

२८—रागादि कलुषित चित्तसे पदार्थोंको देखनेसे 'दृष्टिकी'।

२९—रागादि कलुषित चित्तसे स्त्रियोंका अंग स्पर्श करनेसे 'स्पृष्टिकी' क्रिया लगती है।

३०—जीवादि पदार्थोंको लेकर कर्मबन्धसे जो क्रिया लगती है उसे 'प्रातीत्यकी' कहते है।

३१—अपना वैभव देखनेके लिये आये हुए लोगोंकी वैभव विषयक प्रशंसाको सुनकर प्रसन्न होनेसे—तथा घी, तेल आदिके खुले हुए बर्तनोंमे त्रस जीवोंके गिरनेसे जो क्रिया लगती है उसे 'सामन्तोपनिपातिकी' कहते हैं।

३२—राजा आदिकी आज्ञासे यन्त्र-शस्त्र-अस्त्र आदिके बनाने तथा खींचने आदिसे 'नैशस्त्रिकी' क्रिया कहलाती है।

३३—हिरन, खरगोश आदि जीवोंको शिकारी कुत्तोंसे मरवाने-से या स्वयं मारनेसे जो क्रिया लगती है वह 'स्वहस्तिकी' कहलाती है।

३४—जीव तथा जड पदार्थोंको किसीकी आज्ञासे या स्वयं लाने ले जानेसे जो क्रिया लगती है उसे 'आनयनिकी' कहते है।

३५—जीव और जड़ पदार्थोंको चीरनेसे 'विदारिणिकी' क्रिया लगती है।

३६—बे पर्वाहीसे चीज वस्तु उठाने रखनेसे तथा चलने फिरनेसे 'अनाभोगिकी' क्रिया होती है।

३७—इस लोक तथा परलोकके विरुद्ध आचरण करनेसे 'अनवकाक्षाप्रत्ययिकी'।

३८—मन, वचन और शरीरके अयोग्य व्यापारसे 'प्रायोगिकी' क्रिया लगतो है।

३९—किसी महापापसे आठों कर्मका समुदित रूपसे वन्धन हो तो 'सामुदायिकी'।

४०—माया और लोभ करनेसे जो क्रिया लगती है उसे 'प्रेमिकी' कहते हैं।

४१—क्रोध करनेसे तथा मान करनेसे द्वेपिकी' क्रिया कहते हैं।

४२—मात्र शरीर व्यापारसे जो क्रिया लगती है उसे ईर्याप-थिकी' क्रिया कहते हैं।

यह क्रिया अप्रमत्त साधु तथा सयोगी केवली को भी लगती है।

इति आस्रव-तत्त्व।

संवर-तत्त्व

—००:०:००—

संवरका लक्षण

जिसके द्वारा आत्मासे पुद्गल द्रव्यका सबन्ध न हो सके उसे 'सवर' कहते हैं। अथवा जो ज्ञान-दर्शन उपयोगको प्राप्त करके योगोंकी क्रियासे विरक्त होता है, और आस्रवको रोकता है वह 'सवर' पदार्थ कहलाता है।

मोक्षका मार्ग संवर है

मोक्षका मार्ग एक सवर है, यह सवर जितना इन्द्रिय कपाय सज्ञा आदिका निरोध करे उतना ही होता है, अर्थात् जितने अशमे आस्रवका निरोध होता है उतने ही अशमे सवर हो जाता है। इन्द्रिय, कपाय, संज्ञा, ये भाव पापास्रव है इनका निरोध करना भावपापसवर है। ये ही भावपापसवर द्रव्यपापसवरके कारण है। अर्थात् जब इस जीवके सब अशुद्ध भाव ही नहीं होते तब पौद्गलिक वर्गणाओंका आस्रव भी नहीं रहने पाता, क्योकि जिस जीवके राग, द्वेप, मोहरूपभाव परद्रव्योंमे नहीं है उसी ही समरसीके शुभाशुभ कर्मास्रव नहीं होते, उसे नियमसे सवर ही होता है इसी कारण राग, द्वेप, मोह, परिणामोंका रोकना भावसवर कहलाता है। उस

भावसंवरके निमित्तसे योगद्वारोंमे शुभाशुभ रूप कर्मवर्गणाओंका रुक जाना 'द्रव्यसवर' है।

भावसंवर

योगीकी सर्वथा प्रकारसे शुभाशुभ योगोंकी प्रवृत्तिसे निवृति हो जाती है, तब उसके आगामी कर्मोंके आनेमे रोक-थाम हो जाती है। क्योंकि मूलकारण भावकर्म है, जब भावकर्म चले जायँगे तब द्रव्य-कर्म आयगा क्योंकर। अत यह स्वय सिद्ध है कि—शुभाशुभ भावोंको रोकना भावपुण्य-पाप-सवर है। यह ही भावसवर द्रव्यपुण्य पापोंको रोकनेवालोंमे प्रधान कारण है।

ज्ञान संवर है

जो आत्माके गुणोका घातक है, और आत्मानुभवसे रहित है, ऐसा जो आस्रवरूप महा अन्धकार अखड अडेके समान सब जीवों-को घेरे हुए है। उस आस्रवको नष्ट करनेके लिए तीनों जगतमे विकास करनेमे सूर्यके समान जिसका प्रकाश है, और जिसमे सब पदार्थ प्रतिविम्बित होते है, तथा आप उन सब पदार्थोंका आकार रूप होता है, तथा आकाशके प्रदेशकी तरह उनसे अलिप्त ही रहता है। वह ज्ञानरूपी सूर्य शुद्ध सवरके रूपमे है।

ज्ञान परभावसे रहित है, अत. शुद्ध है, निज परका स्वरूप वतानेवाला है, इसलिये स्वच्छन्द है, इसमे किसी परवस्तुका मेल न होनेके कारण एक है। नय-प्रमाणकी इसमे वाधा न होनेसे अवा-धित है। अत यह भेदविज्ञानका ऐसा आरा जब अन्तरंगमे प्रवेश

करता है तब स्वभाव और विभावको अलग-अलग कर देता है और जड तथा चेतनका भेद बतला देता है। इसी कारण भेद-विज्ञानियोंकी रुचि परद्रव्यसे हट जाती है, वे धन परिग्रह आदिमे रहे तौभी बडे हर्षसे परमतत्वकी परीक्षा करते हुए आत्मिक रसका आनन्द लेते है।

सम्यक्त्वसे आत्मस्वरूपकी प्राप्ति

अनन्त ससारमे ससरण करता हुआ जीव काललब्धि—दर्शन-मोहनीयका अनादेय और गुरु उपदेश आदिका अवसर पाकर तत्वका श्रद्धान करता है, तब द्रव्यकर्म--भावकर्मोंकी शक्ति ढीली पड़ जाती है, और अनुभवके अभ्याससे उन्नति करते-करते कर्म बधनसे मुक्त होकर ऊर्ध्व गमन करता है, अर्थात् सिद्ध गतिको प्राप्त कर लेता है।

समदृष्टिका माहात्म्य

जिन्होंने मिथ्यात्वका विनाश करके तथा सम्यक्त्वका स्वाद अमृत जैसा चखकर ज्ञानज्योति प्रकट की है, अपने निज गुण, दर्शन, ज्ञान, चरित्रको ग्रहण कर चुके है। हृदयसे परद्रव्योंकी ममता छोड दी है, और देशव्रत, महाव्रत आदि ऊची-ऊंची क्रियाएँ स्वीकार करके ज्ञान ज्योतिको उत्तरोत्तर वढाता चला जाता है, वह आत्मज्ञ सुवर्णके समान है जिन्हें अब शुभाशुभ कर्म मल नहीं लगता है।

भेदज्ञान संवरका कारण है।

भेद ज्ञान निर्दोप है, सवरका कारण है सवर निर्जराका कारण है, और निर्जरा मोक्षका कारण है। इससे उन्नतिके क्रममे भेद विज्ञान ही परम्परा मोक्षका कारण है। किसी अवस्थामे उपादेय और किसी अवस्थामे त्याज्य है। क्योंकि भेदविज्ञान आत्माका निज स्वरूप नहीं है इसलिए मोक्षका परम्परा कारण है, असली कारण नहीं है। परन्तु उसके विना मोक्षके असली कारण सम्यक्त्व, सवर, निर्जरा नहीं होते, इसलिये प्रथम अवस्थामे उपादेय है, और कार्य होने पर कारण कलाप प्रपच ही होते है, इसलिये शुद्ध आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होने पर हेय है। क्योंकि भेद-विज्ञान वहीं तक सराहनीय है जब तक मोक्ष अर्थात शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती और जहा ज्ञानकी उत्कृष्ट ज्योति प्रकाश कर रही हो वहा पर अब कोई विकल्प नहीं रह गया है। अत जिन जीवों ने भेदज्ञानरूप सवर प्राप्त किया है वे मोक्षरूप ही कहलाते हैं, और जिनके हृदयमे भेदविज्ञान नहीं है वे कम समझ प्राणी शरीरादिमें सदैव बन्धते रहते हैं। इससे यह परिणाम निकला कि — सम्यग्दृष्टिरूप धोबी है, भेदविज्ञानरूप साबुन है और समतारूप निर्मल जलसे आत्म गुण रूप वस्त्रको साफ करते हैं।

गदले पानीमे निर्मली डालनेसे वह पानीको साफ करके मेल हटा देती है। दहीका मथने वाला दहीको मथकर मक्खनको निकाल लेता है, हंस दूध पी लेता है और पानीको छोड़ देता है उसी तरह ज्ञानी जन भेद-विज्ञानके वलसे आत्मसम्पदाको ग्रहण करते हैं, तथा राग-द्वेप आदि अथवा पुद्गलादि परपदार्थोंको त्याग देते हैं।

भेदविज्ञान मोक्षकी जड़ है।

भेदविज्ञान आत्माके और परद्रव्योके गुणोंको स्पष्ट जानता है। परद्रव्योंसे अपनेको छुड़ाकर शुद्ध अनुभवमे स्थिर होता है, और उसका अभ्यास करके सवरको प्रगट करता है, आस्रव द्वारका निग्रह करके कर्मजनित महा अन्धकार नष्ट करता है राग-द्वेप आदि विभाव छोड़कर समता भाव स्वीकार करता है, और विकल्प रहित निज पद पाता है, तथा निर्मल, शुद्ध, अनन्त, अचल और परम अतिन्द्रिय सुख प्राप्त करता है। अत मोक्षके कारण भूत संवरके २० और ५७ भेद वर्णन किये जाते है।

संवरके २० भेद

(१) सम्यक्त्व-सवर, (२) व्रत-संवर, (३) अप्रमाद-सवर, (४) अकपाय-सवर, (५) अयोग-सवर, (६) अहिंसा-संवर, (७) सत्य-सवर, (८) अचौर्यकर्म-संवर, (९) ब्रह्मचर्य-सवर, (१०) अपरिग्रह-सवर, (११) श्रुतेन्द्रियनिग्रह सवर, (१२) चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह-सवर, (१३) घ्राणेन्द्रिय निग्रह-सवर, (१४) रसेन्द्रिय निग्रह-संवर, (१५) स्पर्शेन्द्रिय निग्रह-सवर, (१६) शुभमनोयोग-संवर, (१७) शुभवचन

योग-सवर, (१८) शुभकाययोग-संवर, (१६) सुयत्नपूर्वक भंडोपकरणा दान निक्षेप-संवर, (२०) सुयत्नपूर्वक सूची कुशाग्रादान निक्षेप-संवर।

उत्कृष्ट ५७ भेद इस प्रकार हैं

पांच समिति

१—ईर्या समिति, २—भापा समित, ३—एपणा समिति, ४—आदान निक्षेप समिति ५—परिष्टापनिका समिति।

ईर्यासमिति किसे कहते हैं ?

१—कोई जीव चलते समय पैरसे दव न जाय इस प्रकार राहमे सावधानीसे ३॥ हाथ अगाडीकी भूमि देखकर चलना।

इसके चार भेद हैं।

१— आलवन, २—काल, ३—मार्ग, ४—यत्ना।

विशेषार्थ

१—ईर्याका आलम्वन, ज्ञान, दर्शन, चरित्र है।

२—ईर्याके कालमे देखे विना न चलना, रात्रिमे प्रतिलेखना विना न चलना।

३—ईर्याका मार्ग—कुत्सित मार्गसे न चलना।

ईर्याकी यत्नाके ५ भेद

१—द्रव्यसे—देखे विना न चले।

२—क्षेत्रसे—३॥ हाथ भूमि देखे विना न चले।

३—कालसे—जबतक चले।

४—भावसे उपयोग पूर्वक दश बातें त्याग दे, (१) शब्द (२) रूप (३) रस (४) गन्ध (५) स्पर्श (६) पढ़ना (७) पृछना (८) परिवर्तना (९) अनुप्रेक्षा (१०) धर्मकथा। ये दश कार्य चलते समय न करे।

५—गुणसे—निर्जराके लिये।

भाषासमितिके ५ भेद

१—द्रव्यसे—विना विचारे न बोले।

२—क्षेत्रसे—चलते समय बातें न करे।

३—कालसे—तीन घण्टे रात बीतनेपर उच्चस्वरसे न बोले।

४—भावसे—उपयोग पूर्वक आठ प्रसङ्ग छोड़कर वार्तालाप करे।

(१) क्रोध (२) मान (३) माया (४) लोभ (५) हँसी (६) भय (७) बेतुकी बातें कहना (८) विकथा।

५—गुणसे—निर्जराके लिये।

एषणा समितिके ५ भेद

१—द्रव्यसे—४२ दोष रहित आहार ले।

२—क्षेत्रसे दो कोससे अधिक आहार-विहारमे न ले जावे।

३—कालसे—पहले पहरका लाया हुआ आहार पिछले पहरमें न खाय।

४—भावसे उपयोग पूर्वक, पाच दोष मण्डलके न लगने दे, यथा—

५—गुणसे—निर्जराके लिये।

परिष्ठापनिका समतिके ५ भेद

१—द्रव्यसे—दश बोलको छोडकर परिष्ठापना करे।

अणावायमसंलोए, अणावायचेव होय संलोए।
अवायमसंलोय अवायचेवसंलोय ॥१॥
अणावायमसंलोए परस्सणुवघाइए।
समे अज्झुसिरे यावि अचिरकालकयम्मिय ॥२॥
विच्छिन्ने दूरमोगाढे, नासन्ने बिलवज्जिए।
तसपाणबीयरहिए, उच्चाराईणि वोसिरे ॥३॥

२—क्षेत्रसे—अचित्त स्थानमें।

३—कालसे—दिनमें देखकर रातको पूंजकर परठे इत्यादि।

४—भावसे उपयोग पूर्वक।

५—गुणसे—निर्जराके लिये।

तीन गुप्तिएँ

मनोगुप्तिके ५ भेद

वचनगुप्तिके ५ भेद

१--द्रव्यसे सरभ, समारभ, आरंभमे वचनको न लगावे।

२--क्षेत्रसे--जहा भी निवास करता हो।

३--कालसे--दिन रात।

४--भावसे--उपयोग पूर्वक।

५--गुणसे-- निर्जरार्थ।

कायागुप्तिके पांच भेद

१--द्रव्यसे--सरभ, समारंभ, आरंभमे काययोग न लगावे।

२--क्षेत्रसे--जिस क्षेत्रमे हैं।

३--कालसे--दिन रात।

४--भावसे--उपयोग पूर्वक।

५--गुणसे--निर्जरार्थ।

ये आठ दयामाताके प्रवचन हैं

१--उपयोगसे चलना 'ईर्या समिति' है।

२--निर्दोप भापा कहना 'भापा समिति' है।

३--निर्दोप आहार ४२ दोप रहित लेना, एपणा समिति है।

४--आखोंसे देखकर रजोहरणसे मार्जन करके वस्तुओंका रखना, उठाना, 'आदान निक्षेप समिति' है।

५--कफ, मूत्र, मल आदिको निर्जीव स्थानपर त्यागना 'परिष्ठापनिका' समिति है।

६ मनोगुप्तिके तीन भेद

१—असत्कल्पना वियोगिनी—आर्त तथा रौद्रध्यान सम्बन्धी कल्पनाओंका त्यागना।

२—समताभाविनी—सब जीवोंमे समभाव रखना।

३—केवल ज्ञान होनेपर सम्पूर्ण योगोंका निरोध करते समय 'आत्मारामता' होती है।

७ वचनगुप्तिके दो भेद

१—'मौनावलम्बिनी'—किसी अभिप्रायको समझानेके लिये भृकुटी आदिसे संकेत न करके 'मौन धारण' करना।

२—'वाङ्नियमिनी' मुखवस्त्रिकाको रखना।

८ कायगुप्तिके दो भेद

चेष्टानिवृत्ति—योगनिरोधावस्थामे केवलीका सर्वथा शरीर चेष्टाका परिहार तथा कायोत्सर्गके समय अनेक उपसर्ग होनेपर भी शरीरको स्थिर रखना है।

'यथा सूत्रचेष्टानियमिनी'—साधु लोक उठते, बैठते, सोते समय जैनसिद्धान्तके अनुसार शारीरिक चेष्टाओंको नियमित रखते हैं।

२२ परिषह

१ क्षुधापरिषहजय

भूख लगनेपर धैर्य रखना, यह सबमे कड़ा है।

२ पिपासा परिषह

निर्दोष और अचित पानी न मिलनेपर प्यासके वेगको रोकना।

३ शीतपरिषह

तीन वस्त्रसे अधिक न रखना और शील लगनेपर सेकने तापने-की इच्छा न करना शीतपरिषह है।

४ उष्णपरिषह

गर्मीके दिनोंमे आतापना लेना, स्नान न करना, छाता न तानना, पखेसे हवा न करना, गर्मीको समभावसे सहना, यह 'उष्णप-रिषह' कहलाता है।

५ दंशपरिषह

डास, मच्छर, साप, विच्छूके उपद्रवको सहना, इनके डरसे मच्छरदानी न तानना।

६ अचेलपरिषह

पुराने वस्त्र रखना, और वह भी तीनसे अधिक न रखना, "तिवत्थेहिं पायचउत्थेहिं इत्याचारागवचनात" और गर्मीमे एक या दो रखना, तथा उनको भी त्याग देना।

७ अरतिपरिषह

प्रतिकूल सयोगमे खेद न करना।

८ स्त्रीपरिषह

स्त्रियोंके हाव-भावोंमे मोहित न होना स्त्रीपरिषह है।

९ चर्यापरिषह

जंघामे बल रहते हुए एक स्थानपर न रहकर सदैव विचरते रहना। अप्रतिबद्धविहारी होकर धर्मोपदेश करनेके लिये घूमना।

१० नैषेधिकीपरिषह

भयका निमित्त मिलनेपर भी ध्यानसे आसन न हटाना, श्मशान, शून्यमकान, गुफा आदि स्थानोंमे ध्यान करते समय नाना उपसर्ग आनेपर निषिद्ध चेष्टा न करना।

११ शय्यापरिषह

जहा ऊंची-नीची जमीन हो, धूल पडी हो, विस्तर अनुकूल न हो, नींदको हानि पहुचती हो, परन्तु उस समय मनमे उद्वेग न करना।

१२ आक्रोशपरिषह

किसीकी गाली या कटुक वचनका सहना, स्वयं कटुक शब्द न कहना।

१३ बधपरिषह

कोई मारे पीटे या जान निकाल दे तब भी क्रोध न करे। साधुका यही धर्म है, इसके विना वह धर्मद्रोही है।

१४ याचनापरिषह

उनके स्थानपर यदि कोई गृहस्थ किसी वस्तुको लाकर दे तब न लेना, किन्तु स्वय भीख मागनेके लिये जाना, अगर वहा कोई अपमान कर दे तो उसे सहना, बुरा न मानना, मानहानि न समझना, प्राण जानेपर भी आहारके लिये दीनतारूप प्रवृत्तिका सेवन न करना।

१५ अलाभपरिषह

अन्तराय कर्म के उदयसे वाछित पदार्थकी प्राप्ति न हो तब खेद खिन्न न होना। समचित्तवृत्ति रखना।

१६ रोगपरिषह

रोग जनित कष्ट सहना, परन्तु उसके दूर करनेका उपाय न करना, यह सोचना कि अपना किया कर्मफल मिल रहा है, किन्तु वेदना प्रयुक्त आर्तध्यान कभी न करना, 'रोगपरिषह' जीतना है।

१७ तृणस्पर्शपरिषह

घास फूसकी शय्या चुभने लगे तब व्याकुल न होकर शान्त चित्तसे कठोर स्पर्शको सहना, तिनका या काटा चुभनेपर घबराहट न करना।

१८ मलपरिषह

मलमूत्र या दुर्गंधित पदार्थोंसे ग्लानि न करना, तथा पसीनेसे शरीर कष्ट पाता हो, या शरीरमे मैल वढ़ गया हो, वदवू आने लगे

तव भी स्नान न करना क्योंकि यह शरीरका मडन वुरा है।

१६ सत्कारपुरस्कारपरिषह

मान अपमानकी परवाह न करना, अनादर पाकर संक्लेश भाव पैदा न करना।

२० प्रज्ञापरिषह

विशाल ज्ञान पाकर गर्व न करना, वडी विद्वता पाकर घमण्डी न वनना।

२१ अज्ञानपरिषह

अल्पज्ञान होनेसे लोग छोटा गिनते हैं, इससे शायद दुःख होने लगे तो उसे दमन करते हैं, उसे साधु समतासे सहते हैं तथा ज्ञाना-वरणीय कर्मके उदयसे पढते समय खूब परिश्रम करनेपर भी ज्ञान न प्राप्त होता हो, तव साधु कुछ भी चिन्ता न करे, विद्या न आनेपर अपनेको न धिक्कारे, किन्तु अपने कृतकर्मका परिणाम सोचकर सन्तोप धारण करे।

२२ दर्शनपरिषद

दर्शनमोहनीय कर्मके उदयसे सम्यग्दर्शनमे कदाचित् दोप उत्पन्न होने लगे तव सावधान रहे चलायमान न हो, वीतरागके उपदिष्ट पदार्थो पर सन्देह न करे। इत्यादि २२ परिपह हैं।

दश विध यति धर्म

१—सव प्राणियोंपर समान दृष्टि रखनेसे तथा उनमें और

अपनेमे अभेद दृष्टि रखनेसे क्रोध नहीं होता। क्रोधका न होना 'क्षमा' है।

२—अहकारका त्याग करना 'मार्दव' है।

३—कपट न करना 'आर्जव' है।

४—लोभ न करना 'मुक्ति' है।

५—इच्छाका रोकना 'तप' है। वह बाह्य और अभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का है।

६—प्राणातिपात (हिंसा) आदिका त्यागना 'सयम' है।

७—सच बोलना 'सत्य' है।

८—अपने वर्तावसे किसीको कष्ट न होना तथा शरीर और मन तथा आत्माका पवित्र रखना 'शौच' है।

९—सब परिग्रहोंका त्यागना 'अकिंचनत्व' कहाता है।

१०—मैथुन तथा इन्द्रिय विषय-वासनाओका त्याग करना, तथा आत्म गुणमे रमण करना 'ब्रह्मचर्य' कहलाता है।

ऊपर कहे गये दश गुण जिसमे हों, वही साधु होता है।

१२ भावना

१ अनित्य भावना

शरीर, कुटुम्ब, धन, परिवार, जीवन, पर्याय, सब विनाशी हैं, जीवका मूल धर्म अविनाशी हैं चाद-सूर्य उदय होकर नित्य अस्त हो जाते हैं, छहों ऋतुएँ बदलती रहती हैं। अपनी आयुको पल पल घटता देखते हैं, पानी पहाडोंसे बह कर नदिओंमे मिल जाता है,

परन्तु वहा वापस नहीं जाता, इसी भाति निकले हुए शरीरके श्वांस फिर न आयेंगे। युवावस्था ओस बून्दकी तरह लुप्त हो जाती है, संसारका वैभव आकाश धनुषकी तरह अधिक नहीं रहता। जिन्हें आप अपनी आखोंसे देख रहे हो वे सब वस्तुएं अनित्य हैं।

२ अशरण भावना

ससारमे मरणके समय जीवका त्राण शरण कोई नही है, आत्मा का धर्म ही शरणभूत है। काल वाजकी तरह वलवान् है, जीवरूप कवूतरको ससार वनमे घेर लेता है, उस समय बचाने वाला कोई नहीं है। मत्र, यंत्र, तत्रसे तथा सेना, धनसे जीवन और वैभव वच नहीं सकता। काल लुटेरा काय नगरमे से न जाने कव आत्म धन चुरा ले जाय, जिसकी खवर किसीको नहीं है। अत· अर्हन् प्रभुका उपेदिष्ट धर्म और सद्गुरुका शरण ही भव जलधिसे वेड़ा पार करेगा। अत चेतन! भ्रमणाकी भटकन छोड। और उनका साथ पकड।

३ संसार भावना

मेरे जीवने संसारमे भ्रम कर सब प्रकारके जन्म धारण किये है। हाय! इस ससारसे मैं कब छूटूंगा। यह ससार मेरा नहीं है। मैं तो अज हूं अजर-अमर हूं, मोक्षमय हूं। ससारमे जीव सर्वत्र जन्म-मरण और जरा रोगसे दु खी रहता है। सब द्रव्य-क्षेत्र काल भावोंमें परिवर्तनका दुधारा सहता रहा है। नरकके छेदन-भेदन आदि तथा पशु पर्यायके वध-वन्धन आदि अनन्त कष्ट

परवशतया अनन्तवार सह चुका है। रागके उदयसे देवता स्वर्गमे भी पराई सम्पत्तिको भी देख देख कर झूरता रहा है। इसी कारण उसे तीव्र रागानुबन्धमे देवभवसे पतित होकर एकेन्द्रियमे गिरना पडा, मनुष्य जन्म भी अनेक विपत्तियोसे घिरा हुआ है। पचम गति, मोक्षके विना किसीकी शरण सुखप्रद नहीं है।

४ एकत्व भावना

मेरा आत्मा अकेला ही है, अकेला ही आया है और अकेला ही जायगा, अपने किये कर्मोको अकेला ही भोगेगा। ससारको संगतिमे जन्म मरणकी मार लोहमे आगकी तरह खानी पडती है। कोई और सगी साथी आपत्तिमे न होगा। शरीर सबसे पहले जवाब दे जाता है। लक्ष्मी इस जन्मकी भी साथी नहीं होती, परिवार श्मशानमें जाकर अपने हाथो भस्म कर आता है। रोना, पीटना अपने सुखको याद करते समय होता है। उसके दुःखकी किसे पर्वाह है। मेलेमें पथिकोंकी प्रीति चार घडी रहती है। स्टेशनपर मुसाफिर दो घडी मिल पाते हैं। वृक्षोपर पक्षीगण एक रात बसेरा करते है। सूखे तालाबपर कोई नहीं जाता, इसी तरह स्वार्थमय ससारका स्वार्थमय प्रेम-सम्बन्ध है, हंस परलोकमे अकेला हो जाता है, इसके साथ और किसको पर मारना है ?

५ अन्यत्व भावना

इस विश्वमे कोई किसीका नहीं है, मोहकी मृगतृष्णा है, इनमे मिथ्या जल चमक रहा है। चेतनरूप मृग दौड-दौडकर थक चुका

है। सुखका जल क्षण मात्रको भी नहीं मिल पाता है, योंही भटक-भटक कर प्राण देकर मर रहा है। पर वस्तुको अपना मान कर नाहक मूर्ख बन रहा है। ओ आत्मन। तू तो चेतन है! अनन्त सुखकी राशि है। यह देह अचेतन है, जड है, नरककी कुंभी है किसपर मोहित है। आह तेरी कितनी नादानी है इसीमें अनादि कालसे दूध और पानीकी तरह मिलकर बिछुडता रहा है। जीव। तेरा रूप सबसे न्यारा और निराला है अब शुद्ध भेद विज्ञान प्राप्तकर पानीसे पयको अलग स्थापन कर। इसीको अलग करनेका अथक परिश्रम किया जाय।

६ अशुचि भावना

यह शरीर मल-मूत्रकी खान है, अपवित्र है जरा-रोगसे भरपूर है। मैं शरीरसे अलग ही वस्तु हू, तू किसकी पोपणा कर रहा है, इसे हाथीकी तरह नित्य क्यो धोता है, कितना ही धोता रह मगर इसे तो सदैव अशुद्ध ही रहना है, बाहरका पर्दा चाहे गौर वर्णका लगता है, परन्तु अन्दरकी रचना अत्यन्त घिनावनी है, माता पिताके रजोवीर्यसे ही तो आखिर यह तेरा देह बना है, खेहसे बननेवाली वस्तुपर इतना नेह आखिर किस लिये करता है, मास हाड, लहू, राधका परनाला है, इसमे कुछ सार तो नहीं है, फिर किसपर इतना आसक्त है। इसको अपावनताको तो जरा देख केसर चन्दन, फूल, मिठाई, कपडा, रेशम, इसकी जरासी सगतिर बेआब हो जाते है, तथा अपने मूल्यसे गिरकर मिट्टी बन जाते हैं

इसमेंसे तो ज्ञान, ध्यान, तप, सयमका ही सार निकाल। आखिर यह मानस देहमात्र धर्मका आराधन करनेके लिये ही तो है, नहीं तो अन्तमे इसे कव्वे और कुत्ते खायगे, या आगमे स्वाहा, या जमीनसे गायव।

७ आस्रव भावना

राग, द्वेष, मोह, अज्ञान, मिथ्यात्व, प्रमुख ये सव आस्रव हैं, इन्होंने पानीमे कवलकी तरह आत्माको भारी बना डाला है।

तालावका पानी जिस प्रकार उसमे आकर पड़नेवाली नालियोंसे बढ़ता है, इसी तरहसे पुण्य-पाप रूप कर्म-आस्रव जीवके प्रदेशोंमे आकर इसे भारी वनाए डालते हैं। इसके ५७ हेतु हैं। अत 'अह-भाव' ममता भावकी परिणतिका नाश कर, और निरास्रवी वनकर मोक्षका यतन कर, यदि तू ज्ञानी है तो।

८ संवर भावना

ज्ञान-ध्यानमे वर्तनेवाला जीव नवीन कर्मबध नहीं करता, जिस प्रकार उन नालियोंमे डाट लग जानेपर पानी आनेसे रुक जाता है, इसो प्रकार संवर भाव आस्रवोको एकदम रोक देता है महाव्रत, समिति, गुप्ति, यतिधर्म, भावना, परिषह सहना इत्यादि प्रयास सवर-मय हैं। ससार स्वप्न अवस्थासे निकाल कर यह प्रयत्न चेतनको जागृत दशामे लानेवाला है।

९ निर्जरा भावना

ज्ञान सहित चरित्र निर्जराका कारण है, जिस प्रकार रुके हुए

सवर जल नामक प्रयासको ताप सुका देता है, इसी प्रकार अतीत कालके कर्म जलको सुकानेवाली निर्जरा है। उदयावलीको भोग ले, क्योकि विपाकके समय आमके फल पक जाते है। मगर जिस भाति पालमे देकर भी फलको पका लिया जाता है इसी भाति उदीरणा-उद्यमसे भी कर्मको उदयमे लाकर उसे भोगकर आत्मासे अलग कर दिया जाता है। इसीलिये सवर समेत १२ प्रकारका तप करनेसे मुक्तिरानी जल्दी पा सकोगे। उस मुक्ति दुलहनको यह निर्जरा नामक सखी आत्मासे मिलानेमे सबसे चतुर है।

१० लोक स्वरूप भावना

१४—राजुलोकका स्वरूप विचारना।

११ बोधि दुर्लभ भावना

ससारसे भटकते हुए जीवको सम्यक्त्वका पाना तथा ज्ञानका पाना दुर्लभ है, अथवा सम्यक्त्वको पाकर भी सर्वविरति रूप चरित्र परिणाम रूप धर्मका पाना तो और भी दुर्लभ है। नर जन्म, आर्यदेश, आर्यजाति, आर्यकर्म आदिका योग मिलना बार-बार नहीं होता। ४—५ वा गुणस्थान दुर्लभ है। रत्नत्रयका आराधन और दीक्षा वहन दुर्लभ है। मुनि वनकर शुद्ध भावकी वृद्धि करना तो और भी दुर्लभ है। सबसे अलभ्य केवलज्ञान पाना है जिसे अब तक नहीं पा सका है।

१२ धर्म भावना

धर्म और सच्चा धर्मोपदेष्टा, तथा शुद्ध आगमका श्रवण कठिन है।

१२ भावनाओंका पृथक्-पृथक् मनन करनेवाले

१—भरतचक्रवर्ती, २—अनाथी महानिग्रन्थ, ३—शालिभद्र-इभ्य शेठ, ४—नमिराजऋृषि ५—मृगापुत्र, ६—सनत्कुमार चक्रवर्ती, ७—समुद्रपाली, ८—केशीगौतम, ९—अर्जुनमाली, १०—शिवराजऋृषि, ११—ऋृषभदेवजीके ९८ पुत्र, १२—धर्मरुचि ।

पाँच चरित्र

१ सामायिक चरित्र

सदोप व्यापारका त्याग, और निर्दोप व्यापारका सेवन अर्थात् जिससे ज्ञान, दर्शन, चरित्रकी सम्यक् प्राप्ति हो उसे या उस व्यापारको 'सामायिक चरित्र' कहते है ।

२ छेदोस्थापनीय चरित्र

प्रधान साधुके द्वारा प्राप्त पाचमहाव्रतोंको कहते हैं ।

३ परिहारविशुद्धि चरित्र

नव साधु गच्छसे अलग होकर सूत्रानुसार विधिके अनुकूल १८ मासतक तप करते हैं।

४ सूक्ष्मसम्पराय चरित्र

दशवें गुणस्थानमे पहूचे हुए साधुका श्रेष्ठ चरित्र ।

५ यथाख्यातचरित्र

सब लोकमे यथाख्यात चरित्र प्रसिद्ध है। जिसका सेवन करनेपर साधु मोक्ष पाता है, क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चार कषायोंका क्षय होनेपर जो चरित्र होता है उसका नाम 'यथाख्यात चरित्र' है।

इति संवर-तत्त्व ।
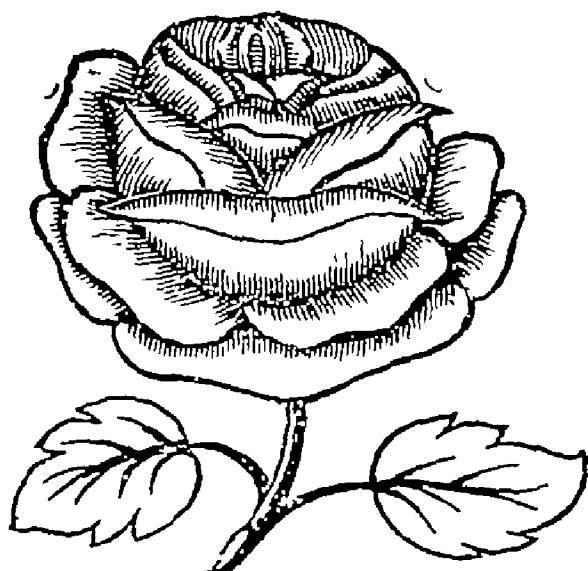
निर्जरा-तत्त्व

निर्जरा किसे कहते हैं ?

आत्मासे लगे हुए कुछ कर्म जिसके द्वारा अलग हो जायँ, उसे निर्जरा कहते हैं। जीव कपड़ेकी तरह है, इस पर कर्म रूप मैल चढ गया है, संयम साबुन है, ज्ञान रूप पानी है, इससे आत्मा उज्वल होता है। जिसे निर्जरा कहते हैं।

अथवा जो पूर्वस्थित-कर्म अपनी अवधि पूर्ण करके जब झड़नेको तत्पर होता है उसे 'निर्जरा, पदार्थ कहते हैं।

अथवा जो सवरकी अवस्था प्राप्त करके आनन्द करता है, जो पूर्वके बाधे हुएकर्मोंको नष्ट करता है, जो कर्मके फंदेसे छूटकर फिर नहीं फँसता उस भावको निर्जरा कहते हैं।

ज्ञानबलसे कर्म बन्ध नहीं होता

सम्यग्ज्ञानके प्रभावसे और वैराग्यके बलसे शुभाशुभ क्रिया करते हुए और उसका फल भोगते हुए भी कर्मबंध नहीं होता है। जिस प्रकार राजा खेलने या छोटे काम करने लगे तब भी वह खिलाड़ी कहलाता है, उसे कोई गरीब नहीं कहता। अथवा जैसे व्यभिचारिणी स्त्री पतिके पास रहती है तब भी उसका मन उसके उपपतिमे

ही रहता है, अथवा जिस प्रकार धाय अन्यके बालकको दूध पिलाती है, लाड करती है, गोदमे लेती है तब भी उसे दूसरेका बालक जानती है, अपना नहीं। मुनीम जैसे आय-व्ययका ठीक हिसाब रखता है, खजानेकी तालिया खुद रखता है, परन्तु उस धनको अपनी मालिकीमे नहीं समझता किन्तु रक्षक समझता है। उसी प्रकार ज्ञानी जीव उदयकी प्रेरणासे* भाति भातिकी शुभाशुभ क्रिया करता है, परन्तु उस क्रियाको आत्म स्वभावसे भिन्न कर्म जनित मानता है इससे सम्यग्ज्ञानी जीवको कर्मकालिमा नहीं लगती, जैसे कमल कीचसे उतपन्न होता है और दिन-रात कीच-कर्दमने रहता है परन्तु उस पर कीचड नहीं जमता, अथवा जिस प्रकारसे मन्त्रवादी अपने शरीरको सापसे कटवा लेता है परन्तु मन्त्रकी शक्तीसे उस पर विपका प्रभाव नहीं होता, अथवा जिस प्रकार जीभ चिकने पदार्थ खाती है, परन्तु चिकनी नहीं होती सदैव रूखी ही रहती है, अथवा जिस प्रकार सोना पानीमे पडा रहे तब भी उस पर काई नहीं आती। उसी प्रकार ज्ञानी जीव उदयकी प्रेरणासे भाति-भातिकी शुभाशुभ क्रिया करता है, परन्तु उसे आत्म स्वभाव से भिन्न कर्म जनित मानता है, इससे सम्यग्ज्ञानी जीवको कर्मकालिमा नहीं लगती।

वैराग्य शक्ति

सम्यग्दृष्टि जीव पूर्व जन्मके बधे कर्मोके उदयसे विपयादि

---

* गृहवासी, तीर्थंकर, भरत, चक्रवर्ती, राजाश्रेणिक, कृष्ण, वासुदेव, आदिकी समान।

भोगते हैं परन्तु उन्हे कर्मबध नहीं होता यह उनके अन्तरात्माके वैराग्यका प्रभाव है।

ज्ञान और वैराग्यसे मुक्ति

सम्यग्दृष्टि जीव सदैव अन्त करणमे ज्ञान और वैराग्य दोनों गुण धारण करते हैं। जिनके प्रतापसे निज आत्म-स्वरूपको देखते हैं। और जीव अजीव आदि तत्वोंका निर्णय करते हैं। वे आत्म अनुभव द्वारा निज स्वरूपमे स्थिर होते हैं। तथा ससार समुद्रसे आप स्वयं पार होते है और दूसरोंको पार करते हैं। इस प्रकार आत्म तत्वको सिद्ध करके कर्मोका फंदा हटा देते हैं। और मोक्षका आनन्द प्राप्त करते हैं।

सम्यग्ज्ञानके विना चरित्रकी निःसारता

जिस मनुष्यमे सम्यग्ज्ञानकी किरण तो प्रगट हुई न हो और अपनेको सम्यग्दृष्टि मानता है। वह निजके आत्म-स्वरूपको अवंधरूपमे निश्चय नयसे एकान्त पक्षको लेकर मानता है, शरीर आदि पर वस्तुमे ममत्व रखता है, और कहता है कि हम त्यागी हैं वह मुनिराजके समान वेप धरता है, परन्तु अन्तरगमे मोहकी ‹ स रूप ज्वाला धधकती है, वह सूना और मुर्दादिल होकर मुनिराज जैसी क्रिया करता है। परन्तु वह मूर्ख है। वास्तवमे वह साधु न कहलाकर द्रव्यलिंगी है।

भेद विज्ञानके विना कुछ नहीं

वह मूर्ख ग्रन्थ रचता है, धर्मकी चर्चा करता है, शुभ-अशुभ

क्रियाको जानता है, योग्य व्यवहार और सन्तोषको सम्भालता है, अर्हन प्रभुकी भक्ति करता है। उत्तम और निर्दोष उपदेश करता है। विना दिया कुछ नहीं लेना। बाह्य परिग्रह छोड़कर नग्न फिरता है, अज्ञान रसमें उन्मत होकर बालतप-अज्ञान कष्ट करता है। वह मूर्ख ऐसी क्रियायें करता है, परन्तु आत्म सत्ताका भेद नहीं जानता। आसन लगा कर ध्यान करता है, इन्द्रियोंका दमन करता है, शरीरसे अपने आत्माका कुछ सम्बन्ध नहीं गिनता धन, सम्पत्ति-का त्याग करता है [स्नान नहीं करता] प्राणायाम आदि योग साधन करता है। ससार और भोगोंसे विरक्त रहता है, मौन धारण करता है, कषायोंको मद करता है, वध-बन्धन सह कर सन्तापित नहीं होता। वह मूर्ख ऐसी क्रियायें करता है परन्तु आत्म-सत्ता और अनात्मसत्ताका भेद नहीं जानता। और जो सम्यग्ज्ञानके विना चरित्र धारण करता है या विना चरित्रके मोक्ष चाहता है, तथा विना मोक्षके अपनेको सुखी कहता है वह अज्ञानी है, मूर्खोंमें प्रधान अर्थात महामूर्ख है।

गुरु शिक्षा अज्ञानी नहीं मानता

श्रीगुरु ससारी जीवोंको उपदेश करते हैं कि-तुम्हें इस संसारमे मोह नींद लेते हुए अनन्तकाल बीत चुका है, अब तो प्रमादको छोड़-कर जागृत हो जाओ। और सावधान होकर शान्त चित्तसे

१- आसन, प्राणायाम, यम, नियम, धारणा, ध्यान, प्रत्याहार, समाधि ये आठ योग पहिचान।

भगवान वीतरागकी वाणी सुनो। जिससे इन्द्रियोंके विषयोंको जीता जा सके। मेरे समीप आओ मैं कर्म कलंक रहित 'आनन्दमय परमपद' तुम्हारे आत्माके गुण तुम्हे बताऊं। श्रीगुरु ऐसे वचन कहते हैं, तब भी ससारसे मोहीत जीव कुछ ध्यान नहीं देते। मानों वे मिट्टीके पुतलेके समान होते जा रहे हैं। अथवा चित्रमे लिखे मनुष्य हैं।

जीवकी शयनावस्था

इतने पर भी कृपालु गुरु जीवकी निद्रित और जाग्रत दशाका कथन मधुर भाषामे करते हुए बताते है कि-पहले निद्रित दशाको इस तरह विचारो कि—शरीर रूपी महलमे कर्मरूपी बड़ा पलग है, माया (कर्म प्रकृतिओं) की सेज सजाकर तैयार की गई है, जब राग द्वेषके बाह्य निमित्त नहीं मिलते तब मनमे नाना संकल्प विकल्प उठते हैं, यह कल्पनारूपी चादर है, स्वरूपकी विस्मृतरूप नींद ले रहा है, मोहके झकोरोंसे नेत्रोंके पलक ढॅक रहे हैं। कर्मोदयकी जबरदस्ती घुरकनेकी आवाज आती है। विषय सुखके कार्योंके हेतु भटकना ही एक प्रकारका स्वप्न है, ऐसी अज्ञान अवस्थामे आत्मा सदासे मग्न होकर मिथ्यात्वमे भटकता फिरता है, परन्तु अपने आत्म-स्वरूपको नहीं देखता।

जीवकी जाग्रत अवस्था

जब सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है तब जीव विचारता है कि—शरीररूप महल भिन्न है, कर्मरूप पलग जुदा है, मायारूप सेज भी

जुदी है, कल्पनारूप चादर भी जुदी है यह निद्रावस्था मेरी नहीं है पूर्वकालमे सोनेवाली मेरी दूसरी ही पर्याय थी अब वर्तमानका एक पल भी निद्रामें न बिताऊंगा। उदयका निवास और विषयका स्वप्न ये दोनों निद्राके संयोगमें दिखते थे। अब आत्मरूप दर्पणमें मेरे समस्त गुण दिखने लगे। इस प्रकार आत्मा अचेतन भावोंका त्यागी होकर ज्ञानदृष्टिसे देखकर अपने स्वरूपको सम्भालता है। तब इस प्रकार जो जीव संसारमे आत्मानुभव करके सचेत होता है, वह सदैव मोक्ष रूप ही है, और जो अचेत होकर सोते हैं वे संसारी है।

आत्मानुभव ग्रहण करो

जो जन्म मरणका भय हटा देता है, उपमा रहित है जिसे ग्रहण करने पर और सब पद विपत्ति रूप भासने लगते हैं. उस आत्मपद रूप अनुभवको अंगीकृत करो। क्योंकि यह संसार तो सर्वथा असत्य है, और जब जीव सोता है तब ही स्वप्नको सत्य मानता है, परन्तु जब जागता है तब वह उसे झूठा प्रतीत होता है, और शरीर अथवा धन सामग्रीको अपना गिनता है, तदनन्तर मृत्युका खयाल करता है तब उन्हे भी वह झूठा मानता है, जब अपने स्वरूपका विचार करता है तब मृत्यु भी असत्य ही जान पड़ने लगती है, और दूसरा अवतार सत्य दिखता है. जब दूसरे अवतार पर विचार करता है तब फिर इसी चक्करमे पड़ जाता है। इस प्रकार खोजकर देखा जाय तो यह जन्म मरण रूप समस्त संसार असत्य ही असत्य दिखता है।

सम्यग्ज्ञानीका आचरण

सम्यग्ज्ञानी जीव भेदविज्ञानको प्राप्त करके एक आत्मा ही को ग्रहण करता है, देहादिसे ममत्वके नाना विकल्प छोड देता है। मति, श्रुति, अवधि इत्यादि क्षायोपशमिक भाव छोड कर निर्विकल्प केवल ज्ञानको अपना स्वरूप जानता है, इन्द्रिय जनित सुख-दुःखसे रुचि हटाकर शुद्ध आत्म अनुभव करके कर्मोंकी निर्जरा करता है, और राग-द्वेष मोहका त्याग करके उज्वल ध्यानमे लीन होकर आत्माकी आराधना करके परमात्मा हो जाता है।

सम्यग्ज्ञान समुद्र है

जिस ज्ञानरूप समुद्रमे अनन्तद्रव्य अपने गुण और पर्यायों सहित सदैव प्रतिबिम्बित होते हैं, पर वह उन द्रव्योंकेरूपमे नहीं होता। और न अपने ज्ञायक स्वभावको ही छोडता है, वह अत्यन्त निर्मल जलरूप आत्मा प्रत्यक्ष है, जो अपने पूर्ण रसमे मौज करता है, तथा जिसमे मति श्रुति, अवधि, मनः पर्याय और केवल ज्ञान रूप पाच प्रकारकी लहरें उठती हैं जो महान् है, जिसकी महिमा अपार है, जो निजाश्रित है, वह ज्ञान एक है तथापि ज्ञेयोंको जाननेकी अनेकताको लिये हुए है।

भावार्थ—यहा ज्ञानको समुद्रकी उपमा दी है, समुद्रमे रत्नादि अनन्त द्रव्य रहते हैं, ज्ञानमे भी अनन्त द्रव्य प्रतिबिम्बित होते हैं, समुद्र रत्नादिरूप नहीं हो जाता है, ज्ञान भी ज्ञेय रूप नहीं होता। समुद्रका जल निर्मल रहता है, ज्ञान भी निर्मल रहता है। समुद्र

परिपूर्ण रहता है, ज्ञान भी परिपूर्ण रहता है। समुद्रमे लहरें उठती है, ज्ञानमें मति श्रुति, अवधि, मन पर्यय केवल ज्ञान आदि तरंगे उठती है। समुद्र महान् होता है, ज्ञान भी महान् होता है, समुद्र अपार होता है, ज्ञान भी अपार है। समुद्रका पानी निजाधार रहता है, ज्ञान भी निजाधार है, समुद्र अपने स्वरूपकी अपेक्षा एक और तरंगोंकी अपेक्षा अनेक होता है, इसी प्रकार ज्ञान भी ज्ञायक स्वभावकी अपेक्षा एक और ज्ञेयोको जाननेकी अपेक्षा अनेक होता है।

ज्ञान रहित क्रियासे मोक्ष नहीं

अनेक अज्ञजन कायक्लेश करते है, पाच धूनीकी अग्निमे अपने शरीरको जलाते हैं, गाजा, चरस, भाग, तमाखू आदि पीते हैं, नीचे सिर और ऊपर पैर करके लटकते है, महाव्रतोको लेकर तपश्चरणमे लीन रहते है, परिषह आदिका कष्ट उठाते हैं, परन्तु ज्ञानके विना उनकी यह सब क्रिया कण रहित पयालके पूलेके समान निस्सार है, ऐसे जीवोको कभी मुक्ति नहीं मिल सकती। वे पवनके वगूले (वंटोलिया) के समान संसारमे भटकते है,—कहीं ठिकाना नही पाते। जिनके हृदयमे सम्यग्ज्ञान है उन्हीं को मोक्ष है, जो ज्ञान शून्य क्रिया करते है, वे भ्रममे भूले हुए फिरते है।

मात्र क्रिया-लीनताका परिणाम

जो सिर्फ क्रियामे ही लीन है, और भेद-विज्ञानसे रहित है, तथा दीन होकर भगवानके नाम और चरणोंको जपता है, और इसीसे

मुक्तिकी इच्छा करता है, उसे आत्मानुभवके विना मोक्ष कैसे मिल सकती है। भगवानका स्मरण करनेसे, पूजा-पाठ पढ़नेसे, स्तुति गानेसे तथा अनेक प्रकारका चरित्र ग्रहण करनेसे कुछ नहीं हो सकता। क्योंकि मोक्ष स्वरूप तो आत्मानुभव ज्ञान गोचर है।

ज्ञानके विना मोक्ष कहां ?

कोई भी जीव विना प्रयोजनके कुछ भी उद्यम नहीं करता, विना स्वाभिमानके लडाईमे नहीं लड़ सकता, शरीरके निमित्तके पाये विना मोक्षकी साधना नहीं कर सकता, शील धारण किये विना सत्यका मिलाप साक्षात्कार नहीं होता। सयमके विना मोक्षका पद नहीं मिलता। प्रेमके विना रसकी रीति नहीं जानी जाती। ध्यानके विना चित्तकी स्थिरता नहीं होती, और इसी भाति ज्ञानके विना मोक्ष-मार्ग नहीं जाना जाता।

ज्ञानकी अपार महिमा है

जिनके अन्तरंगमे सम्यग्ज्ञानका उदय हो गया है,- जिनकी आत्म-ज्योति जाग्रत हो गयी है, और वुद्धि सदैव निर्मल रहती है। जिनकी शरीरादि पुद्गलसे आत्म-वुद्धि हट गई है। जो आत्माके ध्यान करनेमे स्थायी निपुणता प्राप्त है। वे जड़ और चेतनकी गुण परीक्षा करके उन्हे अलग-अलग जानते है, और मोक्ष-मार्गको भलीभाति समझ कर रुचि-पूर्वक आत्माका अनुभव करते है।

अनुभवकी प्रशंसा

अनुभव रूप चिन्तामणि रत्नका जिसके हृदयमे प्रकाश हो जाना

है वह पवित्र आत्मा चतुर्गति भव-भ्रमणरूप ससारको नष्ट करके मोक्षपद पाता है। उसका चरित्र इच्छा रहित होता है। वह वर्तमानमे कर्मोंका सवर और पूर्वकृत्त कर्मोकी निर्जरा करता है। उस अनुभवीकी आत्माके राग, द्वेष, परिग्रहका भार और आगे होनेवाले जन्म किसी भी गिनतीमे नहीं हैं। अर्थात् वह स्वल्प कालमे ही सिद्ध पद पावेगा।

सम्यग्दर्शनकी महिमा

जिनके हृदयमें अनुभवका सत्य सूर्य प्रकाशित हुआ है, और सुवुद्धि रूप किरणोंके फैलनेसे मिथ्यात्वका अन्धकार नष्ट हो गया है, जिनके सच्चे श्रद्धानमे राग द्वेषसे कोई नाता रिश्ता नहीं है, समतासे जिनका प्रेम है, और ममतासे द्रोह है, जिनकी चिन्तवना मात्रसे मोक्ष-मार्ग सधता है, और जो कायक्लेश आदिके विना मन आदि योगोंका निग्रह करते हैं, उन सम्यग्ज्ञानी जीवोंके विषय-भोगकी अवस्थामे भी समाधि कहीं नहीं जाती, उनका चलना, फिरना आसन और योग हो जाता है, और वोलना चलना ही मौन व्रत है। अर्थात सम्यग्ज्ञान प्रगट होते ही गुणश्रेणी निर्जरा प्रगट होती है। ज्ञानी चरित्र मोहके प्रवल उदयमे यद्यपि सयम नहीं ले सकते—और अव्रतकी दशामे ही रहते हैं। तथापि कर्म-निर्जरा होती ही है, अर्थात विषयादि भोगते—चलते, फिरते और वोलते हुए भी उनके कर्म झड़ते रहते हैं। जो परिणाम, समाधि, योग, आसन, मौनका है वही परिणाम ज्ञानीके विपय, भोग, चलन, हलन

और बोल-चालका है, सम्यक्त्वकी ऐसी ही विलक्षण और पवित्र महिमा है।

परिग्रहके विशेष भेद

जिसका चित्त परिग्रहमे रमता है उसे स्वभाव और परस्वभावकी खबर ही नहीं रहती। सवप्रथम उसका त्याग करना आवश्यक है, और वह मात्र अपने आत्माको छोड़कर अन्य सब चेतन अचेतन परपदार्थ छोड़ने योग्य हैं, और यह एक सामान्य उपदेश है और उनका अनेक प्रकारसे त्याग कर देना यह परिग्रहका विशेष त्याग है। मिथ्यात्व राग-द्वेष आदि अन्तरंग और धन-धान्य आदि बाह्य परिग्रह त्याग सामान्य त्याग है। और मिथ्यात्वका त्याग, अव्रतका त्याग, कषायका त्याग, कुकथाका त्याग, प्रमादका त्याग, अभक्ष्यका त्याग, अन्यायका त्याग आदि विशेष त्याग हैं, मगर ज्ञानी जीव यद्यपि पूर्वके बाधे हुए कर्मके उदयसे सुख-दुःख दोनोंको भोगते हैं, पर वे उसमें ममता और राग-द्वेष नहीं करते हैं, और ज्ञान ही मे मस्त रहते है, इसमे उन्हे निष्परिग्रह ही कहा है।

इसका कारण

ससारकी मनोवाछित भोगविलासकी सामग्री अस्थिर है, वे अनेक चेष्टाएं करने पर भी स्थिर नहीं रहतीं। इसी प्रकार विषयकी अभिलाषाओंके भाव भी अनित्य है भोग और भोगकी इच्छायें इन दोनोंमे एकता नहीं है, और नाशवान हैं, इससे ज्ञानियोको भोगोकी अभिलाषा ही उत्पन्न नहीं होती, ऐसे भ्रम पूर्ण

कार्योंको तो मूर्ख ही करते हैं। ज्ञानी लोग तो सदा सावधान रह-कर विषयोंसे बचते रहते हैं। पर पदार्थोंसे कतई अनुराग ही नहीं करते। इसी कारण ज्ञानी पुरुषोंको वाञ्छासे रहित कहा है।

उदाहरण

जिस प्रकार फिटकरी-लोद और हरड़ेकी पुट दिये विना मजीठके रगमे सफेद कपड़ा डुवो देनेसे तथा वहुत समयतक डूवा रखनेसे भो उस पर रग नहीं चढ़ता, वह विल्कुल लाल नहीं होता अन्तरगमे सफेदी ही रहती है, उसी प्रकार राग, द्वेष, मोह रहित ज्ञानी मनुष्य परिग्रह समूहमें रात दिन रहता हुआ भी पूर्व सचित कर्मोंकी निर्जरा करता है, नवीन वध नहीं करता। और वह विषय सुखकी वाञ्छा भी नहीं करता और न शरीरसे मोह ही रखता है। अर्थात् राग-द्वेष मोह रहित होनेके कारण समदृष्टि जीव परिग्रह आदिका सग्रह रखते हुए भी निष्परिग्रह रहते हैं। जैसे कोई वलवान् पुरुष जगलमे जाकर मधुका छाता निकालता है, तव उसको वहुतसी मक्खिया लिपट जाती हैं, मगर मुह पर छलनी और शरीर पर कवल ओढ़े रहनेसे उसे उनके डक नहीं लगते। उसी प्रकार समदृष्टि जीव उदयकी उपाधि रहते हुए भी मोक्ष मार्गको साधते हैं, उन्हें ज्ञानका स्वाभाविक (सन्नाह) वक्तर प्राप्त है। इसीसे आनन्द मग्न रहते हैं, उपाधि जनित आकुलता न व्यापकर समाधिका काम देती है। क्योंकि उदयकी उपाधि सम्यग्ज्ञानी जीवोको निर्जरा हीके लिये है। अत उनकी उपाधि भी समाधिमें परिणत हो जाती है।

ज्ञानी जीव अबंध हैं

ज्ञानी मनुष्य राग-द्वेप मोह आदि दोपोंको हटाकर ज्ञानमे मस्त रहता है। और शुभाशुभ क्रियायें वैराग्य सहित करता है, जिससे उसे कर्म बन्ध नहीं होता। क्योंकि ज्ञान दीपकके समान है, मोहका अन्धकार मल नष्ट करके कर्मरूप पतगको तड़ातड जला देता है और सुबुद्धिका प्रकाश करता है, तथा मोक्ष मार्गको दर्शाता है। जिसमे अविचारका जरासा धुआँ भी नहीं है। जो दुष्ट निमित्तरूप हवाके झकोरोंसे बुझ नहीं सकता। जो एक क्षणमे कर्मरूप पतगोंको जला देता है। जिसमे नवीन सस्कारकी वत्तीका भोग नहीं है। और न जिसमे पर निमित्तरूप घृत तेलकी आवश्यकता ही है, जो मोहरूप अन्धेरेको मिटाता है, जिसमें कपायरूप आग जरा-सा भी नहीं है। और न रागकी लाली ही चमक सकती है। जिसमे समता-समाधि और योग प्रकाशित रहते हैं। वह ज्ञानकी अखड ज्योति स्वय सिद्ध आत्मामे स्फुरित हो रही है—शरीरमे नहीं।

ज्ञानकी निर्मलता किस प्रकार है।

यह एक मानी हुई वात है कि जो पदार्थ जैसा होता है, उसका स्वभाव भी वैसा ही होता है। कोई पदार्थ किसी अन्यके स्वभाव को ग्रहण नहीं कर सकता। जैसे कि—शखका रग सफेद है, और वह खाता मिट्टी है, परन्तु मिट्टीके समान नहीं हो जाता—सदैव उज्वल ही वना रहता है, इसी प्रकार ज्ञानी जन परिग्रहके संयोगसे अनेक भोग भोगते है, पर वे अज्ञानी नहीं हो जाते। इनके ज्ञानकी

किरण दिन दूनी रात चौगुनी वढ़ती है और भ्रामक दशा मिट जाती है। तथा भव स्थिति घट जाती है।

ज्ञान और वैराग्यकी एक समय उत्पत्ति

ज्ञान और वैराग्य दो वस्तु हैं, मगर एक साथ पैदा होते हैं, और उनके द्वारा सन्मग्दृष्टि जीव मोक्षके मार्गको साधते हैं, जैसे कि—नेत्र अलग अलग रहते हैं पर देखनेका काम एक साथ करते हैं। यानी जिस प्रकार आखें अलग अलग रहने पर भी देखने की क्रिया एक साथ करती हैं, उसी तरह ज्ञान-वैराग्य एक ही साथ कर्मोंकी निर्जरा करते हैं। मगर विना ज्ञानका वैराग्य और विना वैराग्यका ज्ञान मोक्षमार्ग साधने मे असमर्थ है।

ज्ञानीको अबंध और अज्ञानीको वंध

जिस प्रकार रेशमका कीडा अपने शरीर पर स्वय ही जाल पूरता है उसी प्रकार मिथ्यात्वी जीव स्वय कर्म वन्ध करता है, और जिस प्रकार गोरख धन्धा नामक कीडा जालसे निकलता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव कर्मवन्धनसे स्वयं मुक्त होते हैं जिससे अनन्त कर्मोंकी निर्जराका होना ही मुक्ति है। इस निर्जरा तत्वके १२ भेद हैं। जिनमे ६ प्रकार वाह्य तप हैं।

६ वाह्य तप हैं

१—अनशन—आहारका त्याग।

२—ऊनोदर—क्षुधासे कम भोजन करना।

३—वृत्तिसक्षेप—जीवनके निर्वाहकी वस्तुओका सक्षेप करना

४—रस परित्याग—दूध, दही, घी, गुड, तेल आदि पदार्थोंका न खाना।

५—कायक्लेश—अनेक आसनों द्वारा अच्छा अभ्यास करके शरीरको कसना,और प्राणको नियममे लाना और कुछ समय तक स्थिर करना या शरीरको अनेक प्रकारसे वशमे रखना और बालों-का लुचन करना आदि।

६—संलीनता—इन्द्रियोंको वशमे रखना, क्रोध, लोभ आदि न करना, मन, वाणी, कर्मसे किसी जीवको कष्ट न पहुचाना, अगोपांग सकोच कर सो रहना, स्त्री, पशु, नपुंसक आदिकी शून्यता युक्त स्थानमे निवास करना।

आभ्यन्तर तप

७–प्रायश्चित्त-मानलो कि मैंने किसी सज्जनके सबधमें झूठी बात फैला दी है, जिसके सुननेसे उसके विषयमे लोकोंके अनेक असत्य मत बन्ध गये हैं, उसके सम्बन्धमें ऐसी निन्दा कर डाली है कि उसका जीवन सकटोंसे भरपूर हो रहा है परन्तु यदि मैं अपनी भूलको देख सकूं तथा मैं यह भी समझ सकूं कि—मेरा यह कृत्य खूनी काण्डके समान तिरस्कार पात्र है, जिससे मुझे उसके लिये मन-ही-मन पश्चात्ताप होने लगा हो, और मेरा मानसिक सूक्ष्म-शरीर पश्चात्ताप की सूक्ष्म अग्निमे जलने लग कर शुद्ध होता है। इस शुद्धताका विश्वास उसी समय हो सकता है जब कि—मैं उस शुद्धिकरणकी क्रियाका सच्चे दिलसे मनन करता हुआ उस मनुष्यके विषयमे उसकी सच्ची बातको लोकोंके सामने प्रगट करने के लिये स्वय बाहर आ

जाऊं, और उसकी सच्चे दिलसे क्षमा चाहू, इतना ही नहीं वल्कि यथा समय प्रसग आनेपर उस मनुष्यकी सेवा वजाने के लिये यथानुकूलरीतिसे उसका यशोगान और कीर्ति करना न चूक जाऊं। इसीका नाम 'प्रायश्चित्त' तप है।

प्रायश्चित्त अमुक मन्त्र और अमुक दण्ड भर देनेसे यदि हो सकता है तो खूनी और व्यभिचारी पुरुषोको नरक जानेका डर न रहता ? अपनेसे वृद्ध ज्ञानी या गुणीके पास पापका स्वरूप प्रकाशित कर देनेसे वह मनुष्य हमे जो ज्ञान देता है, वह पापका निवारण कर सकने मे उपयोगी हो सकता है, अत गभीर, विद्वान, पवित्र और सच्चरित्री पुरुषके पास पापका प्रकाश करके प्रायश्चित्त लेनेकी आज्ञा धर्म-शास्त्रोंने दी है।

परन्तु यह भी ध्यान रहे कि—प्रायश्चित्त तप वाह्य तपका विभाग नहीं है,वल्कि वह तो अभ्यन्तर तपका है, और इसी लिये इसमे वाह्य क्रियाका समावेश न होकर अभ्यन्तर तप पश्चात्ताप रूप है, और वह अपनी भूल सुधारने के लिये यथासाध्य वनने वाला एक निश्चय है। इसमे ये दोनों तत्व अवश्य होने चाहिये, और वल पूर्वक यह भी कहा जा सकता है कि—जो मनुष्य अपने से होने वाले अपराधोंके लिये इस भाति हार्दिक खेद प्रकट करने के लिये तथा वन जाने वाले उस अपराधका असर यथाशक्य अच्छे प्रमाणमे निवारण करने के लिये उद्यमका अवलम्वी होकर तैयार न हो सकता हो तो वह मनुष्य ध्यान या कायोत्सर्ग जैसे उच्चकोटिके तपके लिये अभी योग्य नहीं हुआ है।

८-विनय—वहम और सकुचित बुद्धिको जड़मूलसे उखाड फेंकनेवाली शक्तिसे भरपूर सत्यधर्म है, और वह भी धर्मकी फिलॉसिफीसे खाली नहीं है। वह धर्मकी आज्ञानुसार बर्ताव करनेवाला, पवित्र हृदयवाला, धर्मगुरु है, वह धर्मका प्रचार करनेवाला महापुरुष है, उस धर्मके प्रचार और रक्षणके लिये स्थापित की हुई सस्था, इत्यादिकी ओर मानकी दृष्टि रखना, और सामान्यत गुणीजनोंके प्रति नम्रताका भाव प्रगट करना, वस यही 'विनय' तप है।

जहा गुण दोष समझनेकी शक्ति अर्थात् 'विवेक वुद्धि' 'Discrimination' न हो वहा 'विनय तप' के अस्तित्वका होना असम्भव है। जहा गुण दोषके पहचाननेकी जितनी शक्ति है, वहा अपने आप गुणीके प्रति नम्रता तथा विनय बतानेकी इच्छा उत्पन्न हो जाती है, और इस प्रकारके विनयसे वह मनुष्यके हृदयको अपनेमे अन्यके सद्गुणोंका आकर्पण करनेमे योग्य और चतुर वनता है।

९—वैयावृत्य—जिस धर्म, धर्म-गुरु धर्म-प्रचारक, धर्म-रक्षक, धार्मिक संस्थाओंका विनय रखना कहा गया है, उन सवका विनय वताकर ही नहीं रह जाना है वल्कि—अगाडी वढकर यथाशक्ति उनकी सेवा करना अर्थात् उन्हे उपयोगी वनाना 'वैयावृत्य' तप कहा जाता है।

१०-स्वाध्याय—पश्चात्ताप,विनय और वैयावृत्य सेवा तत्परता इन तीनों गुणोंको प्राप्त पुरुप अपने मस्तिष्क एव हृदयको इतना शुद्ध और निर्मल वना लेता है कि जिसमे उसे ज्ञान प्राप्त करनेमे कुछ भी कठिनाई नहीं पडती। अत' १० वें नम्बरमे 'स्वाध्यायतप' अथवा ज्ञानाभ्यासको

रक्खा गया है, ज्ञान प्राप्त करनेका अभ्यास भी आवश्यक तप है। जिसे कभी न भूलना चाहिये। जिसपर चढनेके लिये पाच ही पैडी वडी मार्केकी वताई गई है।

'वाचना' शिक्षक अथवा गुरुके पाससे अमुक पाठ लेना, धारण करना, अथवा गुरुका योग न हो तो अपनी मतिके अनुसार पुस्तकका अमुक भाग रोज पढ़ जाना।

'पृच्छना' उतने भागमे दीख पडनेवाली कठिनाई या संशय गुरुके पास या किसी अन्य अनुभवीसे पूछ लेना।

'परावर्तना' सीखा हुआ भाग फिरसे याद करना।

'अनुप्रेक्षा' अभ्यस्त विपयपर फिरसे मनन करना।

'धर्म-कथा' अपना प्राप्त ज्ञान औरोको कहकर सुनाना समझाना, व्याख्यान, वार्तालाप, ग्रन्थ-रचना, ग्रन्थ-प्रकाशन, शान्त-चर्चा इत्यादिसे औरोंको ज्ञान दिलानेका उद्यम करनेसे अपना ज्ञान वढता है, तथा औरोंमे ज्ञानका प्रचार होता है। जिससे अपने ज्ञानान्तराय सम्बन्धी कर्म कम रहकर विशेष प्रमाणमे ज्ञान पानेकी योग्यता आ जाती है।

ज्ञानके विपयमें पुन· पुन वलपूर्वक कहनेकी इसलिए आवश्यकता है कि—ज्ञान अमुक-अमुक पुस्तकोमेसे या अमुक पुरुपोंके पाससे मिले वही ग्रहण करना, इस ढगसे सीखनेवालोंकी सगति कभी न करना एवं अमुक लोकप्रिय हो रहनेवाले ग्रन्थ 'सिद्धान्त' से विरुद्ध विचार रख जानेवाले सिद्धान्तकी दलील सुननेमे कभी भी आनाकानी न करना, वुद्धिमानो। मनको वड़ा वनाओ। आखें

खुली रक्खो। अखिल विश्वमे तुम्हारे माने हुए कुएँके जलकी अपेक्षा अधिक उत्तम जलका संभव किसी स्थानपर नहीं है ऐसा मोहका भार और मादकताको छोड़कर एक वार वाहर घूम-फिरकर अलग-अलग फिलॉसफीके सहवासमे आओ या उनके सिद्धान्तोंको पढ जाओ। भापाका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करो। न्याय-शास्त्रका अध्ययन करो, और फिर उन दोनोकी मददसे विश्वका जितना प्राचीन और अर्वाचीन ज्ञान मिल सके उतना प्राप्त करो।

११–ध्यान–उपरोक्त सव तपोंकी अपेक्षा 'ध्यान तप' अधिक समर्थ है। सासारिक विजयके लिये एव आत्मिक मुक्तिके अर्थ दोनों कार्योंमे यह एक तीक्ष्ण शस्त्र है। चित्तकी एकाग्रता अथवा ध्यान द्वारा सव शक्तिएं एक विपयपर एक ही साथ उपयोगमे आती हैं, और इससे ईप्सित-अर्थ प्राप्त करनेमे अत्यधिक सरलता हो जाना स्वाभाविक है। असाधारण विजयको वरनेवाला नेपोलियन लश्करकी तोपों-की मार-मारके वीचमे राज्यकी कन्याशालाओंके लिये नियम घड़ लिया करता था, इतनेपर भी हद दर्जेकी एकाग्रता रख सकता था, और लगातार कितने ही दिन राततक अधिक काम होनेपर सो रहनेका समय लड़ाई-तूफानमेंसे १०-१५ या २० मिनिट तक इच्छा-नुसार नींद ले सकता था। ऐसा मनुष्य विजयको मुट्ठीमे वांधे रहे तो क्या आश्चर्य है?

खोई हुई चित्त शान्तिको फिरसे पानेके लिये व्यापार या पर-मार्थके काममे आनेवाली उलझनके व्यवहारका निराकरण या तोड़के लिये, वस्तुके स्वरूपकी पहचानके लिये, और मोक्ष मार्गकी प्राप्तिके

लिये भी 'ध्यान' की उपयोगिता अनिवार्य है।* शास्त्रकार भी ठीक ही कहते हैं कि—

निर्जराकरणे बाह्याच्छ्रेष्ठमाभ्यन्तरं तप ।
तत्राप्येकातपत्रत्व, ध्यानस्य मुनयो जगु ॥१॥

---

* ध्यानके लिये किसी भी पदार्थ या पुद्गलकी खास आवश्यकता है, इस प्रकार कई महानुभावोंकी ओरसे यह भी प्रतिपादन किया जाता है। वास्तवमे प्रत्येक मनुष्यको अपनी-अपनी मान्यताओंपर प्रकाश डालनेका अधिकार है, अत इन विचारोको प्रकाशित करनेमें कोई हानि नहीं है। परन्तु इसी ही तरह एक फिलॉसफर विद्वान् "जहान एवरकोम्बी M D —oxon भी कहता है कि—एक मनुष्य होकर उसे भी पुन. पद्धतिसे—न्यायपुरस्सर सायन्टीफिक दृष्टिसे दलील करनेवाला मनुष्य होकर अपने किसी भावके विपयमे विचार प्रगट करनेका (अधिक न सही) समान हक तो अवश्य है। वह अपनी Science of mind नामक प्रसिद्ध पुस्तकमे लिखता है कि—आत्माके मुख्य लक्षण और Phenamena इन्द्रिय कृत कृति ये दोनों मुकावला करनेके योग्य नहीं है, इन्हे अपनी इन्द्रियोंमेंसे सबसे अधिक प्रवल इन्द्रियको भी अपना काम करनेके लिये 'बाह्य' पदार्थकी सहायता लेना आवश्यक है, देखनेके लिये प्रकाश और प्रकाशका प्रतिविम्ब जिस वस्तुपर पडता है, वह वस्तु इन दोनोंकी मददके विना हम देख नहीं सकते, और यदि हम यह धारणा रख सकें कि—प्रकाशका नाश होता है तब आखकी पूर्ण स्थिति कायम

रहनेपर भी दृष्टिका नाश हो जायगा, परन्तु "**आत्माको बाह्य वस्तुओंके ऊपर किसी प्रकारका आधार नहीं रखना पड़ता**" आत्मा विविध क्रियाएँ दृश्यमान जगत्‌के जरासे आधार विना भी कार्य करता है। जिस पदार्थकी उपस्थिति बहुत समयसे बंद हो गई हो ऐसे पदार्थ भी आत्माके समक्ष खड़े हो जाते हैं, एक वार पदार्थको भूलकर भी पहलेकी अपेक्षा उसे पुनः अधिक स्पष्ट रीतिसे याद कर सकता है, और देखे, किए, और प्राणियोंके जो कि—पहले कभी भी अपने जीवनमे न आये हों उन्हे भी वह अपने समक्ष खड़ा कर सकता है। सच्ची दर्शनीय घटनाएँ और किये गये कृत्य तथा प्राणियोंकी अनुपस्थितिमे भी वे दृश्य और कृत्य प्राणियोंको वे वाहरके किसी भी प्रकारका कारण न मिलनेपर भी नजर आ सकते है।

आत्मा सदैव स्मरण करनेका, जोड़नेका तथा सत्, असत्‌के निर्णय करनेका कार्य करता रहता है और उसको इनके स्पष्ट करनेकी इच्छा भी होती है, **और वह कदाचित् सारे दृश्यमान पदार्थोंका नाश भी कर दिया जाय तब भी आत्मा वर्तमानकी भांति ही ये सब क्रियायें करता रहेगा।**

आत्मा सम्बन्धी विचार करनेवाला पुरुष उलझनमे पड़कर

बाह्य पदार्थोंमें पड़कर उसकी क्षमताकी शोधमें ललचा जाता है। परन्तु आत्मा सम्बन्धी तत्वज्ञान औरोंकी अपेक्षा अलग तरहका है। कारण जिस सत्यपर वह शास्त्रज्ञान खडा है, वह सत्य चैतन्य Conciousness मात्र है। जिस शक्तिके द्वारा वह भूतकालका स्मरण कर सकता है, और भविष्यके लिये अनेकानेक साधन सजाता है। जिस शक्तिके द्वारा वह एक दुनियासे दूसरी दुनियामे और एक पद्धतिसे दूसरी पद्धतिमे आनेके बाद (निष्कंटक) घूमता है, और शाश्वत कारण Eternal cause का मनन करता है, तब वह शक्ति उस आत्मिक शक्तिको क्या वह जड़ पदार्थके साथ बराबरी कर सकता था? वह तत्व कि जो प्रेम करता है और डरता है, आनन्दमय बनता है और खेदित होता है, आशामय और निराश बनता है, उस तत्वको जड-दृश्यमान पदार्थके साथ किस प्रकार समतोल किया जाय? इन स्थितियों (प्रेम आशा आदि) का बाहरके असरके साथ या शरीरके स्थितिके साथ भी कुछ सम्बन्ध नहीं है। शरीरकी स्थिति शान्त होनेपर भी विचार, खेद या चिन्ता अन्दर घूमते रहते हैं, और अत्यन्त ही भयकर कष्टमे क्लेशित शरीरका आत्मा शान्ति और आशामे लीन भी होत है। "प्राणीगुणशास्त्र" Physiology से वह जानता है कि—उसके शरीरके प्रत्येक भागका प्रतिक्षण रूपान्तर होता रहता है, और अमुक समयके अन्दर उस शरीरका प्रत्येक प्रमाणु बदल कर नया होनेवाला है, परन्तु इतना परिवर्तन होनेपर भी वह जानता है कि—

"निर्जरा करनेमे (कर्मको झाड़नेके कार्यके अन्तर्गत) बाह्य तपकी अपेक्षा अभ्यन्तर तप अच्छा है, जिसमे भी 'ध्यान तप' का तो आत्मामें एक छत्र राज्य है, यह तप चक्रवर्ती है, ऐसा मुनियोंने कहा है। क्योंकि—

अन्तर्मुहूर्तमात्रं, यदेकाग्रचित्ततान्वितम्।
तद्ध्यानं चिरकालीना कर्मणा क्षयकारणम्॥

अन्तर्मुहूर्त मात्रके लिये भी चित्त एकाग्र हो जाता है तब वह भी ध्यान कहलाता है। अधिक कालके बाधे हुए कर्मोको क्षय करनेमे कारण भूत है, यथा –

जह चिअसिंचिअमिंधणमणलो य पवण सहिओ दुअ डहइ।
तह कम्मिधणममिअ खणेण झाणाणलो डहई॥

जैसे चिरकालके एकत्रित किये गये काष्ठोंको पवनके साथ रहने वाला अग्नि तत्काल ही जलाकर भस्मका ढेर कर डालता है।

इस आत्माको जिसे वह 'मे' कहता है वह तो ज्योंका त्यो ही रहने-वाला है, इस तरह वह सत्व जिसे कि हम आत्मा कहते हैं, जब वह इन्द्रियोंके परिणामोंसे इतना सारा अलग है तब जड़की किसी रचनासे वह आत्मापर कुछ भी असर डाल सकेगा ? ऐसा माननेके लिये आपके पास क्या प्रमाण और कारण है ? (यह विद्वान 'आत्मा' शब्दका 'मनस' Mind अर्थमे प्रयोग करता है। मनको उस भावनामे जोडनेके लिये दृश्य या बाह्य अथवा जड पदार्थकी मुख्यतासे कोई आवश्यकता नहीं है। मानस शास्त्रियोने यह सिद्ध किया है)

इसी रीतिसे अनन्तकर्म रूपी ईंधनको भी एक ही क्षणमे ध्यान रूपी अग्नि जला देता है।

सिद्धा. सिद्धन्ति सेत्स्यन्ति, यावन्तः केपि मानवाः।

ध्यानतपोवलेनैव, ते सर्वेऽपि शुभाशया. ॥१॥

'जितने भी मनुष्य सिद्ध हुए हैं, होते हैं, और अगाड़ी होंगे, वे सव शुभ आशय वाले ध्यान तपके द्वारा ही सिद्धत्वको पाते हैं।

ध्यानके भेद—मार्ग आदिके सम्वन्धमे अधिकसे अधिक जानना और सीखना चाहिये। परन्तु उन सवका इस लेखमे समावेश नहीं हो सकता। ध्यानके सिद्धान्त पर पाश्चिमात्योंने रोग मिटानेके लिये, कुटेवोंसे सुधारनेके लिये, एक स्थल पर वैठ कर दूरके सन्देशोको समझाने इत्यादि के अद्‍भुत और उपयोगी कार्य सिद्ध कर दिखाये हैं, तथा आर्य विचारकोंने इसी ध्यानके वलसे मोक्षका मार्ग हस्त सिद्ध किया है, और यह अद्‍भुत शास्त्र वुद्धिशाली पुरुपोको विशेपतया धर्मगुरुओंको लक्ष्य पूर्वक क्रमवार अवश्य सीखना चाहिये।

१२—कायोत्सर्ग—ध्यानसे अगाड़ी वढने वाली एक स्थिति 'कायोत्सर्ग' की है, इसमें काय अर्थात् स्थूल शरीरको एक दम मृतकसा वनाकर (कुछ समयके लिये निर्ममत्त्व दृष्टि रखकर) सूक्ष्म देहके साथ आत्माको उच्च प्रदेशोंमे ले जाया जाता है। इस समय चाहे शरीर जल जाय, कट जाय, तव भी उसका भान नहीं रहता। कारण जिस मनको भान होता है, वह मन अथवा मानसिक शरीर आत्माके साथ उच्च प्रदेशोंमे चला गया है। जिसे 'समाधि' भी

कहते हैं। मगर यह विषय इतना गंभीर है कि—इसमे मात्र वचन और तर्क काम नहीं कर सकते। यह अनुभवका विषय है। अतः इतनी योग्यताके विना चुप रहना ही अच्छा है।

इसके विशेष भेद

अनशन तपके २ भेद—१—इत्तरिये, २—आवकहिए।

इत्तरिये तपके ६ प्रकार—१—श्रेणितप, २—प्रतर तप, ३—घन तप, ४—वर्ग तप, ५—वर्गावर्ग तप, ६—आकीर्ण तप।

श्रेणितपके १४ भेद—१—चउत्थभत्ते १ उपवास, २—छठ्ठभत्ते २ उपवास, ३—अठ्ठमभत्ते ३ उपवास, ४—दसमभत्ते ४ उपवास, ५—बारसभत्ते ५ उपवास, ६—चउद्दसभत्ते ६ उपवास, ७—सोलसभत्ते ७ उपवास, ८—अद्धमासिए ८ उपवास, ९—मासिए ९ उपवास, १०—दोमासिए १० उपवास, ११—तिमासिए ११ उपवास, १२—चोमासिए १२ उपवास, १३—पचमासिए १३ उपवास, १४—छमासिए १४ उपवास।

दो घडी दिन चढ़े तक निराहार रहना नौकारसी तप कहलाता है इससे लगाकर १ वर्ष पर्यन्त तप करना 'श्रेणितप' है।

प्रतर तप—इसके १६ कोठे भरे जाते हैं।

घनतप—इसके ६४ कोठेका यन्त्र बनता है।

वर्गतप—इसके ४०९६ कोठे भरे जाते हैं।

वर्गावर्गतप—१६७७७२१६ कोठे भरे जाते है।

अकीर्णतपके १० भेद—१—नवकारसी, २—पहरसी, ३—पुरि-

मड्ढ, ४—एकासन, ५—आंबिल, ६—निव्विगइ, ७—एकलठाण, ८—उपवास ९—अभिग्गहे, १०—चरमे इसे इत्तरिएतप कहते हैं।

आवकहियातपके ३ भेद—१—पाओवगमणेअ, २—भत्तपच्चक्खाणेअ, ३—इंगियमरणेअ।

पाओवगमणके ५ भेद—१—गाममे करे, २—गामसे बाहर करे, ३—कारण पडनेपर करे, ४—विना कारण करे, ५—नियम—पराक्रमरहित करे।

इतने ही भत्तपच्चखाणके भेद हैं

इंगिअमरणके ७ भेद—१—नगरमे करे, २—नगरसे बाहर करे, ३—कारणपर करे, ४—विना कारण करे, ५—नियम-पराक्रम रहित करे, ६—नियमके-पराक्रमसे सहित करे, ७—भूमिकी मर्यादा करे। ये अनशन-तपके भेद हुए।

ऊनोदरतपके २ भेद—१—द्रव्य ऊनोदर, २—भाव ऊनोदर।

द्रव्य ऊनोदरतपके २ भेद—१—उपकरण ऊनोदर, २—भात-पानी ऊनोदर।

उपकरण ऊनोदरके ३ भेद—१—एक वस्त्र रक्खे, २—एक पात्र रक्खे, ३—पुराना उपकरण रक्खे-या उसे छोड़नेकी भावना करे।

भक्त-पान द्रव्य ऊनोदरके अनेक भेद हैं। (८) ग्रास जितना आहार ले, (१२) ग्रास जितना आहार ले, (१६) ग्रास जितना आहार ले, (२०) ग्रास जितना आहार ले, (२४) ग्रास जितना आहार ले, (२८) ग्रास प्रमाण आहार ले, (३२) ग्रास प्रमाण आहार ग्रहण

करे। ३२ मे से १ भी ग्रास लेनेपर 'ऊनोदरतप' हो जाता है तथा श्रमण-निग्रन्थ इच्छानुसार रस और भोजन नहीं लेते।

भाव ऊनोदरतपके ८ भेद— १—क्रोध न करे, २—मान नहीं करता है, ३—माया नहीं करता है, ४—लोभ नहीं करता है, ५—कलह नहीं करता, ६—थोडा बोलता है, ७—उपाधि घटाता है, ८—हलके और तुच्छ शब्द नहीं कहता हो।

इति ऊनोदरतप

भिक्षाचरीके ४ भेद—१—द्रव्य भिक्षाचरी, २—क्षेत्र भिक्षाचरी, ३—काल-भिक्षाचरी, ४—भाव भिक्षाचरी।

द्रव्यभिक्षाचरीके २० भेद

१—दव्वाभिग्गहचरए (द्रव्यसे)

२—खेत्ताभिग्गहचरए (क्षेत्रसे)

३—कालाभिग्गहचरए (कालसे)

४—भावाभिग्गहचरए (भावसे)

५—उक्खित्तचरए (वर्तनसे निकाल कर दे तब ले)

६—निक्खित्तचरए (डालते समय दे)

७—णिक्खित्तउक्खित्तचरए (दोनो तरहसे दे)

८—उक्खितणिक्खितचरिए (वर्तनमे डालकर फिर देना)

९—वट्टिज्जमाणचरए (अन्यको देते समय वीचमें दे)

१०—साहरिज्जमाणचरए (अन्यसे लेते समय दे)

११—उवणीअचरए (अन्यको देने जाता हुआ दे)

१२—अवणीअचरए (अन्यको देनेके लिये लाता हो तब दे)

१३—उवणीअ अवणीअचरए (दोनों तरहसे दे)

१४—अवणीअ उवणीअचरए (अन्यका लेकर पीछा देता हो)

१५—संसठ्ठचरए (भरे हाथसे दे तब लेना)

१६—असंसठ्ठचरए (स्वच्छ हाथसे देता हो तो ले)

१७—तज्जातससठ्ठचरए (जिससे हाथ भरे हो वही लेना)

१८—अण्णायचरए (अज्ञात कुलसे लेना)

१९—मोणचरए (चुपचाप लेना)

२०—दिठ्ठलाभिए (देखी वस्तु लेना)

२१—अदिठ्ठलाभिए (विना देखी वस्तु लेना)

२२—पुठ्ठलाभिए (पूछ कर दे तब लेना)

२३—अपुठ्ठलाभिए (विना पूछे देनेपर लेना)

२४—भिक्खलाभिए (निन्दकसे लेना)

२५—अभिक्खलाभिए (स्तावकसे लेना)

२६—अण्णगिलायए (कष्टप्रद आहार लेना)

२७—ओवणिहिए (खातेके पाससे लेना)

२८—परिमितपिण्डवाइए (सरस आहार लेना)

२९—सुद्धेसणिए (एपणिय शुद्ध आहार लेना)

३०—संखायत्तिए (वस्तुकी गणना सोच कर लेना)

क्षेत्रभिक्षाचरीके ६ भेद

पेढाअ-अद्धपेढाअ गोमुत्ति पयंगवीहिआ चेव।
सम्बुक्काय वट्टाय गंतु पच्चागमा छट्ठा ॥१॥

१—चारों कोनोंके चार घरोंसे लेना, २—दो कोनेके दो घरोंसे लेना, ३—गोमूत्रके आकारसे वाके टेढे घरोंकी लाइनसे लेना, ४—पतगकी उड़ती चालके समान लेना, ५—पहले नीचे घरोंसे लेकर फिर ऊपरके घरोंसे लेना या पहले ऊपरके घरोंसे लेकर फिर नीचेके घरोंसे लेना, ६—जाते हुए ले और आते समय न ले तथा जाकर पीछे आते समय ले।

कालभिक्षाचरीके ४ भेद

१—पहले पहरकी गोचरी ३ पहरका त्याग।

२—दूसरे पहरमें लाकर उसी पहरमे खाए पिये।

३—तीसरे पहरमे लाए, उसीमे खाये।

४—चौथे पहरमे लाए, उसीमें खाये।

भावभिक्षाचरीके १५ भेद

(१) तीनवयकी स्त्री यथा—बालक स्त्री, (२) युवती स्त्री, (३) वृद्धा स्त्री, (४) बालक पुरुप, (५) युवक पुरुप, (६) वृद्ध पुरुप, (७) अमुक वर्ण, (८) अमुक संस्थान, (९) अमुक वस्त्र, (१०) बैठा हो, (११) खड़ा हो, (१२) मस्तक खुला हो, (१३) मस्तक ढँका हो, (१४) आभूपण युक्त हो, (१५) आभूपण रहित हो।

॥ इति भिक्षाचरी तप ॥

(४) रस परित्याग तपके १२ भेद

१—णिव्विति्तए (विकृति-घी आदिका त्याग)

२—पणीअरसपरिच्चाए (धारविगय त्याग)

३—आयंविलए (आचाम्लादि तप)

४—आयाम सित्थ भोई (ओसामनके दाने खावे)

५—अरस आहारे (मसालेदार आहार न ले)

६—विरस आहारे (निस्स्वादु आहार)

७—अंताहारे (उबली हुई वस्तु)

८—पताहारे (ठंडा या बासी आहार)

९—लुहाहारे (जो चिकना न हो)

१०—तुच्छाहारे (खुरचन आदि जली वस्तु)

११—अतजीवी (फेंकने योग्य वस्तुसे जीना)

१२—पतजीवी (लुह-तुच्छ जीवी)

॥ इति रस परित्याग ॥

(५) कायक्लेश तपके १६ भेद

१—ठाणाट्ठित्तिए (कायोत्सर्ग पूर्वक खड़े रहना)

२—ठाणाए (विना मर्यादा योही खड़े रहना)

३—उक्कुडु आसणे (उत्कट आसन)

४—पडिमट्ठाई (प्रतिज्ञा धारण करना)

५—नेसज्जिए (कायोत्सर्गमे बैठे रहना)

६—दंडायए (दंडकी तरह आसन लगाना)

७—लउडमाई (लकड़की तरह स्थिर आसन)

८—आयावए (धूपमे आतापना लेना)

९—अवाउए (सर्दीमे वस्त्र न पहनना)

१०—अकुडिअए (कुठित न होना)

११—अणिठ्ठूए (अनिष्टकी तर्कना न करना)

१२—सव्वगायेपरिकम्म विभूस विप्पमुक्के (शरीर विभूषा मुक्त)

१३—सीयवेदणा (सर्दी सहना)

१४—उसिणवेयणा (गर्मी सहना)

१५—गोदुह आसणे (गौदुह आसन लगाना)

१६—लोयाइपरिसहे (लुचनादि कष्ट सहना)

॥ इति कायाक्लेश तप ॥

(६) प्रतिसंलीनता तपके ४ भेद

१—इ दियपडिसलीणया (इन्द्रिय निग्रह)

२—कषाय पडिसलीणया (कषाय निग्रह)

३—जोगपडिसलीणया (योग निग्रह)

४—विवित्तसयणासणपडिसेवणया (एकान्त स्थान सेवन)

इन्द्रियप्रतिसंलीनता तपके ५ भेद

(१) श्रुतेन्द्रिय, (२) चक्षुरिन्द्रिय, (३) घ्राणेन्द्रिय, (४) रसेन्द्रिय, (५) स्पर्शेन्द्रिय।

इन पाच इन्द्रियके २३ विपयोकी उदीरणा न करे। उदयमे आनेपर सम भावसे सहकर इन्हे वशमे करे।

'कषायपडिसंलीणयाए' के ४ भेद

(१) क्रोध न करे, (२) मान न करे, (३) माया न करे, (४) लोभ न करे।

इन चारों कषायोंकी उदीरणा न करे, उदय होनेपर कषायोंको निष्फल करे। इसीका नाम 'कषायप्रतिसर्लीनता' है।

'जोग पडिसंलीणया' के ३ भेद

(१) मन, (२) वचन, (३) काय।

इन तीनों अकुशल योगोंको रोके, कुशलोंकी उदीरणा करे, अर्थात् अशुभ योगोंको रोके। शुभ योगोका प्रवर्तन करे। इसे 'जोगपडिसंलीणयाए' कहते है।

विवित्तसयणासणपडिसेवणा

उद्यान, बाग, जगल, उपाश्रय, शून्य घर आदिमे स्त्री १ पशु २ नपुसक ३ न हों वहा निवास करे।

॥ इति बाह्य तप विवरण ॥

६ अभ्यन्तर तप

प्रायश्चित्तके ५० भेद

१० प्रकारसे दोष लगता है—(१) कामवासनासे, (२) प्रमाद सेवनसे, (३) उपयोगकी शून्यतासे, (४) अकस्मात् प्रसगसे, (५) आपत्ति कालसे, (६) आतुरतासे, (७) रागद्वेषसे, (८) भयसे, (९) शकासे, (१०) शिष्योंकी परीक्षा करनेसे।

आलोचना करते समय १० प्रकारसे दोष लगता है

१—कम्पित होकर आलोचना करे तो।

२—प्रमाण बाधकर आलोचना करे तो।

३—देखे हुएकी आलोचना करे तो।

४—सूक्ष्मकी आलोचना करे तो।

५—बादरकी आलोचना करे तो।

६—गुनगुनाहटसे आलोचना करे तो।

७—ऊंचे स्वरसे सुना कर करे तो।

८—एक दोषकी बहुतोंपर आलोचना करे तो।

९—प्रायश्चित्तके न जाननेवालेके पास आलोचना करे तो।

१०—प्रायश्चित्वान्के पास आलोचना करे तो।

आलोचकके १० गुण

(१) जातिमान, (२) कुलवान, (३) विनयवान, (४) ज्ञानवान, (५) चरित्रवान्, (६) क्षमावान्, (७) दमित-इन्द्रिय, (८) माया रहित (९) दर्शनवान, (१०) आलोचना लेकर न पछतानेवाला।

आलोचना करानेवालेके १० गुण

१—आचारवान्।

२—आधार देनेवाला।

३—पाचों व्यवहारोंका ज्ञाता।

४—प्रायश्चितकी विधिका ज्ञाता।

५—लज्जा हटानेमे सामर्थ्यशील।

६—शुद्धकरनेमे सामर्थ्यशील।

७—आलोचनाके विषयका दोष किसीके सामने प्रगट न करता हो।

८—खड खड करके प्रायश्चित दे।

९—ससार दुःखका चित्र बतानेवाला।

१०—प्रिय धर्मी।

१० प्रकारका प्रायश्चित्त

१—आलोयणारिहे [आलोचना करना]

२—पडिकमणारिहे [प्रतिक्रमण करना]

३—तदुभयारिहे [दोनों करना]

४—विवेगारिहे [विवेक]

५—विउसग्गारिहे [व्युत्सर्ग]

६—तवारिहे [तप]

७—छेदारिहे [संयमको कम कर देना]

८—मूलारिहे [पुर्नदीक्षा]

९—अणवठप्पारिहे [कठोर तप कराकर दीक्षा देना]

१०—पारचिआरिहे [गुप्त पापका कठोर प्रायश्चित्त]

विनयतपके ७ भेद

(१) ज्ञान विनय, (२) दर्शन विनय, (३) चरित्र-विनय, (४) मन विनय, (५) वचन विनय, (६) काया विनय, (७) लोकोपचार विनय।

ज्ञानविनयके पांच भेद

(१) मतिज्ञानवालेका विनय, (२) श्रुतिज्ञानवालेका विनय, (३) अवधिज्ञानवालेका विनय, (४) मनपर्यायज्ञानवालेका विनय, (५) केवलज्ञानवालेका विनय।

दर्शनविनयके २ भेद

(१) सुश्रुषणविनय, (२) अनासातनाविनय ।

सुश्रूषणविनयके १० भेद

(१) गुरुजनके आनेपर खड़ा होना, (२) आसनके लिये पूछना, (३) आसन प्रदान करना (४ सत्कार देना, (५) सन्मान देना, (६) (६) उचित कृतिकर्म करना, (७) हाथ जोड़ कर मानका त्याग करना, (८) जाते समय पीछे चलना, (९) बैठने पर इनकी उपासना करना, (१०) कुछ दूर पहुंचा कर आना ।

अनासातना विनयके ४५ भेद

(१) अर्हन् प्रभुका विनय, (२) अर्हन् कथित धर्मका विनय, (३) आचार्यका विनय, (४) उपाध्यायका विनय, (५) स्थविरका विनय, (६) कुलका विनय, (७) गणका विनय, (८) संघका विनय (९) चरित्रशीलका विनय, (१०) सांभोगिकका विनय, (११) मतिज्ञानीका विनय (१२) श्रुत्तज्ञानीका विनय, (१३) अवधिज्ञानीका विनय, (१४) मन पर्याय ज्ञानीका विनय, (१५) केवल ज्ञानीका विनय ।

(१५) का विनय करे, (१५) की भक्ति करे, (१५) असातना न करे।

चरित्र विनयके ५ भेद

(१) सामायिक चरित्रवालेका विनय करे ।

(२) छेदोस्थापनीय चरित्रवालेका विनय करे ।

(३) परिहार विशुद्धि चरित्रवालेका विनय करे।

(४) सूक्ष्म सम्पराय चरित्रवालेका विनय करे।

(५) यथाख्यात चरित्रवालेका विनय करे।

मन विनयके २ भेद

(१) प्रशस्तमन विनय, (२) अप्रशास्तमन विनय।

अप्रशास्तमन विनयके १२ भेद

(१) पाप मन, (२) सक्रिय मन, (३) सकर्कश मन, (४) कटुक मन, निष्ठुर मन, (६) परुशमन, (७) अनहत मन, (८) छेद मन, (९) भेद मन, (१०) परितापन मन, (११) उद्द्रवण मन, (१२) भूतोपघात मन।

प्रशस्तमनके १२ भेद

(१) निष्पाप मन, (२) अक्रियमन, (३) अकर्कशमन, (४) मिष्ट मन, (५) अनिष्ठुर मन, (६) अपरुशमन, (७) अहतमन, (८) अछेद मन, (९) अभेद मन, (१०) अपरिताप मन, (११) अनुद्द्रवण मन, (१२) अभूतोपघात मन।

वचन विनयके २ भेद

(१) प्रशस्त वचन विनय, (२) अप्रशस्त वचन विनय।

अप्रशस्त वचन विनयके १२ भेद

(१) पाप वचन, (२) सक्रिय वचन, (३) सकर्कश वचन, (४) कटुक वचन, (५) निष्ठुर वचन, (६) परुश वचन, (७) अनहत वचन

(८) छेदक वचन, (९) भेदक वचन, (१०) परितापन वचन, (११) उद्द्रवण वचन, (१२) भूतोपघात वचन

प्रशस्त वचन विनयके १२ भेद

(१) निष्पाप वचन, (२) अक्रिय वचन, (३) अकर्कश वचन, (४) मिष्ट वचन, (५) अनिष्ठुर वचन, (६) अपरुश वचन, (७) अहत वचन, (८) अछेद वचन, (९) अभेद वचन, (१०) अपरिताप वचन, (११) अनुद्द्रवण वचन, (१२) अभूतोपघात वचन।

काय विनयके २ भेद

(१) प्रशस्त काय विनय, (२) अप्रशस्तकाय विनय।

अप्रशास्तकाय विनयके ७ भेद

(१) अयत्नसे विचार कर चलना, (२) अयत्नसे खड़े रहना, (३) अयत्नसे बैठना, (४) अयत्नसे शयन करना, (५) अयत्न पूर्वक उल्लंघन करना, (६) अयत्न पूर्वक अधिक लाघना, (७) अयत्नसे सब इन्द्रियोंका उपयोग करना।

प्रशस्त कायाके ७ भेद

(१) यत्नसे चलना, (२) यत्नसे खड़े रहना, (३) यत्नसे बैठना, (४) यत्नसे शयन करना, (५) यत्नसे लाघना, (६) यत्नसे अधिक लाघना, (७) यत्नसे इन्द्रियोंके योगोका प्रयोग करना।

लोकोपचार विनयके ७ भेद

(१) आचार्यके समीप बैठकर विनयाभ्यास करना।

(२) अन्यके कथनानुसार चलना ।

(३) कार्यके अर्थ विनय करना ।

(४) उपकारका बदला प्रत्युपकार देना ।

(५) दुःखी जीवोपर उपकार करना ।

(६) देशकालज्ञ होना ।

(७) सब प्राणियोंके अनुकूल वर्ताव करना ।

वैयावृत्त्य तपके १० भेद

(१) आचार्य सेवा, (२) उपाध्याय सेवा, (३) शिष्यकी सेवा, (४) रोगी सेवा, (५) तपस्वी सेवा, (६) सहधर्मी सेवा, (७) कुल सेवा, (८) गण सेवा, (९) संघ सेवा, (१०) स्थविर सेवा ।

स्वाध्यायके पांच भेद

(१) वायणा, (२) पुच्छणा, (३) परियट्टणा, (४) अणुप्पेहा, (५) धम्म कथा ।

ध्यान तपके ४ भेद

(१) आर्तध्यान, (२) रौद्रध्यान, (३) धर्म्मध्यान, (४) शुक्लध्यान।

आर्तध्यानके चार भेद

१—माता, पिता, भ्राता, मित्र, स्वजन, पुत्र, धन, राज्य प्रमुख इष्ट वस्तुओंका वियोग होनेसे विलाप, चिन्ता, शोकका करना 'इष्ट-वियोग' नाम आर्तध्यान है ।

२—दुःखके जो अनिष्ट कारण हैं, जैसे शत्रु-दरिद्रत्व-कुपुत्रादिका

मिलना, स्त्रीका कुल्टापन इत्यादिकके मिलनेपर मनमे चिन्ता या दुःख उत्पन्न करना, 'अनिष्ट सयोग' नामक आर्तध्यान है।

३—शरीरमे रोग उत्पन्न होनेपर दुःखित होना, नाना प्रकारकी चिन्ता करना, 'चिन्ता' नामक आर्तध्यान है।

४—मन ही मन भविष्यकी चिन्ता करना, जैसेकी इस आनेवाले वर्षमें यह करूंगा वह करूंगा, तव हजारोंका लाभ होगा, तथा दानशील तपका फल शीघ्र पानेकी इच्छा करना, जैसे इस भवका तप संबंधी फल इन्द्र-चक्रवर्ती पदका परिणाम चाहना, इसका जो अग्रशोचना नामक परिणामका उत्पन्न करना है अथवा निदान करना है यह 'निदान' नामा आर्तध्यान कहलाता है। इस धर्म क्रियाका फलरूप निदान समदृष्टि नहीं करता।

आर्तध्यानके चार लक्षण

१—आक्रन्दन, २—शोक, ३—पीटना, ४—विलाप।

रौद्रध्यानके ४ भेद

१—हिंसानुबन्धी—जीव हिंसा करके खुश होना, तथा किसी अन्य को हिंसा करते देखकर प्रसन्न होना, युद्धकी अनुमोदना करना इत्यादि।

२—मृपानुबन्धी—असत्य बोलकर मनमें आनन्द मनाना, अपने कपटकी सराहना करना, अपने सत्यकी तथा माया जालकी प्रशंसा करना।

३—स्तेनानुबन्धी—चोरी करना, ठगना, जूआ खेलना, अपने

अनीति वलकी प्रशसा करना। खुश होकर यह कहना कि मेरा काम पराया माल उड़ाना है।

४—परिग्रहरक्षणानुवन्धी—परिग्रह, धन अथवा कुटुम्बके लिये चाहे जैसे पाप करना, और परिग्रह बढ़ाना, अधिक धन पाकर अहंकार करना, यह ध्यान नरक गतिका कारण भूत है। महा-अशुभ कर्म वंधका बाधने वाला है। यह पांचवें गुण स्थान तक रह सकता है। किसी जीवके हिंसानुवन्धी रौद्रध्यानके परिणाम छठवें गुणस्थानमें भी हो सकते हैं।

रौद्रध्यानके चार लक्षण

१—उसन्नदोष (हिंसादि कुकृत्त)।

२—वहुलदोप (पुन. पुनः धृष्टता)।

३—अज्ञानदोष (अज्ञानतासे हिंसाधर्मी)

४—आमरणान्तदोष—मरनेतक पापका पछतावा करे।

"जो व्यवहार क्रियारूप हो वही कारणरूप है"। धर्म तथा श्रुतज्ञान और चरित्र ये उपादान रूपसे साधन धर्म हैं, तथा रत्नत्रय भेदसे वह उपादान है, शुद्ध व्यवहार उत्सर्गानुयायी होना अपवादसे धर्म है। और अभेद रत्नत्रयी साधन शुद्धनिश्चय नयसे उत्सर्ग धर्म है। और जो वस्तुका सत्तागत शुद्ध पारिणामिक स्वगुण प्रवृत्ति और कर्त्तादिक तथा अनन्तानन्दरूप सिद्धावस्थामे रहा हुआ है वह एवंभूत उत्सर्ग उपादान शुद्धधर्म । उस धर्मका भाम होना तथा आत्माका उसमें रमण करना, एकाग्रतासे चिन्तन

और तन्मयताका उपयोग रखना, एकत्वका विचार करना धर्मध्यान कहलाता है। इसके चार पाए बताये गये हैं।

धर्मध्यानके ४ पाए

१—आज्ञा विचय धर्मध्यान—वीतरागकी आज्ञाका सत्यतासे श्रद्धान करना अर्थात् जिनेन्द्रने जो ६ द्रव्योंका स्वरूप, नय, निक्षेप-प्रणाम सहित सिद्धस्वरूप, निगोदस्वरूप आदि जिस प्रकार कहे हैं उनका उसी प्रकार श्रद्धान करना, वीतरागकी आज्ञा नित्य और अनित्य दोनों प्रकारसे, स्याद्वादपनसे निश्चय और व्यवहारकी दृष्टिसे श्रद्धान करना तथा उस आज्ञाके अनुसार यथार्थ उपयोगका भास हो गया है तब उसे हर्षपूर्वक उपयोगमे निर्धार, भास रमण, अनुभवता, एकता, तन्मयतादिका जो रखना है वह 'आज्ञाविचय' धर्मध्यान है।

२-अपायविचय-जीवमे योगकी अशुद्धि और कर्मके योगसे सासारिक अवस्थामें अनेक अपाय [दूषण] हैं। वे राग, द्वेष, कषाय, आस्रव आदि हैं परन्तु मेरे नहीं हैं। मैं इनसे अलग हू मैं तो अनन्तज्ञान, दर्शन, चरित्र, वीर्यमयी, शुद्ध, बुद्ध, अज अमर, अविनाशी हू, अनादि, अनन्त, अक्षर, अनक्षर अचल, अकाल, अमल, अप्राणी, अनास्रव, असंगी इत्यादि एकाग्रतारूपध्यान ही अपायविचय धर्मध्यान है।

३—विपाक विचय धर्मध्यान-यद्यपि जीव ऐसा है तथापि कर्मके वशमे चिंतित रहना, कर्मके वशमे रहनेसे एक प्रकारका दुःख ही है, और वह विवेकी कर्मका विपाक ही सोचकर धीरतासे अपनेको थामे रखता है वह यही सोचता है कि जीवका ज्ञान गुण ज्ञानावरणीय

कर्मने दाव लिया है। इस प्रकार क्रमशः जीवके आठों गुण दबे पड़े है, और इस संसारमें भ्रमण करते हुए इसे जो सुख-दुःख है, वह सब अपने किये कर्मसे है। इसी कारण सुखके उदयमे हर्ष और दुःखके उत्पन्न होनेपर उदास न होना चाहिये। कर्मका स्वरूप, उनकी प्रकृति, स्थिति रस और प्रदेशका बंध, उदय, उदीरणा तथा सत्ताका चिन्तवन करके एकाग्र प्रणाम रखना विपाकविचय धर्मध्यान है।

४—संस्थान-विचय धर्मध्यान—मैंने अनन्त कालतक संसारमें-लोकमे सब स्थानोंपर जन्म मरण किया है, इसमे पंचास्तिकायका अवस्थान तथा परिणमन है, द्रव्यमे गुण और पर्यायका अवस्थान है जिसका एकाग्रतासे तन्मय चिंतवन परिणाम सस्थान—विचय धर्मध्यान है। ये धर्मध्यानके चार पाए हैं, धर्मध्यान चौथे गुण-स्थानसे लगाकर सातवें गुणस्थान तक रहता है।

धर्मध्यानके ४ लक्षण

(१) आज्ञारुचि, (२) निसर्गरुचि, (३) उपदेशरुचि, (४) सूत्र रुचि।

धर्मध्यानके ४ आलंबन

(१) वाचना, (२) पृच्छना, (३) परिवर्तना, (४) धर्मकथा।

धर्मध्यानकी ४ अनुप्रेक्षाएं

(१) अनित्य—अनुप्रेक्षा, (२) अशरण—अनुप्रेक्षा, (३) एकत्व-अनुप्रेक्षा, (४) संसार—अनुप्रेक्षा।

शुक्लध्यान क्या है ?

यह ध्यान शुक्ल निर्मल और शुद्ध है, परका आलंबन न लेकर आत्माके स्वरूपको तन्मयत्वसे ध्यान करना शुक्लध्यान है।

शुक्लध्यानके ४ पाद

१—पृथक्त्ववित्तर्कसप्रविचार—जब जीव अजीवसे अलग होता है, स्वभाव और विभावको भिन्न दो भागोंमे अलग करता है, स्वरूपमे भी द्रव्य और पर्यायका अलग-अलग ध्यान करता है, पर्यायका संक्रमण गुणमे करता है फिर गुणका पर्यायमे सक्रमण कर देता है। इसी प्रकार स्वधर्मके अन्दर धर्मान्तर भेद करना पृथक्त्व कहलाता है। उसका वितर्क श्रुतज्ञानमे स्थित उपयोग है और सप्रविचार सविकल्प उपयोगको कहते हैं, जिसमे एकका चिन्तवन करनेके अनन्तर दूसरेका विचार किया जाता है। इसमे निर्मल तथा विकल्प सहित अपनी सत्ताका ध्यान किया जाता है। यह पाद आठवें गुण-स्थानसे लगाकर ११ वें गुणस्थानतक है।

२—एकत्ववितर्क अप्रविचार—जीव अपने गुण पर्यायकी एकतासे ध्यानको इस भाति करता है। जीवके गुण पर्याय और जीव एक ही है, मेरा सिद्ध स्वरूप जीव एक ही है इस प्रकार एकत्व स्वरूप तन्मयतासे है। आत्माके अनन्त धर्मका एकत्वसे ध्यानवितर्क यानी श्रुतज्ञानावलम्बीपनसे और अप्रविचार-विकल्प रहित दर्शन ज्ञानका समयान्तरमे कारणता विना जो ध्यान है, वीर्य उपयोगकी एकामता ही एकत्ववितर्क अप्रविचार है। यह ध्यान १२ वें गुण-

स्थानमे आता है। श्रुतज्ञानी इसका अवलम्बन करते हैं। मगर अवधि मन पर्यव ज्ञानमे सलग्न जीव इसका ध्यान नहीं कर सकते। ये दोनों ज्ञान परानुयायी हैं। अतः इस ध्यानसे ४ घातिया कर्म क्षय होते हैं। निर्मल केवलज्ञान पाता है। फिर तेरहवें गुणस्थानपर ध्यानान्तरिका द्वारा बर्तता है। तेरहवेंके अन्तमें और १४ वें गुणस्थानके अन्तर्गत शेषके दो पाद पाये जाते हैं।

३—सूक्ष्मक्रिया-अनिवृत्ति—सूक्ष्म मन, वचन, काय, योगका रुंधन करके शैलेशी करणके द्वारा अयोगी होते हैं, अप्रतिपाती= निर्मल वीर्य अचलता रूप परिणामको सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति ध्यान कहा है।

४—उच्छिन्नक्रियानिवृत्ति—योग निरोध करनेपर १३ प्रकृति क्षय होती है अकर्मा हो जाते हैं, सब क्रियाओंसे रहित हो जाते हैं, वह समुच्छिन्न—क्रियानिवृत्ति शुक्ल ध्यान है। इस ध्यानके बलसे दल-क्षरणरूप क्रियाका उच्छेद करता है। देहमानमेसे तीसरा भाग घटा देता है। शरीरको त्यागकर यहासे सातराजू ऊपर लोकके अन्त तक जाता है।

प्रश्न—१४ वा गुणस्थान तो अक्रिय है, तब वहापर जीव चलने-की क्रिया क्योंकर कर सकता है ?

उत्तर—यद्यपि अक्रिय ही है तथापि अलिप्त तूंबेके समान जीवमें चलनेका गुण है, धर्मास्तिकायमे प्रेरणाका गुण है, अतः कर्म रहित जीव मोक्षतक जाता है और लोकके अन्ततक जाता है।

प्रश्न—यह जीव अलोकमे क्यों नहीं जाता ?

उत्तर—अगाड़ी धर्मास्तिकाय नहीं है।

प्रश्न—अधोगतिमे और तिरछी गतिमे क्यों नहीं जाता ?

उत्तर—आत्मा कर्मके बोझसे हल्का हो गया है। अत. कोई प्रेरक नहीं है इसीसे नीची गति और तिरछी गतिमे नहीं जाता। तथा कम्पित भी नहीं होता क्योंकि अक्रिय है।

प्रश्न—सिद्धोंको कर्म क्यों नहीं लगते ?

उत्तर—जीवको कर्म अज्ञान और योगसे लगते हैं। परन्तु सिद्धोंमे ये दोनों ही बातें नहीं हैं अत कर्म नहीं लगते।

अन्य चार ध्यान

१—पदस्थ ध्यान—इसका साधक अरिहंतादि पाच परमेष्टीके गुणोंका स्मरण करता है। उनके शुद्ध स्वरूपका चित्तमे ध्यान करता है।

२—पिंडस्थ ध्यान—मुझमे अर्हन, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधुके गुण सम्पूर्ण है। तथा जीव द्रव्य और परमेष्टीमे एकत्व उपयोग करना पिंडस्थ ध्यान है।

३—रूपस्थ ध्यान—रूपमे रहा हुआ यह मेरा आत्मा अरूपी और अनन्त गुण सहित है। आतमवस्तुका स्वरूप अतिशय गुणावलम्बी होनेपर आत्माका रूप अतिशय एकताको भजता है।

४—रूपातीत ध्यान—निरजन, निर्मल, संकल्प विकल्प रहित, अभेद, एक शुद्ध सत्ता रूप, चिदानन्द, तत्वामृत, असग, अखंड, अनन्त-गुण पर्याय रूप आत्माका स्वरूप है। इस ध्यानमें मार्गणा, गुण-स्थान, नय, प्रमाण, मत्यादिक ज्ञान, क्षयोपशम भावादि सब त्याज्य

हैं। एक सिद्धके ही मूलगुणका ध्यान किया जाता है। यह मोक्षका कारणभूत है।

॥ इति ध्यान तप ॥

व्युत्सर्ग तपके २ भेद

(१) द्रव्य-व्युत्सर्ग, (२) भाव-व्युत्सर्ग।

द्रव्य-व्युत्सर्गके ४ भेद

(१) शरीर-व्युत्सर्ग, (२) गण-व्युत्सर्ग, (३) उपधि-व्युत्सर्ग, (४) भक्तपान-व्युत्सर्ग।

भावव्युत्सर्गके ३ भेद

(१) कषाय-व्युत्सर्ग, (२) संसार-व्युत्सर्ग, (३) कर्म्म-व्युत्सर्ग।

कषाय-व्युत्सर्गके ४ भेद

(१) क्रोध-कषाय-व्युत्सर्ग, (२) मान-कषाय-व्युत्सर्ग, (३) माया-कषाय-व्युत्सर्ग, (४) लोभ-कषाय-व्युत्सर्ग।

संसार-व्युत्सर्गके ४ भेद

(१) नारक-संसार-व्युत्सर्ग, (२) तिर्यंच-संसार-व्युत्सर्ग, (३) मनुष्य-संसार-व्युत्सर्ग, (४) देव-संसार-व्युत्सर्ग।

कर्मव्युत्सर्गके ८ प्रकार

(१) ज्ञानावरणकर्म-व्युत्सर्ग, (२) दर्शनावरणकर्म व्युत्सर्ग, (३)

वेदनीयकर्म-व्युत्सर्ग, (४) मोहनीकर्म-व्युत्सर्ग, (५) आयुष्यकर्म-व्युत्सर्ग, (६) नामकर्म-व्युत्सर्ग, (७) गोत्रकर्म-व्युत्सर्ग, (८) अन्तरायकर्म-व्युत्सर्ग।

इति निर्जरा-तत्त्व।

अथ बंध-तत्त्व

बंध किसे कहते हैं ?

आत्मा और पुद्गलोंका दूध और पानीकी सदृश परस्पर मिलना बंध कहलाता है। अथवा नवीन कर्म पुराने कर्मसे आपसमे मिलकर दृढतासे बध जाते हैं, और कर्म शक्तिकी परम्पराको बढाते है वह बध पदार्थ है, अथवा जिसने मोहरूपी मदिरा पिलाकर ससारी जीवोंको व्याकुल कर डाला है, जो मोह जालके समान है, और वह ज्ञानरूपी चद्रको निस्तेज बनानेके लिये राहुके समान है। उसे बंध कहते हैं।

ज्ञान चेतना और कर्म चेतना

जहापर आत्मामें ज्ञान ज्योति प्रकाशित है, वहा धर्मरूपी पृथ्वी-पर सत्यरूप सूर्यका उद्योत है और जहा शुभ-अशुभ कर्मोंकी सघ-नता है वहाँ मोहके विस्तारका घोर अंधकाररूप कुआ है। इस प्रकार जीवकी चेतना दोनों अवस्थाओंमें अव्यक्त होकर शरीररूप मेघ-घटामे बिजलीके समान फैल रही है, वह बुद्धि ग्राह्य नहीं है किन्तु पानीकी तरगोंके समान पानी हीमे लय हो जाती है।

अशुद्ध-उपयोग कर्मबन्धका कारण

जीवको बंधके कारण न तो कार्माण वर्गणाएँ हैं, न मन, वचन, कायके योग हैं, न चेतन अचेतनकी हिंसा है। न पाचों इन्द्रियोंके विषय हैं। केवल राग आदि अशुद्ध उपयोग बंधका कारण है। क्योंकि कारमाणा वर्गणाओंके रहते भी सिद्ध भगवान् अबंध रहते हैं। योग होते हुए भी अर्हन् भगवान् अबध रहते हैं। हिंसा हो जानेपर भी मुनिराज अबंध रहते हैं। पाचों इन्द्रियोंके भोग सेवन करते हुए भी सम्यग्दृष्टि जीव अबध रहते हैं। भाव यह है कि— कार्माण वर्गणायोग, हिंसा, इन्द्रिय विषय भोग ये सब बधके कारण कहे जाते हैं, परन्तु सिद्धालयमे अनन्तानन्त कार्माण वर्गणा (पुद्गल) भरी पड़ी है परन्तु ये रागादिके बिना सिद्ध भगवानसे नहीं बध जातीं। १३ वें गुणस्थानवर्ती अर्हन् भगवानको मन वचन काय योग रहते हैं, परन्तु राग द्वेष आदि न होनेके कारण इन्हें कर्मबध नहीं होता. महाव्रती साधुओंसे अबुद्धि पूर्वक हिंसा हो जाया करती है, परन्तु राग द्वेष न होनेसे उन्हे बध नहीं है, अव्रत सम्यग्दृष्टि जीव पाचों इन्द्रियोंके विषय भोगते हैं परन्तु तल्लीनता न होनेसे उन्हें सवर निर्जरा ही होती है। इससे स्पष्ट है कि कार्माण वर्गणाएं, योग, हिंसा, और सासारिक विषय बधके कारण नहीं हैं केवल अशुद्धोपयोग ही से बध होता है। क्योंकि कार्माण वर्गणाएँ लोकाकाशमें रहती हैं मन, वचन, कायके योगोंकी स्थिति, गति और आयुमे रहती है, चेतन अचेतनकी हिंसाका अस्तित्व पुद्गलोंमें है। इन्द्रियोंके विषय-भोग उदयकी प्रेरणासे होते हैं। इसमें वर्गणा, योग, हिंसा और भोग

इन चारोंका सद्भाव पुद्गल सत्तापर है—आत्म सत्तापर नहीं है अत. ये जीवके लिये कर्मबधके कारण नहीं है। और राग द्वेष, मोह जीवके स्वरूपको भुला देते है, इससे बधकी परम्परामे अशुद्ध उपयोग ही अन्तरग कारण बताया गया है। सम्यक्त्व भावमे राग, द्वेप, मोह नहीं होते इस कारण सम्यग्दृष्टिको और सम्यग्ज्ञानीको सदा बंध रहित कहा है।

अबंधज्ञानी पुरुषार्थ कर्ता है

स्वरूपकी सभाल और भोगोंका अनुराग ये दोनों बाते एक साथ जैन-धर्मकी दृष्टिसे नहीं हो सकतीं। इससे यद्यपि सम्यग्ज्ञानी वर्गणा, योग, हिंसा और भोगोंसे अबध है तथापि उन्हें पुरुपार्थ करने के लिये जिनराजकी आज्ञा है। वे शक्तिके अनुसार पुरुषार्थ करते हैं, मगर फलकी अभिलाषा नहीं करते और हृदयमे सदैव दया भाव धारण किये रहते है निर्दय नहीं होते। प्रमाद और पुरुषार्थ-हीनता तो मिथ्यात्व दशामे ही होती है जहा जीव मोह निद्रासे अचेत रहता है, सम्यक्त्व भावमे पुरुषार्थहीनता नहीं है।

उदयका प्राबल्य

जिस प्रकार कीचड़के गढ़ेमे पडा हुआ बूढा हाथी अनेक चेष्टाएँ करने पर भी दु खसे नहीं छूटता, जिस प्रकार लोहके काटेमें फँसी हुई मछली दु'ख पाती है—निकल नहीं सकती, जिस तरह तेज बुखार और मस्तक शूलमें पड़ा हुआ व्यथित मनुष्य अपना कार्य करने के लिये स्वाधीनता पूर्वक नहीं उठ सकता उसी प्रकार

सम्यग्ज्ञानी जीव सब कुछ जानते हैं परन्तु पूर्वोपार्जित कर्मोदयके फंदेमे फंसे हुए रहने से उनका कुछ भी वश नहीं चलता जिसके कारण व्रत संयम आदि भी ग्रहण नहीं कर सकते। मगर जो जीव मिथ्यात्वकी निद्रामे सोये पड़े हैं वे मोक्ष मार्गमे प्रमादी और पुरुषार्थहीन हैं और जो विद्वान् ज्ञान नेत्र उघाड कर जग गये हैं वे प्रमाद रहित होकर मोक्ष मार्गमे पुरुपार्थ करते हैं।

ज्ञानी और अज्ञानीकी परिणति

जिस प्रकार विवेक रहित मनुष्य मस्तकमे काच और पैरोंमें रत्न पहिनता है क्योंकि वह काच और रत्नका मूल्य नहीं समझता। उसी प्रकार मिथ्यात्वी जीव अतत्वमे मग्न रहता है, और अतत्वको ही ग्रहण करता है किन्तु वह सत् और असत्को नहीं पहचानता। ससारमे हीरेकी परीक्षा जौहरी ही करना जानते हैं, इसी तरह साच झूठकी पहिचान मात्र ज्ञानसे और ज्ञानदृष्टिसे होती है। जो जिस अवस्थामे रहने वाला है वह उसीको सुन्दर मानता है और जिसका जैसा स्वरूप है वह वैसी ही परिणति प्राप्त करता है अर्थात् मिथ्यात्वी जीव मिथ्यात्वको ही ग्राह्य समझता है और उसे अपनाता है तथा सम्यक्त्वी जीव सम्यक्त्वको ही उपादेय जानता है और उसे अपनाता है।

जैसी करनी वैसी भरनी

जो विवेक हीन होकर कर्मबंधकी परम्पराको बढ़ाता है वह

अज्ञानी तथा प्रमादी है, और जो मोक्ष पानेका प्रयत्न करते हैं वे ही जन पुरुषार्थी है ।

ज्ञानमें वैराग्य है

जब तक जीवका विचार शुद्ध वस्तुमे रमता है तब तक वह भोगोंसे सर्वथा विरक्त है और जब भोगोंमे लय होता है तब ज्ञानका उदय नहीं रहता, क्योंकि—भोगोंकी इच्छा अज्ञानका रूप है, इससे प्रगट है कि—जो जीव भोगोंमे मग्न होता है वह मिथ्यात्वी है, और जो भोगोसे विरक्त होकर आत्मदशामे रमण करता है वह सम्यग्दृष्टि है। यह जानकर भोगोंमे विरक्त होकर मोक्षका साधन करो। यदि मन भी पवित्र है तो कठौतीमे ही गगा है, यदि मन मिथ्यात्व विषय, कषाय आदिसे मलिन है तो गगा आदि करोड़ो तीर्थोंकी यात्रा करने से भी आत्मामे पवित्रता नहीं आती।

चार पुरुषार्थ

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये पुरुषार्थके चार अग है, इन्हें कुटिलमतिके जीव मन चाहे ग्रहण करते हैं और सम्यग्दृष्टि जीव तथा ज्ञानी पुरुष सम्पूर्णतया वास्तविक रूपसे अंगीकार करते हैं।

अज्ञानी लोक कुलपद्धति, स्नान, चौका, पूजा-पाठ आदिको धर्म समझ बैठे हैं, और तत्वज्ञजन वस्तुके स्वभावको धर्म कहते हैं। अज्ञानी जीय मिट्टीके ढेर, सोने-चादी आदिको द्रव्य कहते हैं परन्तु आत्मज्ञ पुरुष तत्वके अवलोकनको द्रव्य कहते हैं। अज्ञानीजन पुरुष-स्त्रीके विपय-भोगको काम कहते हैं, ज्ञानी आत्माकी निस्पृहता-

को काम कहते हैं। अज्ञानी स्वर्गलोक और वैकुण्ठको मोक्ष कहते हैं परन्तु ज्ञानी कर्मबंधन नष्ट होनेको मोक्ष कहते हैं।

आत्मामें चारों पुरुषार्थ हैं

वस्तु स्वभावका यथार्थ ज्ञान करना धर्मपुरुषार्थकी सिद्धि करना है, छह द्रव्योंका भिन्न-भिन्न जानना अर्थपुरुषार्थकी साधना है, निस्पृहताका ग्रहण करना काम पुरुषार्थकी सिद्धि करना है, और आत्म स्वरूपकी शुद्धता प्रगट करना मोक्ष पुरुषार्थकी सिद्धि करना है। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंको सम्यग्दृष्टि जीव अपने हृदयमें अन्तर्दृष्टिसे नित्य देखते रहते हैं, और मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वके भ्रममे पड़कर चारों पुरुषार्थोंकी साधक और आराधक सामग्री पासमें रहनेपर भी उन्हे नहीं देखता और बाहर खोजता फिरता है।

वस्तुका तथ्य स्वरूप और जड़ता

तीन लोक और तीनों कालमे जगत्के सब जीवोंको पूर्व उपार्जित कर्म उदयमें आकर फल देता है जिससे कोई अधिक आयु पाते हैं, कोई छोटी उमर पाते हैं, कोई दुःखी हो होकर मरते हैं, कोई सुखी होते हैं कोई साधारण स्थितिमें ही मरते हैं, इसपर मिथ्यात्वी ऐसा मानने लगता है कि मैंने इसे जीवित किया, इसे मारा, इसे सुखी किया, इसे दुःखी किया है। इसी अहंबुद्धिसे अज्ञानका पर्दा नहीं हटता और यही मिथ्याभाव है जो कर्मबंधका कारण रूप है। क्योंकि जबतक जीवोंका जन्म मरण रूप संसारका कारण है तबतक

वें असहाय हैं कोई भी किसीका रक्षक नहीं है। जिसने पूर्वकालमे जैसी कर्म सत्ता बाधी है उदय प्रसंगमे उसकी वैसी ही दशा हो जाती है। ऐसा होनेपर भी जो कोई कहता है कि मैं पालता हूं, मैं मारता हूं इत्यादि अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ करता है, और वह इसी अहं-बुद्धिसे व्याकुल होकर सदा फिरता भटकता रहता है, और अपनी आत्माकी शक्तिका घात करता है।

जीवकी चार कक्षाएँ

उत्तम मनुष्य स्वभावका अर्थात् अन्तरगमे और वाह्यमे किस-मिस-दाखके समान कोमल और मीठा होता है। मध्यम पुरुपका स्वभाव नारियलके समान वाहरसे कड़ा (अभिमानी) और अन्त-रगमे कोमल रहता है। अधम पुरुपका स्वभाव वेर फलके समान वाहरसे कोमल किन्तु अन्दरसे कठोर होता है, और अधमाधम मनुष्यका स्वभाव सुपारीके समान अन्दर और वाहरसे सर्वांग कठोर रहता है।

उत्तम पुरुषोंका स्वभाव

कंचनको कीचड समान जानते हैं। राज्य पदको विल्कुल तुच्छ गिनते है, लोकोंमे मित्रता करना मृत्यु समझते हैं, प्रशसाको वन्दूककी गोलीकासा प्रहार समझते हैं। उनके सन्मुख योगोंकी क्रियाएँ जहर ही लगती हैं। मंत्रादि करामातको दुःख जानते हैं, लौकिक उन्नति अनर्थके समान है, घरमें निवास करना वाणकी नोकपर सोने जैसा है। कुटुम्ब कार्यको वे कालके समान जानते हैं।

लोक लाजको कुत्तेकी लार समझते हैं। सुयश नाकका मैल है, और भाग्योंके उदयको जो विष्ठाके समान जानता है वह उत्तम पुरुष है। भाव यह है कि ज्ञानी जीव सांसारिक अभ्युदयको आपत्ति ही समझते हैं। मध्यम पुरुषके हृदयमे यह समाया रहता है कि— जैसे किसी सज्जनको कोई ठग मामूली ठगमूली खिला देता है और वह मनुष्य फिर उन ठगोंका दास बन जाता है जिससे सदैव उनकी आज्ञामे ही चलता है। परन्तु जब उस बूटीका असर मिट जाता है और उसे भान होता है तब ठगोंको भला न जानकर भी उनके अधीन रहकर अनेक प्रकारके कष्ट सहता है, उसी प्रकार अनादि कालका मिथ्यात्वी जीव संसारमें सदैव भटकता फिरता है और कहीं चैन नहीं पाता। परन्तु घटमें जब ज्ञान ज्योतिका विकाश होता है तब अन्तरगमे यद्यपि विरक्त भाव रहता है तथापि कर्मोंके उदयकी प्रबलताके कारण शान्ति नहीं पाता है। (यह मध्यम पुरुष है)

अधम पुरुषका स्वभाव

जिस प्रकार गरीब मनुष्यको एक फूटी कौड़ी भी बडी सम्पत्तिके समान प्रिय लगती है, उल्लूको सांझ भी प्रभातके समान इष्ट होती है। कुत्तेको वमन ही दहीके समान स्वादिष्ट लगता है। कव्वेको नीमकी निबोली भी दाखके समान प्रिय है। बच्चेको दुनियाकी गप्पें शास्त्रकी तरह रुच जाती हैं। हिंसक मनुष्यको हिंसा ही मे धर्म दीखता है। उसी प्रकार मूर्खको पुण्य बंध ही मोक्षके समान प्यारा लगता है (ऐसा अधम पुरुष होता है)

अधमाधम पुरुषका स्वरूप

जिस प्रकार कुत्ता हाथीको देखकर कुपित होकर भौंकता है, धनी पुरुषको देखकर निर्धन मनुष्य अप्रसन्न होता है, रातमें जागनेवालेको देखकर चोरको क्रोध होता है, सच्चा शास्त्र सुनकर मिथ्यात्वी जीव नाराज होता है, हंसको देखकर कौव्वोंको कष्ट होता है, महापुरुषको देख देखकर घमंडी मनुष्यको क्रोध आता है, सुकविको देखकर कुकविके मनमें क्रोध भर जाता है, उसी प्रकार सत्पुरुषको देखकर अधमाधम पुरुष क्रोधित होता है। अधमाधम मनुष्य सरल चित्त मनुष्यको मूर्ख कहता है, जो बातोंमें चतुर है उसे ढीठ कहता है, विनयवान्‌को धनीका गुलाम बतलाता है। क्षमावान्‌को कमजोर कहता है, संयमीको कृपण कहता है, मधुर भाषकको दीन या चापलूस कहता है। धर्मात्माको ढोंगी कहता है, निस्पृहको घमंडी कहता है। सन्तोषीको भाग्यहीन कहता है अर्थात् जहा सद्गुण देखता है वहा दोषका लाछन लगाता है दुर्जनका हृदय इसी भांतिका मलीन होता है।

मिथ्या दृष्टिमें अहंबुद्धि होती है

मैं कहता हूं, मैंने यह कैसा अच्छा काम किया है, यह औरोंसे कब बननेवाला था। अब भी मैं जैसा कहता हूं वैसा ही कर दिखाऊँगा। जिसमे ऐसे अहकार रूप विपरीत भाव होते हैं वह ही जन मिथ्यादृष्टि होता है। अहकारका भाव मिथ्यात्व है, यह भाव जिस जीवमे होता है वह मिथ्यात्वी है। मिथ्यात्वी ससारमे

दुखी होकर भटकता है, अनेक प्रकारके रोदन और विलाप करता है।

मूर्खोंकी विषयोंसे अविरक्ति

जिस प्रकार अंजलीका पानी क्रमश घटता है उसी प्रकार सूर्य-का उदय अस्त होता है और प्रति दिन जीवनी घटती रहती है, जिस प्रकार करौंत खिंचनेसे काठ कटता है, उसी प्रकार काल शरीर-को प्रतिक्षण क्षीण करता है, इतनेपर भी अज्ञानी जीव मोक्षमार्गकी खोज नहीं करता और लौकिक स्वार्थके लिये अज्ञानका बोझ उठा रहा है। शरीर आदि परवस्तुओंमे प्रीति करता है। मन वचन, कायके योगोंमें अहब्रुद्धि करता है, तथा सासारिक विषय भोगोंसे किंचित् भी विरक्त नहीं होता। जिस प्रकार गर्मीके दिनोंमे सूर्यका तीव्र आताप होनेपर प्यासा मृग उन्मत्त होकर मिथ्या जलकी ओर व्यर्थ ही दौड़ता है उसी प्रकार संसारी जीव माया ही मे कल्याण सोचकर मिथ्या कल्पना करके ससारमे नाचते हैं। जिस प्रकार अन्धी स्त्री आटा पीसती है और कुत्ता खाता रहता है या अन्धा मनुष्य आगेको रस्सी बटता रहता है और पीछेसे वछडा खाता रहता है, तब उसका परिश्रम व्यर्थ जाता है, उसी प्रकार मूर्ख जीव शुभाशुभ क्रिया करता है या शुभ क्रियाके फलमे हर्ष और अशुभ क्रियाके फलमे शोक मानकर क्रियाका फल खो देता है।

अज्ञानी बंधसे नहीं छूटता

जिस प्रकार लोटन कबूतरके पंखोमे दृढ पेंच लगे रहनेमे वह

उलट पुलट होकर घूमता फिरता है उसी प्रकार ससारी जीव अनादि कालसे कर्मबंधके पेंचमे उलटा हो रहा है। कभी सन्मार्ग ग्रहण नहीं करता, और जिसका फल दुःख है ऐसी विषय भोगकी किंचित्साताको सुख मानकर शहदमें लिपटी तलवारकी धारको चाटता है। ऐसा अज्ञानी जीव सदाकाल परवस्तुओंको मेरा मेरा कहता है और अपनी आत्म ज्ञानकी विभूतिको नहीं देखता। परद्रव्यके इस ममत्व भावसे आत्महित इस तरह नष्ट हो जाता है जिस तरह काजीके स्पर्शसे दूध फट जाता है।

अज्ञानी जीवकी अहंमन्यता

अज्ञानी जीवको अपने स्वरूपकी खबर नहीं है, उसपर कर्मोदय-लेप* लग रहा है, उसका शुभ-पवित्र ज्ञान इस तरह दब रहा है जैसे कि—चन्द्रमा मेघोंसे दब जाता है। ज्ञाननेत्र ढँक जानेसे वह सद्गुरुकी शिक्षाको नहीं मानता, मूर्खतावश दरिद्री हुआ सदैव निश्शक फिरता है। नाक उसके शरीरमे मासकी एक डली है, उसमें तीन फांक हैं, मानों किसीने शरीरमे तीनका अंक ही लिख डाला है, उसे नाक कहता है, उस नाक (अभिमान) को रखनेके लिये विश्वमें लडाई ठानता है, कमरमे तलवार बाधता है और मनमेंसे टेढापन निकालता ही नहीं।

---

* सफेद काचपर जिस रंगका लेप लगाया जाता है उसी रंगका काच दीखने लगता है उसी प्रकार जीवरूपी काचपर कर्मका लेप लग रहा है, वह कर्म जैसा रस देता है जीवात्मा उसी प्रकारका हो जाता है।

अज्ञानीकी विषयासक्ति

जिस प्रकार भूखा कुत्ता हाड चबाता है और उसकी अनी मुखमे कई जगह चुभ जाती है। जिससे गाल, तालु, जीभ और जबड़ोंका मांस फट जाता है और खून निकलता है, उस निकले हुए अपने निजके ही रक्तको वह बड़े स्वादसे चाटता हुआ आनन्दित होता है। उसी प्रकार अज्ञानी विषयसक्त जीव काम भोगोंमे आसक्त होकर सन्ताप और कष्टमे भलाई मानता है। काम-क्रीड़ामे शक्तिकी हानि और मल-मूत्रकी खानि तो आखों आगे दीखती है तब भी वह ग्लानि नहीं करता, प्रत्युत राग, द्वेष और मोहमे मग्न रहता है।

निर्मोह प्राणी साधु है

वास्तवमें आत्मा कर्मोंसे निरनिराला है, परन्तु मोह कर्मके कारण निज स्वरूपको भूलकर मिथ्यात्वी बन रहा है, और शरीर आदिमे वह अहंभाव मानकर अनेक विकल्प करता है। जो जीव परद्रव्योंसे ममत्व जालको हटाकर आत्म-स्वरूपमें स्थिर होते हैं वे ही साधु है।

समदृष्टिकी आत्मामें स्थिरता

जिनराजका कथन है कि जीवके जो लोकाकाशके बराबर मिथ्यात्व भावके अध्यवसाय हैं वे सब व्यवहार नयमें हैं। जिस जीवका मिथ्यात्व नष्ट होनेपर सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, वह व्यवहारको छोड़कर निश्चयमें लीन होता है वह विकल्प और उपाधि रहित आत्म अनुभव ग्रहण करके दर्शन ज्ञान, चारित्र रूप मोक्ष

मार्गमे लगता है और वही परम ध्यानमे स्थिर होकर निर्वाण प्राप्त करता है, तथा कर्मोका रोका नहीं रुकता।

प्रश्न—आपने मोह कर्मकी सब परिणति बंधका कारण ही बताई है अत वह शुद्ध चैतन्य भावोंसे सदा निराली ही है और अब फिर आप ही कहिये कि बंधका मुख्य कारण क्या है? बंध जीवका स्वाभाविक धर्म है अथवा इसमे पुद्गल द्रव्यका निमित्त है?

उत्तर—जिस प्रकार स्वच्छ और सफेद सूर्यकान्ति या स्फटिक-मणिके नीचे अनेक प्रकारके लेप लगाये जायँ तो वह अनेक प्रकारसे रंग विरंगा दीखने लगता है, और यदि वस्तुका वास्तविक स्वरूप बताया जाय तो उज्वलता ही ज्ञात होती है। उसी प्रकार जीवद्रव्यमे पुद्गलके निमित्तसे उसकी ममताके कारण मोह मदिराकी उन्मत्तता होती है, पर भेद विज्ञान द्वारा स्वभावको सोचा जाय तो सत्य और शुद्ध चैतन्यकी वचनातीत सुख शान्ति प्रतीत होती है। जिस प्रकार भूमिपर यद्यपि नदीका प्रवाह एक रूप होता है, तथापि पानीकी अनेकानेक अवस्थाएँ हो जाती है, अर्थात् जहा पत्थरसे ठोकर खाता है वहा पानीकी धार मुड जाती है, जहा रेतका समूह होता है वहा फेन पड जाते हैं, जहा हवाका झकोरा लगता है वहा लहरें उठने लगती है। जहा धरती ढालू होती है वहा भँवर पड़ जाते हैं, उसी प्रकार एक आत्मामे भाति भातिके पुद्गलोंका सयोग होनेसे अनेक प्रकारकी विभाव परिणतिएँ होती है। मगर आत्माका लक्षण चेतना है, और शरीर आदिका लक्षण जड़ है अत. शरीरादि ममता हटाकर शुद्ध चैतन्यका ग्रहण करना उचित है।

आत्म-स्वरूपकी पहचान ज्ञानसे होती है

आत्माको जाननेके लिये अर्थात् ईश्वरकी खोज करनेके लिये कोई तो बाबाजी बन गये हैं, कोई दूसरे देशमे यात्रा करनेके लिये निकलते हैं, कोई छीकेंपर बैठ पहाड़ोंपर चढते हैं, कोई कहता है कि ईश्वर आकाशमे है और कोई पातालमे बतलाते है, परन्तु हमारा प्रभु दूर देशमे नहीं है बल्कि हम ही मे है अत. हमे भली प्रकार अनुभव द्वारा ज्ञान हो चुका है। क्योंकि जो सम्यग्दृष्टि जन अत्यन्त वीत-रागी होकर मनको स्थिर रख आत्म-अनुभव करता है वही आत्म-स्वरूपको प्राप्त होता है।

मनकी चंचलता

यह मन क्षण भरमे पडित बन जाता है, क्षण भरमे मायासे मलिन हो जाता है, क्षण भरमे विषयोंके लिये दीन होता है, क्षण भरमें गर्वसे इन्द्रके समान बन जाता है, क्षण भरमे जहा तहा दौड़ लगाता है, और क्षण भरमे अनेक वेष बनाता है, जिस प्रकार दही बिलोनेपर तक्रका गडगड़ शब्द होता है वैसा कोलाहल तक मचाता है, नटका थाल, हरटकी माला, नदीकी धारका भँवर अथवा कुम्हार-के चाकके समान घूमता रहता है। ऐसा भ्रमण करनेवाला मन आज थोड़ेसे प्रयाससे क्योंकर स्थिर हो सकता है, जो स्वभावसे ही चंचल और अनादि कालसे वक्र है।

मनपर ज्ञानका प्रभाव

यह मन सुखके लिये सदैव भटकता रहा है, पर कहीं सच्चा सुख

नहीं पाया। अपने स्वानुभवके सुखमे विमुख होकर दुःखोंके कूपमे पड़ रहा है, धर्मका घातकी, अधर्मका साथी, महा उपद्रवी, सन्निपातके रोगीके समान असावधान हो रहा है, धन-सम्पत्ति आदिको चतुराई और फुर्तीके साथ ग्रहण करता है और शरीरसे प्रेम लगाता है. भ्रम जालमे पड़कर ऐसा भूल रहा है जैसे शिकारीके घेरेमे शशक (खर-गोश) फिरता है। यह मन ध्वजाके वस्त्रके समान है, यह ज्ञानका उदय होनेसे मोक्षमार्गमे प्रवेश करता है।

जो मन, विपय, कपायादिमें प्रवर्तता है वह चचल रहता है, और जो आत्म स्वरूपके ही चिन्तवनमे लगा रहता है वह स्थिर हो जाता है। इससे मनकी प्रवृति विपय-कपायसे हटाकर उसे शुद्ध आत्म-अनुभवकी ओर ले जाओ और स्थिर करो।

आत्मामें अनुभव करनेकी विधि

प्रथम भेद-विज्ञानसे स्थूल शरीरको आत्मासे भिन्न मानना चाहिये, फिर उस स्थूल शरीरमे तेजस कार्मण सूक्ष्म शरीरमे जो सूक्ष्म शरीर हैं उन्हे भिन्न जानना समुचित है। पश्चात् अष्टकर्मकी उपाधि जनित राग-द्वेषोंको भिन्न करना और फिर भेद-विज्ञानको भी भिन्न मानना चाहिये। भेद-विज्ञानमें अखड आत्मा विराजमान है। उसे श्रुतज्ञान प्रमाण या नय-निक्षेप आदिसे निश्चित कर उसीक विचार करना और उसीमे लीन होना चाहिये। मोक्षपद पानेके निरन्तर ऐसी ही रीति है।

आत्मानुभवसे कर्मबंध नहीं होता

संसारमें समदृष्टि जीव ऊपर कहे अनुसार आत्माका स्वरू

जानता है और राग-द्वेष आदिको अपना स्वरूप नहीं मानता अतः वह कर्मबंधका कर्ता नहीं है।

भेद विज्ञानकी क्रिया

आत्मज्ञानी जीव भेद-विज्ञानके प्रभावसे पुद्गल कर्मको अलग जानता है और आत्म स्वभावसे भिन्न मानता है। उन पुद्गल कर्मोंके मूल कारण राग, द्वेष, मोह आदि विभाव हैं, उन्हे नष्ट करनेके लिये शुद्ध अनुभवका अभ्यास करता है, पररूप तथा आत्मस्वभावसे भिन्न पद्धतिको हटाकर अपने हीमे अपने ज्ञान-स्वभावको स्वीकार करता है, इस प्रकार वह सदैव मोक्ष मार्गका साधन करके बंधन रहित होता है, और केवलज्ञान प्राप्त करके लोकालोकका ज्ञायक होता है।

भेदज्ञानीका पराक्रम

जिस प्रकार कोई अजान महाबलवान् मनुष्य अपने बाहुबलसे किसी वृक्षको जड़से उखाड डालता है, उसी प्रकार भेद-विज्ञानी मनुष्य ज्ञानकी प्रकर्ष शक्तिसे द्रव्यकर्म और भावकर्मको हटाकर हलके हो जाते हैं। इसी रीतिसे मोहका अन्धकार नष्ट हो जाता है, और सूर्यसे भी सर्वश्रेष्ठ केवलज्ञानकी ज्योति जगमगा जाती है। फिर कर्म, नोकर्मसे न छिपने योग्य अनन्त शक्ति प्रगट हो जाती है। जिससे वह सीधा चार प्रकारके बंधोंको तोडकर मोक्ष जाता है, और किसीका रोका नहीं रुक सकता।

चार बंधोंका स्वरूप क्या है ?

बंधतत्त्वके चार प्रकार है—१—प्रकृतिबंध, २—स्थितिबंध ३—अनुभागबंध, ४—प्रदेशबंध।

आठ कर्मोंके नाम

१—ज्ञानावरणीय कर्म, २—दर्शनावरणीय कर्म, ३—वेदनीय कर्म, ४—मोहनीय कर्म, ५—आयुष्य कर्म, ६—नाम कर्म, ७—गोत्र कर्म, ८—अन्तराय कर्म।

कर्मके दो प्रकार

१—द्रव्यकर्म—ज्ञानावरणादि रूप पुद्गल द्रव्यका पिण्ड द्रव्य-कर्म है।

२—भावकर्म—उस पुद्गल द्रव्यमे फल देनेकी शक्तिको भावकर्म कहते हैं अथवा कार्यमे कारण रूप व्यवहार होनेसे उस शक्तिके द्वारा उत्पन्न हुए अज्ञानादि या क्रोधादि परिणाम भी भावकर्म हैं।

घातिककर्म

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय ये चार घातिककर्म हैं। जीवके अनुजीवी गुणोके नाशक हैं।

अघातिक कर्म

आयु, नाम, गोत्र, वेदनीय ये चार अघातिक कर्म है। ये जली हुई जेवडीकी तरह रहनेसे आत्म-गुणका नाश नहीं होता।

घातिया कर्मोंका कार्य

केवल ज्ञान, केवल दर्शन, अनन्तशक्ति, और क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चरित्र, क्षायिक दानादिक, इन क्षायिक भावोंको तथा मति ज्ञान, श्रुतिज्ञान, अवधि, मनःपर्यय इन क्षायोपशमिक भावोंको ये ज्ञानावरणादि चार घातिक कर्म घातते हैं अर्थात् जीवके इन सब गुणोंको प्रगट नहीं होने देते अतः ये घातिक कर्म हैं।

अघातिक कर्मोंका कार्य

अज्ञानसे कर्म किया गया है, मोह, अज्ञान, असंयम, और मिथ्यात्वसे अनादि संसार बढ रहा है, उसमे आयुका उदय आनेके कारण मनुष्य आदि चार गतिओंमें जीवकी स्थिति करता है। जैसे—काठके यत्रमे राजादिके अपराधीका पाव उस खोड़मे फसा दिया जाता है, अपने छिद्रमें जिसका पैर आ गया है उसकी उस छेदमें ही स्थिति करता है, उसको बाहर नहीं निकलने देता। इसी प्रकार आयु कर्म जिस गतिके शरीरमे उदय हुआ है उसी गतिमे जीवको ठहराता है।

नामकर्मका कार्य

गति आदि अनेक प्रकारका नाम कर्म, नारकी आदि जीवकी पर्यायोके भेदोंको, औदारिक शरीरादि पुद्गलके भेदोंको तथा एकगतिसे दूसरी गतिरूप परिणमनशील अवस्थाका अनेक प्रकारसे परिवर्तन करता है। चित्रकारकी सदृश अनेक कार्योंको करता है। आशय यह निकलता है कि—जीवमे जिनका फल हो ऐसी जीव-

विपाकी, पुद्गलमे जिनका फल हो ऐसी पुद्गलविपाकी, क्षेत्रविपाकी और भवविपाकी इस भाति चार प्रकारकी प्रकृतिओंके परिणमनको 'नामकर्म' करता है।

गोत्र कर्मका कार्य

जीवके चरित्रकी गोत्र सज्ञा है, जिन माता पिताओंका आचरण सदाचरण हो वह उच्च गोत्र है, और जो माता-पिता दुश्चरित्री, व्यभिचारी आदि हों वह नीचगोत्र है। उनके कुल और जातिमे उत्पन्न होनेवाला वही कहलाता है जैसे एक 'किंवदन्ती' है कि—

गीदडीके किसी बच्चेको बचपनसे ही किसी सिंहनीने पाला था। वह भी बड़ा होकर उस सिंहनीके बच्चोंमे ही खेला करता था। एक दिन सब बच्चे खेलते खेलते किसी जंगलमे जा निकले, उन्होंने वहा हाथिओंके समूहको देखकर सिंहनीके बच्चे तो हाथियों पर आक्रमण करनेके लिये तैयार हो गये लेकिन वह हाथिओं को देख कर भागने लगा, क्योंकि उसमें अपने कुलके भीरुत्वका सस्कार था, तब वे सिंहोंके बच्चे अपने बड़े भाईको भागता देखकर वे भी वापस लौट पड़े, और मातांके पास आकर यह शिकायत की कि उसने हमको हाथीके शिकार करने से रोका है। तब सिंहनीने उस शृगाल पुत्रको एकातमे ले जाकर इस आशयका एक श्लोक कहा कि हे वत्स। अब तू यहासे भाग जा नहीं तो तेरी जान न बचेगी। श्लोक—

शूरोऽसि कृतविद्योऽसि, दर्शनीयोऽसि पुत्रक।
यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते ॥१॥

अर्थात् हे पुत्र ! तू शूर है विद्यावान रूपवान् है, परन्तु जिस कुलमे तू पैदा हुआ है उस कुलमें हाथी नहीं मारे जाते—भावार्थ यह है कि—कुल और जातिका चरित्र संस्कार अवश्य आ जाता है।

वेदनीय कर्मका कार्य

इन्द्रियोंको अपने रूपादि विषयका अनुभव करना वेदनीय है, जिसमे दुःखरूप अनुभव करना असाता वेदनीय है तथा सुखरूप अनुभव करना साता वेदनीय है। उस सुख दुःखका ज्ञान या अनुभव करानेवाला वेदनीय ही है।

आवरण कर्म

संसारी जीव पदार्थको देखकर फिर जानता है, तदनन्त सात भंगवाले नयोंसे वस्तुका निश्चय कर श्रद्धान करता है, यों क्रमसे दर्शन, ज्ञान और सम्यक्त्व ये तीनो जीवके गुण हैं, और देखना, जानना और श्रद्धान करना ही सम्यक्त्व है, इसके अतिरिक्त सब गुणोंमे ज्ञान गुण सबसे अधिक पूज्य है, 'क्योंकि व्याकरणके मतमें भी नियमानुसार पूज्यको प्रथम कहा जाता है'। उसके बाद दर्शन कहा है, पुन. सम्यक्त्व बताया है, और अन्तमे वीर्यका नाम लिया है। क्योंकि वीर्य शक्ति रूप है, और वह शक्तिरूपमे जीव और अजीव इन दोनोंमे ही पाया जाता है, जीवमे ज्ञानादि शक्तिरूप वीर्य है और अजीव यानी पुद्गलमे शरीरादि शक्तिरूप है अत वह सबके पीछे कहा गया है, इसी प्रकार इनके गुणोपर आवरण करनेवाले कर्म

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्म क्रमश है।

अन्तराय कर्म घातिक है यह अघातिकके अन्तमें क्यों ?

अन्तराय कर्म घातिया है तथापि अघातिया कर्मोंकी तरह जीवके समस्त गुणोंका घात करने मे सामर्थ्य नहीं रखता, और नाम, गोत्र, वेदनीय इन तीनो कर्मोंके निमित्तसे ही यह अपना कार्य करता है अत. इसे अघातियाओंके अन्तमे कहा है।

अन्य कर्मोंका क्रम

आयुकर्मकी सहायतासे नामकर्मका कार्य चारगतिरूप शरीरकी स्थितिमे रहता है इसलिये आयुकर्मको प्रथम कहकर फिर नामकर्म कहा गया है। शरीरके आधारसे ही नीचता और उत्कृष्टताकी कल्पना होती है इस कारण नामकर्मको गोत्रकर्मसे प्रथम कहा गया है।

अघातिक वेदनीयको-घातिकोंके वीचमें क्यों पढ़ा ?

वेदनीय कर्म घातिया कर्मोंकी सदृश मोहनीय कर्मके भेद जो राग, द्वेप है उनके उदयबलसे ही जीवोका घात करता है, अर्थात् इन्द्रियोंके रूपादि विपयोमे रति (प्रीति) अरति (द्वेप) होनेसे जीवको सुख तथा दु.ख स्वरूप साता और असाताका अनुभव

कराकर अपने ज्ञानादि गुणोंमे उपयोग नहीं लगने देता, तथा परस्वरूपमे लीन कराता है। इस कारण घातियाकी तरह होनेसे घातियाओं के बीचमे तथा मोहनीय कर्मके पहले वेदनीय कर्मका पाठ किया गया है। क्योंकि जब तक राग, द्वेष रहते हैं तब तक यह जीव किसीको बुरा और किसीको अच्छा समझता है। एक वस्तु किसीको बुरी मालूम पडती है तो वही वस्तु किसीको अच्छी भी। जैसे कटुकरस युक्त नीमके पत्ते मनुष्यको अप्रिय लगते है, मगर वही पत्ते ऊंट और बकरीको प्रिय हैं। वस्तुत वस्तु कुछ अच्छी या बुरी नहीं है। यदि वस्तु ही अच्छी या बुरी होती तो दोनोंको समान मालूम पड़ती। अत यह सिद्ध हुआ कि—मोह-नीयकर्म रूप रागद्वेषके होनेसे ही इन्द्रियोंसे उत्पन्न सुख तथा दु खका अनुभव करता है। मोहनीयकर्मके विना वेदनीयकर्म "राजाके विना निर्बलकी तरह कुछ नहीं कर सकता"।

इनका पाठ क्रम

१—ज्ञानावरणीय, २—दर्शनावरणीय, ३—वेदनीय, ४—मोह-नीय, ५—आयुष्य, ६—नाम, ७—गोत्र, ८—अन्तराय।

इन कर्मोंके स्वभाव पर उदाहरण

१—ज्ञानावरणीय—यह ज्ञानको ढापता है, इसका स्वभाव किसी के मुख पर ढके वस्त्रके समान है, किसीके मु ह पर ढंका हुआ कपडा मनुष्यके विशेष ज्ञानको नहीं होने देता इसी तरह ज्ञानावरण कर्म ज्ञानका आच्छादन करता है, विशेषज्ञान नहीं होने देता।

२—दर्शनावरणीय कर्म—यह दर्शनका आवरण करता है, वस्तुको प्रगटतया दिखने नहीं देता, इसका स्वभाव दरवानके समान है। क्योंकि यदि कोई राजाको देखने जाता है तब दरवान् राजाको न देखने देकर बाहरसे ही रोक देता है, ऐसे ही दर्शनावरण कर्म भी वस्तुका दर्शन नहीं होने देता।

३—वेदनीय कर्म - यह सुखदुःखका वेदन अर्थात् अनुभव कराता है, इसका स्वभाव मधुसे सनी हुई तलवारकी धारके समान है, जिसे पहले चखनेसे कुछ मिष्टताका सुख और फिर जीभके दो टुकड़े होनेसे अत्यन्त दुःख होता है, इसी प्रकार साता और असातासे उत्पन्न सुखदुःख है।

४—मोहनीय कर्म—इसका स्वभाव मदिरा आदि नशा करने वाली वस्तुओंके समान है जैसे मद्य पीनेसे जीवको अचेतना या असावधानी आ जाती है, उसे अपने और परायेका कुछ भी ज्ञान और विचार नहीं रहता, इसी तरह मोहनीयकर्म आत्माको बेसुरत-बेभान बना देता है। उसे अपने स्वरूपका विचार नहीं रहता।

५—आयुष्यकर्म—जो 'एति' अर्थात् पर्यायको धारण करनेके निमित्त शक्ति प्राप्त हो वह आयुकर्म है, इसका स्वभाव लोहेकी सकल, जेलखाना या काठके यन्त्रके समान है जैसे संकल, जेलखाना, या काठयन्त्र पुरुषको अपने स्थानमे ही स्थित रखता है किसी अन्य स्थानपर नहीं जाने देता, उसी प्रकार आयुकर्म भी मनुष्यादि पर्याय में स्थित रखता है, किसी अन्य पर्यायमें नहीं जाने देता।

६—नामकर्म—अनेक प्रकारसे 'मिनोति' अर्थात् कार्य बनवाता

है, चित्रकारकी तरह चित्रोंको नाना भाति रंगकर तैयार करता है उसी प्रकार नामकर्म नरक-पशु आदि अनेक रूप धारण कराता है।

७—गोत्रकर्म—जो कि 'गमयति' या 'गूयते' यानी ऊंच-नीच पन प्राप्त कराता है, इसका स्वभाव कुम्हारकी तरह है, जिस प्रकार कुम्हार मिट्टीके छोटे बड़े वर्तन बनाता है। कोई घृतकुम्भ कहलाता है तो कोई विष्टापात्र, इसी तरह गोत्रकर्म भी ऊंच नीच अवस्था कराता है।

८—अन्तराय कर्म—जो 'अन्तर एति' दाता और पात्रमे परस्पर अन्तर प्राप्त कराता है, इसका स्वभाव भण्डारीके समान है जैसे भण्डारी दूसरेको दान देनेमे विघ्न करता है देनेसे हाथ रोकता है, इसी प्रकार अन्तरायकर्म दान-लाभादिमे विघ्न करता है। इस प्रकार इन आठ कर्मोकी मूल प्रकृतिया जानना चाहिये, और इनकी उत्तर प्रकृतिएँ १४८ है। इन प्रकृतिओंका और आत्माका दूध-पानीकी तरह आपसमे एक रूप होना ही बध कहलाता है। जैसे पात्रमे रक्खे हुए अनेक तरहके रस बीज, फूल, फल सब मिलकर शरावके भावको प्राप्त होते है उसी प्रकार कर्मरूप होने योग्य कार्मण-वर्गणानामके पुद्गल द्रव्य योग और क्रोधादिकपायके निमित्त कारणसे कर्मभावको प्राप्त होते है तब ही कर्मत्वकी सामर्थ्य प्रगट होती है, और जीवके द्वारा एक समयमे होने वाले अपने एक ही परिणामसे ग्रहण (सबध) किये गये कर्मयोग्य पुद्गल, ज्ञानावरणादि अनेक भेद रूप हो जाते है, और उन उन रूपोमे परिणमते है। जिस प्रकार एक बारका खाया हुआ एक अन्नका ग्रास भी रस, रुधिर, मास आदि

अनेक धातुरूप अवस्थाओंमे परिणमता है इसी प्रकार ये कर्म भी आत्मामे बंध कर अनेक अवस्थाओमे परिणमते हैं। ये जिन २ अवस्थाओंमे आत्माको डालते हैं वही कर्मका कार्य है, क्योंकि कर्मोंके निमित्तसे ही जीवकी अनेक दशाएँ होती हैं। इस कारण सब प्रकृतिओंका स्वरूप जानना अत्यावश्यक है।

आठ कर्मके १५८ उत्तर भेद

(१) ज्ञानावरणके ५ भेद—१—मतिज्ञानावरणीय, २—श्रुत-ज्ञानावरणीय, ३—अवधिज्ञानावरणीय, ४—मन पर्यवज्ञानावरणीय, ५—केवलज्ञानावरणीय।

(२) दर्शनावरणीयकर्मके ९ भेद—१—चक्षुदर्शनावरणीय, २—अचक्षुदर्शनावरणीय, ३—अवधिदर्शनावरणीय ४—केवलदर्शना-वरणीय, ५—निद्रा, ६—निद्रानिद्रा, ७—प्रचला, ८—प्रचला प्रचला, ९—स्त्यानर्द्धि।

(३) वेदनीय कर्मके दो भेद—१—साता वेदनीय, २—असाता-वेदनीय।

(४) मोहनीय कर्मके २८ भेद—१—सम्यक्त्वमोहनीय, २—मिश्रमोहनीय, ३—मिथ्यात्वमोहनीय, ४—अनन्तानुबंधी क्रोध, ५—अनन्तानुबन्धी मान, ६—अनन्तानुबन्धी माया, ७—अनन्ता-नुबन्धी लोभ, ८—अप्रत्याख्यानी क्रोध, ९—अप्रत्यख्यानी मान, १०—अप्रत्याख्यानी माया ११—अप्रत्याख्यानी लोभ, १२—प्रत्या-ख्यानी क्रोध, १३—प्रत्याख्यानी मान, १४—प्रत्याख्यानी माया,

१५—प्रत्याख्यानी लोभ, १६—सञ्ज्वलनका क्रोध १७—सञ्ज्वलनका मान, १८—सञ्ज्वलनका माया, १६—सञ्ज्वलनका लोभ, २०—हास्य-मोहनीय, २१—रतिमोहनीय, २२—अरति मोहनीय, २३—शोक मोहनीय, २४—भय मोहनीय, जुगुप्सा मोहनीय, २६—स्त्रीवेद, २७—पुरुषवेद, २८—नपुसकवेद।

(५) आयुष्यकर्मके ४ भेद—१—देवायु, २—मनुष्यायु, ३—तिर्यक् आयु, ४—नरकायु।

(६) नाम कर्मके १०३ भेद—१—देवगति, २—मनुष्यगति, ३—तिर्यक्गति, ४—नरकगति, ५—एकेन्द्रिय जाति, ६—द्वीन्द्रिय जाति, ७—त्रीन्द्रिय जाति, ८—चतुरिन्द्रिय जाति, ६—पंचेन्द्रिय जाति, १०—औदारिक शरीर, ११—वैक्रिय शरीर, १२—आहारक शरीर, १३—तैजस शरीर, १४—कार्मण शरीर, १५—औदारिक अगोपाग, १६—वैक्रिय अगोपाग, १७—आहारक अगोपाग, १८ औदारिक वंधन, १६—वैक्रिय वधन, २०—आहारक वधन, २१—तैजस वधन, २२—कार्मण वधन, २३—औदारिक तैजस वधन, २४—वैक्रिय तैजसवधन २५—आहारक तैजस वधन, २६—औदारिक कार्मण वंधन, २७—वैक्रियकार्मण वधन, २८—आहारक कार्मण वधन, २६—औदारिक तैजस कार्मण वधन, ३०—वैक्रिय तैजस कार्मण वधन, ३१—आहारक तैजस कार्मण वधन, ३२—तैजस कार्मण वधन, ३३—औदारिक सघातन ३४—वैक्रिय सघातन, ३५—आहारक संघातन, ३६—तैजस सघातन, ३७—कार्मण सघातन, ३८—वज्रऋषभनाराचसहनन ३६—ऋषभनाराच सहनन, ४०—नाराच संहनन, ४१—अर्धनाराच

संहनन, ४२—कीलिका संहनन, ४३—असम्प्राप्तसृपाटिका संहनन, ४४—समचतुरस्र संस्थान, ४५—न्यग्रोध संस्थान, ४६—सादि संस्थान, ४७—कुब्ज संस्थान, ४८—वामन संस्थान, ४९—हुंड संस्थान, ५०—कृष्ण वर्ण, ५१—नील वर्ण, ५२—रक्त वर्ण, ५३—पीत वर्ण, ५४—श्वेत वर्ण, ५५—सुरभिगन्ध, ५६—दुरभिगन्ध, ५७—तिक्त रस, ५८—कटुक रस, ५९—कषाय रस, ६०—आम्ल रस, ६१—मधुर रस, ६२—गुरु स्पर्श, ६३—लघु स्पर्श, ६४—मृदु स्पर्श, ६५—खर स्पर्श, ६६—शीत स्पर्श, ६७—उष्ण स्पर्श, ६८—स्निग्ध स्पर्श, ६९—रूक्ष स्पर्श, ७०—देवानुपूर्वी, ७१—मनुष्यानुपूर्वी, ७२—तिर्यंचानुपूर्वी, ७३—नरकानुपूर्वी, ७४—शुभविहायोगति, ७५—अशुभविहायोगति, ७६—पराघात नामकर्म, ७७—श्वासोच्छ्वास नामकर्म ७८—आतप नामकर्म, ७९—उद्योत्त नामकर्म, ८०—अगुरुलघु नामकर्म, ८१—तीर्थंकर नामकर्म, ८२—निर्माण नामकर्म, ८३—उपघात नामकर्म, ८४—त्रस नामकर्म, ८५—बादर नामकर्म, ८६—पर्याप्त नामकर्म, ८७—प्रत्येक नामकर्म, ८८—स्थिर नामकर्म, ८९—शुभ नामकर्म, ९०—सौभाग्य नामकर्म, ९१—सुस्वर नामकर्म, ९२—आदेय नामकर्म, ९३—यशःकीर्ति नामकर्म ९४—स्थावर नामकर्म, ९५—सूक्ष्म नामकर्म, ९६-अपर्याप्त नामकर्म ९७—साधारण नामकर्म, ९८—अस्थिर नामकर्म, ९९—अशुभ नामकर्म, १००—दुर्भाग्य नामकर्म, १०१—दुःस्वर नामकर्म, १०२—अनादेय नामकर्म, १०३—अपयश नामकर्म।

(७) गोत्रकर्मके २ भेद—१—उच्चगोत्र, २—नीचगोत्र।

(८) अन्तराय कर्मके ५ भेद— १—दानान्तराय, २—लाभान्तराय, ३—भोगान्तराय, ४—उपभोगान्तराय, ५—वीर्यान्तराय।

उपरोक्त प्रमाणसे प्रकृतियोंका सक्षेप—५ ज्ञानावरणीयकी प्रकृति हैं, ६ दर्शनावरणीयकी प्रकृति है, २ वेदनीयकी हैं, २८ मोहनीयकी होती हैं, ४ आयुष्यकी है, १०३ नामकर्मकी हैं, २ गोत्रकर्मकी है, ५ अन्तरायकर्मकी है।

ये सव मिलकर १५८ प्रकृतिएं है।

सत्तामें

सत्तामे भी उक्त कथित १५८ प्रकृतिएं ही होती हैं, कहीं १० बंधनको छोड़कर पाच शरीरके पाच ही वधन गिननेपर १४८ भी होती है।

उदयमें

१५ वधन, ५ संघातन, तथा वर्णादि १६, इन ३६ प्रकृतिओंको छोडकर बाकीकी १२२ प्रकृतिएं गणनामे आती हैं। क्योंकि वधन तथा सघातनको शरीरके साथमे रक्खा गया है और वर्णादि २० के वदलेमे सामान्यतया वर्ण, गन्ध रस, स्पर्श ये चार भेद गिनतीमें आ जाते हैं।

उदीरणामें भी उपरोक्त १२२ प्रकृतिए ही समाविष्ट हैं।

बंधमें

ऊपर कही गई १२२ प्रकृतियोमेंसे सम्यक्त्व मोहनी और मिश्र

मोहिनीके अतिरिक्त १२० प्रकृतिएं गिनी गई हैं। क्योंकि सम्यक्त्व मोहिनी और मिश्र मोहिनी, ये दो प्रकृतिएँ बंधमे नहीं होतीं। कारण ये तो मिथ्यात्व मोहिनीके अर्धविशुद्ध तथा विशुद्ध किये हुए दलिक है। अत इन्हे बंधनमें नहीं गिना जाता। ये दोनों प्रकृतिएँ अनादि मिथ्यात्वीके लिये उदयमे भी नहीं होतीं।

(१) गुणस्थानपर बंध विचार

सामान्य बंध १२० प्रकृतियोंका समझा जाता है। वर्ण १६, बंधन १५, सघातन ५, सम्यक्त्व मोहिनी १, मिश्र मोहिनी २, इन ३८ के विना।

१—मिथ्यात्व गुणस्थानमें—११७ प्रकृतियोंका बध होता है। तीर्थंकरनाम १, आहारक शरीर २, आहारक अंगोपाग ३ इन तीन प्रकृतियोंके अतिरिक्त।

२—सासादान गुणस्थानमें—१०१ प्रकृतियोंका बध होता है। नरक त्रिक ३, जाति चतुष्क ४, स्थावर चतुष्क ४, हुंडक १, आतप १, छेवट्ट सहनन १, नपुसक वेद १, मिथ्यात्व मोहिनी १, इन १६ प्रकृतियोंको छोडकर।

३—मिश्र गुणस्थानमे—७४ प्रकृतियोंका बध होता है। तिर्यंच त्रिक ३, स्त्यानर्द्धि त्रिक ३, दुर्भग त्रिक ३, अनन्तानुबन्धी ४, मध्य-संस्थान ४, मध्य सहनन ४, नीच गोत्र १, उद्योतनामकर्म १, अशुभ विहायोगति १, स्त्री वेद १, इन २५ के विना तथा २ आयुष्य (अबंधक होनेके कारण) सब २७ के विना।

४–अविरति गुणस्थानमे—७७ प्रकृतियोंका बंध होता है। आयुष्य २, तीर्थंकर नामकर्म १, इन तीन प्रकृतियोंके और मिलानेसे ७७ प्रकृति होती है। ये ३+७४ में मिलाई जायेंगी।

५—देशविरति गुणस्थानमे--६७ प्रकृतियोका बन्ध होता है। वज्रऋषभनाराच सहनन १, मनुष्यत्रिक ३, अप्रत्याख्यान चतुष्क ४, औदारिकद्विक ३, इन प्रकृतियोंको छोडकर।

६--प्रमत्त गुणस्थानमे- ६३ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। प्रत्याख्यान चतुष्क ४ को छोडकर।

७--अप्रमत्त गुणस्थानमे--५९ अथवा ५८ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। शोक १, अरति २, अस्थिर १, अशुभ १, अयश १, असाता १, इन ६ को निकालनेसे ५७ प्रकृति रहती हैं, जिसमे आहारकद्विक २ का बन्ध यहा ही होता है अत इन दो के मिलानेसे ५९ हो जाती हैं। जिसमेसे भी देवायु १, निकलनेपर ५८ रह जाती है। क्योंकि यहा किसीका देवायु बन्ध होता है और किसीका नहीं होता, छठवेंसे बाधता बाधता यहा आ जाय तो उसे होता है, परन्तु यहा आरम्भ तो नहीं करता।

८--निवृत्ति गुण स्थानमे--इसके ७ भाग हैं जिसके पहले भागमे ५८ उपरोक्त प्रकृतिए हैं, द्वितीय भागमे निद्राद्विकको छोड कर ५६ प्रकृतिए, तृतीय भागमें भी ५६, चौथे भागमे ५६, पान्चवेमे ५६, छठवेंमे ५६ और सातवें भागमे सुरद्विक २ पचेन्द्रियजाति १, शुभविहायोगति १ त्रसनवक ९, औदारिकको छोडकर शरीर चतुष्क ४, अंगोपागद्विक २, समचतुरस्र सस्थान १, निर्माणनाम १,

जिननाम कर्म १ वर्णादि चतुष्क ४ अगुरुलघु चतुष्क ४, इन ३० के विना २६ प्रकृतिका वन्ध होता है।

९--अनिवृति गुणस्थान--इसके पाच भाग है, जिसके प्रथम भागमे उपरोक्त २६ प्रकृतिथोंमेसे हास्य १, रति १, दुगंछा १, और भय १, इन चार प्रकृतियोंको निकालनेपर २२ रहती है। दूसरे भागमे पुरुष वेद निकालनेसे २१ रहती है। तीसरे भागमे सज्वलनका क्रोध निकालनेपर २० रहती है। चौथे भागमे मान कपायके जानेपर १९, और पाचवें भागमे मायाके जानेपर १८।

१०—सूक्ष्मसम्परायगुण स्थानमे—ऊपरकी १८ प्रकृतियोंमे से सज्वलन लोभ जानेपर १७ प्रकृतियोका वंध रहता है।

११—उपशान्तमोहगुण स्थानमें—ऊपरकी १७ प्रकृतियोंमे से दर्शनावरणीय ४, उच्चगोत्र १, यश नामकर्म १, ज्ञानावरणीय ५, इन १६ प्रकृतियोंके निकालनेपर मात्र एक सातावेदनी प्रकृतिका ही वध रहता है।

१२—क्षीणमोहगुण स्थानमे—सातावेदनीका ही वध होता है।

१३—सयोगी केवलीगुण स्थानमे--साता वेदनीका ही वध होता है।

१४ - अयोगी केवली गुणस्थानमे—यहा किसी प्रकृतिका वध नहीं होता है। यह गुणस्थान अवन्धक है।

(२) गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंके उदयका विचार

ओघनया १२२ (पहले वताई गई १२० मे सम्यक्त्व मोहिनी इन दोनोंके मिलनेसे) का उदय है।

१—मिथ्यात्वगुणस्थानमे-मिश्र मोहिनी १, सम्यक्त्व मोहिनी १, आहारकद्विक २, जिननाम कर्म १, इन ५ प्रकृतियोंके अतिरिक्त ११७ प्रकृतियोंका उदय रहता है।

२–सासादान गुणस्थानमे–१११ प्रकृतियोंका उदय होता है। सूक्ष्म १, अपर्याप्त १, साधारण १, आतप १, मिथ्यात्व १, इन पाचो के विना तथा नरकानुपूर्वीका अनुदय होनेसे कुल छ प्रकृतियोंके विना १११ प्रकृतियोका उदय।

३–मिश्रगुणस्थानमे—उपरकी १११ मे से अनतानुबन्धी ४, स्थावर १,ऐकेन्द्रिय १, तथा विकलेन्द्रि ३, इन नव प्रकृतियोंका अन्त होता है, तथा तीन आनुपूर्वीका अनुदय होनेसे सब १२ प्रकृतियें छोडकर ९९ प्रकृतियोका उदय रहता है। और मिश्रमोहिनी मिलनेसे १०० प्रकृत्रियोंका उदय होता है।

४–अविरति गुणस्थानमे —१०४ प्रकृतियोंका उदय होता है। कारण ऊपरकी १०० प्रकृतियोंमे समकित मोहिनी १, तथा आनुपूर्वी चतुष्क ४, इन पाच प्रकृतियोके मिलनेसे और मिश्रमोहिनीके उदय-का विच्छेद होनेसे बाक़ीकी चार प्रकृतियें मिलनेसे १०४ होती है।

५–देशविरति गुणस्थानमे–८७ प्रकृतिका उदय होता है। अप्रत्याख्यानी ४, मनुष्यानुपूर्वी १, तिर्यगानुपूर्वी १, वैक्रियाष्टक ८, दुर्भाग्य १, अनादेय १, अयश १, इन १७ प्रकृतियोको छोडकर।

६—प्रमत्त गुण स्थानमे–८१ प्रकृतियोका उदय होता है। तिर्यगति १, तिर्यगायु १, नीचगोत्र १, उद्योत १, प्रत्याख्यानी ४, इन आठोके विना तथा आहारकद्विक मिलने पर।

७—अप्रमत्त गुण स्थानमे–७६ प्रकृतियोंका उदय होता है, स्त्यानर्द्धित्रिक ३, आहारकद्विक २, इन पाचोंके विना।

८—निवृत्ति गुण स्थानमे—७२ प्रकृतिका उदय है। सम्यक्त्वमोहिनी १, अन्तिम सहनन ३ इन चारोंके विना।

९—अनिवृत्ति गुणस्थानमे—६६ का उदय है, हास्यादिक ६ के विना।

१०—सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थानमे—६० का उदय है। वेद ३, सज्वलन क्रोध १ मान २ माया २, इन ६ के विना।

११—उपशान्त मोह गुण स्थानमे—५९ का उदय है। संज्वलनके लोभके विना।

१२—क्षीणमोह गुण स्थानमे–पहले भागमे ऋषभनाराच सहनन १ नाराच १, इन दो के विना ५७, तथा अन्तिम भागमे निद्राद्विकको छोडनेसे अन्तिम समयमे ५५ का उदय है।

१३ - सयोगी गुण स्थानमे—४२ का उदय है, ज्ञानावरणीय ५, अन्तराय ५, दर्शनावरणीय ४, इन १४ के विना तथा तीर्थंकर नामकर्मके मिलानेसे सब १३ प्रकृतिया शेष करनेपर ४२ रहती है (यहा तीर्थंकर नामकर्मका उदय रहता है)।

१४ - अयोगी गुण स्थानमे -१२ प्रकृतियोंका उदय अन्तिम समयतक रहता है। क्योंकि ऊपरकी ४२ प्रकृतिमेसे औदारिकद्विक २, अस्थिर १, अशुभ १ शुभविहायोगति १, अशुभविहायोगति १, प्रत्येक १ स्थिर १, शुभ १, सस्थान ६ अगुरुलघु १, उपघात १, पराघात १, श्वासोच्छ्वास १, वर्ण १, गन्ध १, रस १ स्पर्श १, निर्माण १,

तैजस १, पराघात १, कार्मण १, वज्रऋषभनाराच १, दु स्वर १, सुस्वर, साता या असातामेसे १, इन ३० प्रकृतियोंका उदय विच्छेद १३ वेंके अन्तमे ही हो जाता है, और १४ वें गुण स्थानके अन्तिम समयमे सुभग १, आदेय १, यश १, साता असातामेसे १, त्रस १, बादर १, पर्याप्त १, पंचेन्द्रिय जाति १, मनुष्यगति १, मनुष्यायु १, जिन नाम १, उच्चगोत्र १, इन १२ प्रकृतियोंके उदयका विच्छेद करता है।

(३) गुणस्थानमें उदीरणा विचार

पहले गुणस्थानसे छठवें अर्थात् प्रमत्त गुणस्थान तक उदयकी भाति ही उदीरणाको भी जानना चाहिये। अप्रमत्त गुणस्थानसे तीन तीन प्रकृतिएं कम करते जाय अर्थात् उदयमे प्रमत्त गुणस्थानमे स्त्यानर्द्धित्रिक ३, और आहारकद्विक २, इन पाच प्रकृतियोका विच्छेद होता है। परन्तु उदीरणामे वेदनीय द्विक २, और मनुष्यायु १, इन तीन प्रकृति सहित आठ प्रकृतिओंका विच्छेद होनेसे अप्रमत्तादि गुणस्थानमे तीन-तीन प्रकृति उदय करते हुए उदीरणामे कम गिननी चाहिये, जिससे अप्रमत्तमे ७३, निवृत्तिमे ६६, अनिवृत्तिमे ६३, सूक्ष्मसम्परायमे ५७ उपशान्तमोहमे ५६ क्षीणमोहमे ५४, और सयोगीमे ३६, और अयोगी गुणस्थानमे वर्तते समय उदीरणा नहीं होती।

(४) गुणस्थानमें सत्ताविचार

समुच्चयतया १४८ प्रकृतिए होती है (१५८ मेंसे बन्धन १५ बता आये है, उन्हे पाच गिननेसे १४८ प्रकृतिए होती है)।

१--मिथ्यात्व गुणस्थानमे--१४८ की सत्ता है।

२--सास्वादान गुणस्थानमे--१४७ की सत्ता है, जिन नामकर्मको छोड़ कर।

३--मिश्र गुणस्थानमे--१४७ की सत्ता है जिन नामकर्मको छोड कर।

४--अविरत्त गुणस्थानमे--१४८ की सत्ता है। अथवा अनन्तानुवन्धी ४, मिथ्यात्व १, मिश्र १, सम्यक्त्व मोहिनी १, इन सातोका अन्त होनेसे १४१ की सत्ता अचरमशरीरी क्षायिक समदृष्टिको उपशमश्रेणीकी अपेक्षा होती है, और क्षपकश्रेणीकी अपेक्षासे नरकायु १, तिर्यक् आयु १ देवायु १, इन तीनोंके विना १४५ की सत्ता रहती है, और उसमेसे सप्तक यानी सात और घटा देने पर १३८ की सत्ता रहती है (ये चारों भग अविरति गुणस्थानसे लगाकर अनिवृत्ति वादर सम्पराय नामक नवें गुणस्थानके प्रथम भाग तक होता है। जो कि इस प्रकार है)।

	ओघसे	क्षपक श्रेणी	उपशम श्रेणी	क्षपक श्रेणीमें सप्तक क्षय	
५-देशविरति गुणस्थानमे	१४८	१४५	१४१	क्षा	१३८
६-प्रमत्त गुणस्थानमे	१४८	१४५	१४१	यक	१३८
७-अप्रमत्त गुणस्थानमे	१४८	१४५	१४१	सम	१३८
८-निवृत्ति गुणस्थानमे	१४८	१४५	१४२*	किती	१३८

*अनन्तानुवधी ४, तिर्यगायु १, नरकायु १, इन ६ के विना १४२ जानना चाहिये।

६—अनिवृत्ति बादर सम्पराय गुणस्थानमे ।

(उपशमश्रेणी)

	स्वभाविक	विसयोजनी	क्षपकश्रेणी
पहले भागमे	१४८	१४२	१३८
दूसरे भागमे	१४८	१४२	१२२*

*स्थावरद्विक २, तिर्यंचद्विक २, नरकद्विक २, आतपद्विक २, स्त्यानर्द्धित्रिक ३ एकेंद्रिय जाति १, विकलेंद्रियत्रिक ३, साधारण १ इन १६ प्रकृतिओंके विना १२२ समझना चाहिये ।

३-तीसरे भागमे १४८, १४२, ११४, दूसरे कषाय ४, तीसरे कषाय ४, इन आठोंके विना ।

४ वें भागमे १४८ १४२ ११३ नपुंसक वेदको छोड कर

५ वें भागमे १४८ १४२ ११२ स्त्री वेदको छोड़ कर ।

६ वें भागमे १४८ १४२ १०६ हास्यादि ६ छोड कर ।

७ वें भागमे १४८ १४२ १०५ पुरुष वेद छोड़ कर ।

८ वें भागमे १४८ १४२ १०४ सज्वलनका क्रोध छोड़कर।

९ वें भागमें १४८ १४२ १०३ संज्वलनके मानको छोड़ कर ।

१०-सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थानमे १४८, १४२, १०२ सज्वलनमाया छोड़नेसे ।

११—उपशान्त मोह गुण स्थानमे—१४८, १४२, १०१ सज्व-लनका लोभ छूटनेसे।

१२—क्षीण मोह गुण स्थानसे—१०१ जिसमेसे द्विचरम समयमे

निद्रा १, निद्रानिद्रा १, ये दो जानेसे ९९ प्रकृति सत्तामे होती है।

१३—सयोगी गुण स्थानमे—८५ की सत्ता होती है, क्योंकि ९९ मे से ज्ञानावरणीय ५, दर्शनावरणीय ४ अन्तराय ५, ये १४ प्रकृति चली जाती है।

१४—अयोगी गुण स्थानमें—अन्तसे पहले (द्विचरम) समयमें ८५ में से वेद २, विहायोगति २, गंध २, स्पर्श २, वर्ण २, रस २, शरीर ५, वधन ५, सघातन ५, निर्माण १, सघयण ६, अस्थिर १, अशुभ १, दुर्भाग १, दु स्वर १, अनादेय १, अयश १, सस्थान ६, अगुरुलघु १, उपघात १, पराघात १, उच्छ्वास १, अपर्याप्त १, साता, असातामें से १, पर्याप्त १, स्थिर १, प्रत्येक १, उपाग ३, सुस्वर १, नीचगोत्र १, इन ७२ प्रकृतियोंका अन्त होता है। तब अयोगी गुण-स्थानके अन्तिम समयमें १३ की सत्ता रहती है। मनुष्यत्रिक ३, त्रसत्रिक ३, यश १, आदेय १, सुभग १, जिननाम १, उच्चगोत्र १, पचेंद्रिय जाती १, साता या असातामें से १, ये १३ अर्थात् नरानुपूर्वी समेत १३ प्रकृतियोंका अन्त होनेसे कर्मकी सत्ताका समग्र नाश होता है। जिसमें यदि नरानुपूर्वी समेत ७३ द्विचरम समयमें चली गई हों तो यहा उसके विना १२ का क्षय होता है। इस प्रकार बन्ध उदय, उदीरणा और सत्ता इन चारोका विचार १४ गुणस्थानके आश्रयसे जानना चाहिये।

६२ मार्गणाओंपर गुणस्थान तथा उदय

६२ मार्गणाओं पर १४ गुणस्थान तथा उदयकी १२२ प्रकृतिका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

(१) नरक गति—गुणस्थान ४, वहा ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अन्तराय ५, मिथ्यात्व १, तैजस १, कार्मण १, वर्णादि ४, अगुरुलघु १, निर्माण १. स्थिर १, अस्थिर १, शुभ १, अशुभ १, ये २७ प्रकृतियें ध्रुवोदयी हैं।

इसमें मिथ्यात्व पहले ही गुण स्थान तक ध्रुवोदयी है। और ५ ज्ञानावरणीय, ४ दर्शनावरणीय, ५ अन्तराय ये १४ प्रकृतियें १२ वें गुण स्थान तक सबको ध्रुवोदयी हैं। शेष १२ प्रकृतियें १२ वें गुण स्थानके अन्ततक सब जीवोंके लिये ध्रुवोदयी है। इसके अतिरिक्त ध्रुवोदयी २७, निद्रा २।५, वेदनीय २ नरकायु १, नीचगोत्र १, नरकद्विक २, पचेन्द्रिय जाति १, वैक्रियद्विक २, हुडक सस्थान १, अशुभ विहायोगति १, पराघात १, उच्छ्वास १, उपघात १ त्रस चतुष्क ४, दुर्भाग १, दुस्स्वर १, अनादेय १ अयश १, कषाय १६, हास्यादि ६, नपुसकवेद १, सम्यक्त्व मोहिनी १, मिश्र मोहिनी १ एव ७६।७९ प्रकृतियें ओघसे नारकको उदय रहती हैं। यहा स्त्यानर्द्धित्रिकका उदय नहीं होता। क्योकि कहा भी है कि-

'निद्दानिद्दाइणत्ति असंखवासाय मणुआ तिरियाय वेउव्वाहारगतणू वज्जित्ता अप्पमत्तेय ॥१॥

अस्यार्थ.—असख्यवर्षके आयुष्ययुक्त नर, तिर्यंच (युगलिया) । वैक्रिय शरीर आहारक शरीर, तथा अप्रमत्त साधु, इत्यादिको छोडकर शेष सब जीवोंमे स्त्यानर्द्धित्रिककी उदीरणा होती है।

इस कथनके अनुसार नारक और देव वैक्रिय होनेके कारण उनमें स्त्यनार्द्धित्रिकका उदय अघटित है जिनमें इसको वर्ज्य कहा है।

भवधारणीय वैक्रिय शरीरकी अपेक्षा स्त्यानर्द्धित्रिकका उदय होता है और उत्तर वैक्रिय करते समय स्त्यानर्द्धित्रिकका उदय नहीं होता है। और नरक तथा देवमें उत्तर वैकिय भी होता है।

उस ७६।७९ के ओघमें से सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन दो को छोड़कर मिथ्यात्वमें ७४।७७ उसमेंसे नरकानुपूर्वी १, मिथ्यात्व इन दो के विना सासादानमें ७२।७५।

उसमें से अनन्तानुवन्धी ४ के विना और मिश्रयुक्त करने पर मिश्र गुण स्थानमे ६९।७२ उसमे नरकानुपूर्वी मिलानेसे अविरतमे ७०।७३ होती है।

(२) तिर्यंचगतिमे–देवत्रिक ३, नरकत्रिक ३ वैक्रियद्विक २ आहारकद्विक २ मनुष्यत्रिक ३ उच्चगोत्र १ जिननाम १ इन १५ के विना ओघसे १०७ तथा वैक्रियद्विक सहित गिननेपर १०९ होती है।

जिसमेसे सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन दो के विना मिथ्यात्वमें १०५।१०७।

उसमेंसे सूक्ष्म १ अपर्याप्त १ साधारण १ आतप १ मिथ्यात्व १, इन ५ के विना सासादान' में १००।१०२ होती है।

अनन्तानुवन्धी ४, स्थावर १, एकेन्द्रियादि जाति ४ तिर्यंचानुपूर्वी १ इन १० के विना और मिश्रयुक्त करनेपर मिश्र गुणस्थानमे' ९१।९३।

मिश्रको निकालनेमे तथा सम्यक्त्व १, और तिर्यंचानुपूर्वी १, इन दो के मिलनेमे अविरति' मे ९२।९४।

अप्रत्याख्यानीकी ४, दुर्भग १ 'अनादेय' १, अयश १, तिर्यंचा-

नुपूर्व्वी १, इन आठोंके विना देशविरतिमे ८४।८६। यहा गुण प्रत्ययिक वैक्रियकी विवक्षा यदि न करें तो प्रत्येक गुणस्थानमे दो दो कम गिन सकते है।

(३) मनुष्यगति—गुणस्थान १४। वक्रियाष्टक ८, जाति ४, तिर्यंचत्रिक ३, उद्योत १, स्थावर १, सूक्ष्म १, साधारण १, आतप १, इन २० के विना ओघसे १०२ और वैक्रियद्विक गिनें तो १०४।

आहारद्विक २, जिननाम १, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन पाचके विना 'मिथ्यात्वमे' ६७।६६। अपर्याप्त १, मिथ्यात्व १, इन दो के विना 'सासादानमे' ६५।६७।

अनन्तानुबन्धी ४ मनुष्यानुपूर्व्वी १, इन ५ के विना और मिश्र मिलानेसे 'मिश्र' मे ६१।६३। मिश्रको अलग करनेसे सम्यक्त्व १, मनुष्यानुपूर्वी १, इन दो के मिलानेपर 'अविरतिमे' ६२।६४।

अप्रत्याख्यानी ४ मनुष्यानुपूर्वी १, दुर्भग १, अनादेय १, अयश १ इन आठोंके विना देशविरति' मे ८४।

प्रत्याख्यानी ४, नीच गोत्र १, इन पाचोंको निकालनेपर तथा आहारकद्विक २ मिलानेपर 'प्रमत्त' में ८१ रहती हैं।

स्त्यानर्द्धित्रिक ३ आहारकद्विक २ इन पाचोंके विना अप्रमत्त-मे ७६।

सम्यक्त्वमोहिनी १ अन्तिम सहनन ३ इन चारोके विना 'अपूर्व' मे ७२।

हास्यादिके विना 'अनिवृत्ति' मे ६६।

वेद ३ सज्वलन ३ इन छ के विना सूक्ष्म सम्परायमे ६०।

सज्वलनके लोभके विना उपशान्त मोह' मे ५९ ।

ऋृषभनाराच १, नाराच१, इन दो के विना क्षीण मोह' मे ५७ ।

दो निद्राओंके विना 'क्षीण मोह' के अन्तिम समयमे ५५ ।

ज्ञानावरणीय ५, दर्शनावरणीय ४ अन्तराय ५ इन १४ के विना 'सयोगी' मे ४२ । कारण यहा जिननाम कर्मका उदय होता है ।

औदारिक २, विहायोगति २ अस्थिर १, अशुभ १ प्रत्येक १, स्थिर १, शुभ १, सस्थान ६ अगुरुलघु ४, वर्णादि ४, निर्माण १, तैजस १, कार्मण १, वज्रऋृषभनाराच सहनन १ दु.स्वर १. सुस्वर १, साता असातामेसे १, इन तीसके विना अयोगी गुणस्थानमे १२ रहे ।

सुभग १, आदेय १, यश १ वेदनीय १, त्रस १, बादर १, पर्याप्त १, पचेन्द्रिय जाति १ मनुष्यायु १ मनुष्यगति १, जिन नाम १, उच्च गोत्र १, ये १२ प्रकृतिए अयोगी गुणस्थानके अन्तिम समयमें नष्ट हो जाती हैं ।

(४) देवगतिमें गुणस्थान ४ नरकत्रिक ३ तिर्यंचत्रिक ३ मनुष्य-त्रिक ३ जाति ४ औदारिकद्विक २, आहारकद्विक २ सहनन ६, न्यग्रोधादि सस्थान ५ अशुभ विहायोगति १ आतप १, उद्योत १, जिन नाम १, स्थावर चतुष्क ४ दु.स्वर १, नपुसक वेद १, नीच गोत्र १, एवं ३९ प्रकृतिएं छोडकर ओघसे ८३ प्रकृतिएँ । जब स्त्यानर्द्धित्रिक छोडते हैं तब ८० का उदय होता है ।

जिसमेंसे सम्यक्त्व १ मिश्र १ के विना 'मिथ्यात्व' मे ७८।८१ ।

मिथ्यात्वके विना 'सासादान' में ७७।८० ।

अनन्तानुबन्धी ४, देवानुपूर्वी १, इन पाचके विना मिश्र मिलने पर 'मिश्र गुणस्थान' में ७३।७६ ।

मिश्र रहित करके देवानुपूर्वी १, सम्यक्त्व १, इन दो के मिलानेपर अविरतिमे ७४।७७ ।

(५) एकेंद्रियजाति–गुण स्थान ३, वैक्रियाष्टक ८, मनुष्यत्रिक ३, उच्चगोत्र १, स्त्रीवेद १, पुवेद १, द्वीन्द्रियादि जाति ४, आहारकद्विक २, औदारिक अंगोपाग १, सहनन ६, सस्थान ५, विहायोगति २ जिन-नाम १, त्रस १, दु:स्वर १, सुस्वर १, सम्यक्त्व १, मिश्र १ सुभग १, आदेय १, इन ४२ के विना ओघसे तथा 'मिथ्यात्वमे' ८० और वैक्रिय सहित ८१, । सूक्ष्म त्रिक ३, आतप १ उद्योत २, मिथ्यात्व १, पराघात १. श्वासोच्छ्वास १, इन ८ के विना 'सासादानमे' ७२।७० ।

(६) द्वीन्द्रिय जाति–गुण स्थान २, वैक्रियाष्टक ८, नरकत्रिक ३, उच्चगोत्र १ स्त्रीवेद १, पुवेद १, एकेंद्रिय १, त्रींद्रिय १ चतुरिन्द्रिय १, पंचेन्द्रिय १, आहारकद्विक २ सहनन ५, सस्थान ५ शुभविहायोगति १, जिननाम १ स्थावर १ सूक्ष्म १ साधारण १ आतप १, सुभग १ आदेय १ सम्यक्त्व १ मिश्र १, इन ४० के विना ओघसे और 'मिथ्यात्वमें' ८२ प्रकृतिका उदय होता है।

उसमेसे लब्धि अपर्याप्त १ उद्योत १ मिथ्यात्व १ पराघात १, अशुभ १ विहायोगति १ उच्छ्वास १ सुस्वर-दु:स्वर २ इन ८ के विना सासादनमे ७४ ।

(७-८) त्रींद्रिय तथा चतुरिन्द्रिय—इन दोनों मार्गणाओंको भी

द्वीन्द्रियकी तरह जानना चाहिये। परन्तु द्वीन्द्रियके स्थान पर त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय समझना चाहिये।

(९) पंचेन्द्रिय— गुणस्थान १४—जाति ४, स्थावर १, सूक्ष्म १ साधारण १, आतप १, इन ८ के विना ओघसे ११४। इनमें आहारकद्विक २, जिननाम १, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ५ के विना मिथ्यात्वमे १०९। मिथ्यात्व १, अपर्याप्त १, नरकानुपूर्वी १, इन ३ के विना 'सासादनमें' १०६।

अनन्तानुबंधी ४, आनुपूर्वी ३, इन ७ के विना मिश्र मिलाने पर 'मिश्रमे' १००।

मिश्रको छोडकर आनुपूर्वी ४, सम्यक्त्व १, इनके मिलाने पर 'अविरतिमें' १०४।

अप्रत्याख्यानी ४, वैक्रियाष्टक ८ नरकानुपूर्वी १, तिर्यंचानुपूर्वी १, दुर्भग १, अनादेय१,अयश १, इन १७ के विना देशविरतिमे ८७, छठवे गुणस्थानसे मनुष्यगतिकी तरह ८१, ७६, ७२, ६६, ६०, ५९, ५७, ४२, १२, इस क्रमसे जानना चाहिये।

(१०) पृथ्वीकायकी मार्गणामे- २ गुणस्थान, साधारण विना ओघसे और मिथ्यात्वमे ७९। सूक्ष्म १, लब्धि अपर्याप्त १, आतप १, उद्योत १, मिथ्यात्व १, पराघात १, श्वासोच्छ्वास १, इन ७ के विना 'सासादनमे' ७२ (यहा करण अपर्याप्तकी अपेक्षासे सासादनत्व जानना चाहिये)।

(११) अप्कायकी मार्गणामे— गुणस्थान २, आतप विना ओघसे

और मिथ्यात्वमें ७८। सूक्ष्म १, अपर्याप्त १, उद्योत १, मिथ्यात्व १, पराघात १, उच्छ्‌वास १, इन ६ के विना 'सासादनमें' ७०।

(१२) तेजस्कायकी मार्गणामें—गुणस्थान १, उद्योत १, यश १, इन २ के विना ओघसे और मिथ्यात्वमें ७६।

(१३) वायुकायकी मार्गणामे—भी उपरोक्त रीतिसे ७६।

(१४) वनस्पतिकायकी मार्गणामे—गुणस्थान २। एकेन्द्रियके समान आतप विना ओघसे तथा 'मिथ्यात्वमे' ७९, और 'सासादनमें' ७२।

(१५) त्रसकायकी मार्गणामें—गुणस्थान १४। स्थावर १, सूक्ष्म १, साधारण १, आतप १, एकेंद्रियजाति १, इन पाचके विना ओघसे ११७।

आहारकद्विक २, जिननाम १, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन पाचोंके विना 'मिथ्यात्वमें' ११२। मिथ्यात्व १, अपर्याप्त १, नरकानुपूर्व्वी १ इन तीनके विना 'सासादनमे' १०९।

अनन्तानुवन्धी ४, विकलेन्द्रिय ३, अनुपूर्वी ३, इन १० के विना और मिश्र मिलाने पर मिश्र गुणस्थानमें १००।

अनुपूर्व्वी ४, सम्यक्त्व १, इन ५ के मिलने पर और मिश्रके हटाने पर 'अविरतिमें' १०४। देशविरति आदि गुणस्थानमें ओघकी भाति ८७, ८१, ७६, ७२, ६६, ६०, ५९, ५७, ४२, १२ आदि जानना चाहिये।

(१६) मनोयोगीमे—गुणस्थान १३ स्थावर चतुष्क ४, जाति ४, आतप १, अनुपूर्वी १, इन १३ के विना ओघमे १०९।

आहारकद्विक २, जिन नाम १, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन पांचों विना 'मिथ्यात्वमें' १०४।

मिथ्यात्व विना 'सासादनमें' १०३।

अनन्तानुबन्धी ४ के विना और मिश्रको मिलानेसे 'मिश्रमें' १००।

मिश्रको छोडकर सम्यक्त्वको मिलानेसे 'अविरतिमें' १००।

अप्रत्याख्यानी ४, वैक्रियद्विक २, देवगति १ देवायु १ नरकगति १, नरकायु १, दुर्भग १, अनादेय १, अयश १, इन १३ के विना देश विरतिमें ८७। इसके पीछेका भाग ओघकी तरह जानना।

(१७) वचनयोगीमें—गुणस्थान १३। स्थावर ४, एकेन्द्रिय १, आतप १, अनुपूर्वी १, इन ४ के विना ओघमें ११०।

आहारकद्विक १, जिन नाम १ सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ५ के विना मिथ्यात्वमें १०७।

मिथ्यात्व १, विकलेन्द्रिय ३, इन चारके विना 'सासादन' में १०३ (वचन योग पर्याप्तको ही होता है अत. वहां सासादन नहीं होता)।

अनन्तानुबन्धी ४ निकालनेपर तथा मिश्रको मिलानेसे 'मिश्रमें' १००।

अविरतिसे लगाकर अन्य गुणस्थानोंमें मनोयोगीकी तरह जानना।

(१८) काययोगीमें गुणस्थान १३। ओघसे १२२, 'मिथ्यात्वमें' ११७, 'सासादनमें १११। इत्यादि ओघकी तरह जानना चाहिये।

(१६) पुरुष वेदीमें—गुणस्थान ६, नरकत्रिक ३, जाति ४, सूक्ष्म १ साधारण १ आतप १, जिन नाम १, स्त्री वेद १, नपुंसक वेद १, इन १४ के विना ओघसे १०८।

आहारकद्विक २, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ४ के विना 'मिथ्यात्वमें' १०४।

मिथ्यात्व १, अपर्याप्त १, इन दो के विना 'सासादनमें' १०२।

अनन्तानुबन्धी ४, अनुपूर्वी ३, इन सातोंको निकालकर मिश्र मिलानेसे मिश्रमे ९६। मिश्रको निकालकर सम्यक्त्व १, अनुपूर्वी ३, इन चारोंको मिलानेसे 'अविरतिमे' ९९।

अनुपूर्वी ३, अप्रत्याख्यानी ४, देवद्विक २, वैक्रियद्विक २, दुर्भग १, अनादेय १, अयश १, इन १४ के विना 'देशविरतिमें ८५।

प्रत्याख्यानी ४, तिर्यंचद्विक २, उद्योत १, नीचगोत्र १, इन ८ को निकालनेसे और आहारकद्विक मिलानेसे 'प्रमत्तमे' ७९।

स्त्यानर्द्धित्रिक ३, आहारकद्विक २ इन ५ के विना 'अप्रमत्तमें' ७४।

सम्यक्त्व मोहिनी १, अन्तिम सहनन ३, इन ४ के विना 'अपूर्वमे' ७०।

हास्यादि त्रिकके विना 'अनिवृत्तिमे' ६४।

(२०) स्त्रीवेदमे—पुरुषवेदीकी तरह ओघ और प्रमत्तमे आहारकद्विकके विना तथा चौथे गुण स्थानपर अनुपूर्वी ३ के विना कथन करना चाहिये। कारण स्त्रीको मार्ग वहन करते समय चतुर्थ गुणस्थान नहीं होता है। स्त्रीको १४ पूर्वका ज्ञान भी न होनेसे आहा-

रद्विक भी नहीं होता। अतः ओघसे तथा ६ गुण स्थानमे १०६, १०४, १०२, ६६-६६, ८५ ७७, ७४, ७०, ६४ इस क्रमसे प्रकृति उदय जानना।

(२१) नपुसक वेदीमे—गुणस्थान ६, देवत्रिक ३, जिननाम १, स्त्रीवेद १, पुवेद १, इन ६ के विना ओघमे ११६।

आहारकद्विक २, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ४ के विना 'मिथ्यात्वमे' ११२।

सूक्ष्मत्रिक ३, आतप १, मिथ्यात्व १, नरकानुपूर्वी १, मनुष्यानुपूर्वी १, इन ७ के विना 'सासादनमे' १०५।

अनन्तानुवन्धी ४, तिर्यंगानुपूर्वी १, स्थावर १, जाति ४, इन १० के विना तथा मिश्रको मिलाकर मिश्र गुणस्थानमे' ९६।

नरकानुपूर्वी १, सम्यक्त्व १, इन दोनोको मिलाकर तथा मिश्रको निकालनेपर 'अविरतिमे' ९७।

अप्रत्याख्यानी ४, नरकत्रिक ३, वैक्रियद्विक २, दुर्भग १, अनादेय १, अयश १, इन १२ के विना 'देशविरतिमे' ८५।

तिर्यंचगति १, तिर्यगायु १, नीचगोत्र १, उद्योत १, प्रत्याख्यानी ४, इन आठोको निकालकर आहारकद्विक मिलनेपर 'प्रमत्तमे ७९।

स्त्यानर्द्धित्रिक ३, आहारद्विक २ इन ५ के विना 'अप्रमत्तमे' ७४।

सम्यक्त्व मोहिनी १ अन्त्य सहनन ३, इन चारके विना 'अपूर्वमे' ७०।

६ हास्यादिकके विना अनिवृत्तिमे ६४।

(२२) क्रोध मार्गणामे—गुणस्थान ६, मान ४, माया ४, लोभ ४, जिननामकर्म १, इन १३ के विना ओघसे १०६।

सम्यक्त्व १, मिश्र १, आहारकद्विक २, इन ४ के विना 'मिथ्यात्व' मे १०५।

सूक्ष्मत्रिक ३, आतप १, मिथ्यात्व १, नरकानुपूर्वी १, इन ६ के विना 'सासादानमे' ९९।

अनन्तानुवन्धी क्रोध १, स्थावर १, जाति ४, आनुपूर्वी ३, इन ९ को निकालकर मिश्रके मिलानेपर 'मिश्रमे' ९१।

मिश्रको छोड़कर सम्यक्त्व १, अनुपूर्वी ४, इन ५ के मिलाने पर 'अविरतिमे' ९५।

अप्रत्याख्यानी क्रोध १, अनुपूर्वी ४, देवगति १, देवायु १, नरक-गति १ नरकायु १, वैक्रियद्विक २, दुर्भग १, अनादेय १, अयश १, इन १४ के विना 'देशविरतिमे' ८१।

तिर्यंचगति १, तिर्यंचायु १, उद्योत १ नीचगोत्र १, प्रत्याख्यानी क्रोध १, इन पाचोको निकालकर तथा आहारकद्विक मिलानेसे 'प्रमत्तमे' ७८।

स्त्यानर्द्धित्रिक ३, आहारकद्विक २, इन ५ के विना 'अप्रमत्तमे' ७३।

सम्यक्त्व मोहिनी १, अन्त्यसहनन ३, इन ४ के विना 'अपूर्वमे' ३९।

हास्यादि ६ के विना 'अनिवृत्तिमे' ६३।

(२३-२४-२५) मान, माया, लोभ, मार्गणामे—भी इसी प्रकार

उदय कहना चाहिये। स्वयं मात्र अन्य १२ कषायके विना समझना चाहिये। लोभ मार्गणामे 'दश गुणस्थानपर' ३ वेद जानेपर ६० ।

(२६-२७) मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान मार्गणामे—गुणस्थान ९ होते है। और वे चतुर्थसे १२ वे तक। स्थावर ४, जाति ४, आतप १, अनन्तानुवन्धी ४ जिननाम १, मिथ्यात्व १, मिश्र १ इन १३ के विना ओघसे १०६।

आहारकद्विकके विना 'अविरतिमे' १०४।

'देशविरत्तिसे' ओघकी तरह ८७, ८१, ७६, ७३, ६६, ६०, ५९ ५७।

(२८) अवधि ज्ञानकी मार्गणामे—भी ऊपरकी रीतिसे जानना चाहिये। मात्र विशेष इतना है कि-तिर्यंचानुपूर्वीके विना ओघसे १०५। तथा प्रज्ञापना सूत्रकी वृत्तिके अज्ञानुसार अवधिज्ञानीको तिर्यंचानुपूर्वी मालूम होती है। उस अपेक्षा १०६।

आहारकद्विकके विना अविरतिमे १०३, १०४ वाकी मतिज्ञानीकी तरह जानना चाहिये। अवधि तथा विभग सहित तिर्यंचमे नहीं जन्मता, अत यह जो लिखा गया है वह वक्र गतिकी अपेक्षासे जानना और ऋजु गतिकी अपेक्षा पशुयोनिमे उत्पन्न होता है।

(२९) मन पर्यवज्ञानकी मार्गणामे—प्रमत्तसे लगाकर गुण स्थान ७ होते है। ओघसे ८१, प्रमत्तादिके ८१, ७६, ७२, ६६, ६०, ५९, ५७।

(३०) केवल ज्ञानीकी मार्गणा—अन्तिम दो गुण स्थान वहां ओघकी तरह ४२।१२।

(३१-३२) मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान—गुण स्थान ३ आहारद्विक २, जिननाम १ सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ५ के विना ओघसे तथा 'मिथ्यात्वमे' ११७। 'सासादन' मे १११, मिश्रमे १००। ओघकी तरह।

(३३) विभंगज्ञानकी मार्गणा—गुणस्थान ३ आहारद्विक २, जिननाम १, सम्यक्त्व १, स्थावर चतुष्क ४, जाति ४, आतप १, नर-तिर्यंचानुपूर्वी २, इन १५ के विना ओघसे १०७ [मनुष्यको तिर्यंचमे उत्पन्न होते समय वाटमें विभंगज्ञान न हो, इस वक्र गतिकी अपेक्षासे कहा है, परन्तु ऋजुगतिकी अपेक्षासे मनुष्यको तिर्यंकमे उपजते समय वाटमे विभंग होता है। पन्नवणामेसे विशेषपद तथा कायस्थिति पदके अनुसार लिखा है। अत: विभगज्ञानमे ओघतया १०६]।

मिश्रके विना 'मिथ्यात्वमे' १०८। दो आनुपूर्वी न गिने तो १०६।

मिथ्यात्व १ नरकानुपूर्वी १, इनके विना 'सासादनमे' १०६।१०४।

अनन्तानुबन्धी ४ देवानुपूर्वी १, इन ५ के विना और मिश्रके मिलने पर मिश्रमे १००।

पक्षमे (अथवा) अनन्तानुबन्धी ४, नर १ तिर्यंच १ देव १, इन ३ की आनुपूर्वी, इन ७ विना तथा मिश्रके मिलनेपर मिश्रमे १००।

(३४-३५) सामायिक तथा छेदोपस्थापनीय—इन दो चारित्रों

मार्गणामे गुणस्थान ४ प्रमत्तसे आरम्भ। वहा ओघकी भाति ८१-७६-७२-६६।

(३६) परिहार विशुद्धि मार्गणा—गुणस्थान २ है। छठवा और सातवा।

यहा ८१ मे से आहारकद्विक २, स्त्रीवेद १, सहनन ५, इन आठोंके विना ओघसे तथा प्रमत्तमे ७३, अथवा संहनन ५ गिन लें तो ७८ (यह १४ पूर्वी नहीं होता अत' आहारकद्विक नहीं है। और स्त्रीवेदी भी नहीं होता, तथा वज्रऋषभ नाराच सहनन भी नहीं होता, अतः ऋषभनाराचादिको छोड दिया गया। किसी २ का मत ५ सहनन गिननेमे सहमत भी है)।

स्त्यानर्द्धित्रिक ३ टलनेपर अप्रमत्तमे ७०।७५।

(३७) सूक्ष्मसम्परायमार्गणा—गुणस्थान १ दशवा पाया जाता है। यहा ६० का उदय ओघकी तरह है।

(३८) यथाख्यात मार्गणामे—गुणस्थान ४ अन्तिम, यहा जिन नाम सहित ओघसे ६०। जिननाम विना उपशान्त मोहमे' ५६। सहनन २ विना क्षीणमोहमे' ५७। निद्राद्विक विना अन्तिम समयमे ५५। सयोगीमे ४२ अयोगीमे १०।

(३९) देशविरतिकी मार्गणामें—गुणस्थान १ पाचवा, वहा ८७ का उदय ओघकी तरह है।

(४०) अविरतिकी मार्गणामें—गुणस्थान ४, वहा जिननाम १, आहारकद्विक २, इन ३ के विना ओघसे ११६।

सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन २ के विना मिथ्यात्वमे ११७।

सूक्ष्मत्रिक ३, आतप १, मिथ्यात्व १, नरकानुपूर्वी १ इन ६ के विना सासादनमें १११।

अनंतानुबन्धी ४, स्थावर १, जाति ४ अनुपूर्वी ३, इन १२ के विना मिश्रको मिलानेसे मिश्रगुणस्थानमे १०० का उदय।

अनुपूर्वी ४, सम्यक्त्व १, इन पाचोंको मिला कर मिश्रको निकालनेसे 'अविरतिमे' १०४।

(४१) चक्षुदर्शनकी मार्गणामें—गुणस्थान १२। वहा जाति ३ स्थावर चतुष्क ४, जिननाम १, आतप, अनुपूर्वी ४, इन १३ के विना ओघसे १०८।

आहारकद्विक २, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ४ के विना 'मिथ्यात्वमें' १०५।

मिथ्यात्वके विना 'सासादनमें' १०४।

अनन्तानुबन्धी ४, चतुरिन्द्रिय जाति १, इन ५ के विना और मिश्रको मिलानेसे 'मिश्रमें' १००।

मिश्रको निकालकर सम्यक्त्व मिलानेसे 'अविरतिमे' १००।

अप्रत्याख्यानी ४, वैक्रियद्विक २ दुर्भग १, अनादेय १, अयश १, देवगति १, देवायु १, नरकगति १, नरकायु १, इन १३ के विना 'देशविरतिमें' ८७। इसके अनन्तरको ओघकी तरह जानना चाहिये।

(४२) चक्षुदर्शनकी मार्गणामे—गुणस्थान १२. जिननामके विना ओघमे १२१।

आहारकद्विक, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ४ के विना 'मिथ्यात्वमें' ११७।

फिर ओघकी तरह १११, १००, १०४, ८७, ७६, ७२, ६६, ६०, ५६, ५७।५५।

(४३) अवधिदर्शनकी मार्गणामें—गुणस्थान ६, चतुर्थसे १२ वें तक।

सिद्धान्तमें विभंगको भी अवधिदर्शन कहा है, उस दृष्टिसे तो पहले ३ गुणस्थान भी होते हैं। मगर यहा विभंगको अवधि-दर्शन न कहनेसे अवधिज्ञानकी भाति ओघमें १०५।१०६ तिर्यंचकी अनुपूर्वीके विना।

'अविरतिमें' १०३।१०४ आहारद्विकको छोडकर। फिर ओघ की तरह, पन्नवणाकी अपेक्षासे तिर्यंचकी अनुपूर्वी होनेपर ओघसे १०६ समझना चाहिये।

(४४) केवलदर्शनकी मार्गणामें—अन्तिम दो गुणस्थान होते हैं। वहा ४२ और १२ का उदय होता है।

(४५-४६-४७) कृष्ण, नील, कापोतलेश्याकी मार्गणा—गुण-स्थान ६ यहा जिननामके विना ओघसे १२१, तथा पहली तीनले श्यासे-चारगुणस्थानकी अपेक्षासे आहारकद्विक २ के विना ओघसे ११६।

'मिथ्यात्वादिकमें' ११५।११७, १०६।१११, ६८।१००, १०२।१०४ ८७, ८१ ओघमे तरह समझना चाहिये।

(४८) तेजोलेश्याकी मार्गणामे—गुणस्थान ७, यहा सूक्ष्मत्रिक ३, विकलेन्द्रिय ३, नरकत्रिक ३, आतप १, जिननाम १, इन ११ के विना ओघसे १११।

आहारकद्विक २, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ४ के विना 'मिथ्यात्वमें' १०७ ।

मिथ्यात्व विना 'सासादनमें' १०६ ।

अनन्तानुवन्धी ४, स्थावर १, एकेन्द्रिय १, अनुपूर्वी ३, इन ९ के विना और मिश्रको मिलानेसे 'मिश्रगुणस्थानमें' ९८ ।

अनुपूर्वी ३ मिलानेपर, और मिश्रको निकालनेपर तथा सम्यक्त्वको क्षेपण करनेसे 'अविरतिमें' १०१ ।

अप्रत्याख्यानी ४, अनुपूर्वी ३ वैक्रियद्विक २, देवगति १, देवायु १, दुर्भग १, अनादेय १, अयश १, इन १४ के विना 'देशविरतिमें' ८७ ।

'प्रमत्तमें' ८१, 'अप्रमत्तमें' ७६ ।

(४९) पद्मलेश्याकी मार्गणामें—गुणस्थान ७ । जहा स्थावर ४, जाति ४, नरकत्रिक ३, जिननाम १, आतप १, इन १३ के विना ओघसे १०९ ।

आहारकद्विक २ सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ४ के विना 'मिथ्यात्व' मे १०५ ।

मिथ्यात्वके विना 'सासादनमें' १०४ ।

अनन्तानुवन्धी ४ अनुपूर्वी ३ इन ७ के विना मिश्रके मिलानेपर 'मिश्रमें' ९८ ।

अनुपूर्वी ३, सम्यक्त्व १ इन चारोंके मिलानेपर और मिश्रको निकालनेपर 'अविरतिमें' १०१ ।

अप्रत्याख्यानी ४ अनुपूर्वी ३, देवगति १, देवायु, वैक्रियद्विक २,

दुर्भग १, अनादेय १ अयश १, इन १४ के विना 'देशविरतिमे' ८७। 'प्रमत्तमें' ८१ । 'अप्रमत्तमे' ७६ ।

(५०) शुक्ललेश्याकी मार्गणामे—गुणस्थान १३, यहा स्थावर-चतुष्क ४, नरकत्रिक ३, आतप १, इन १२ के विना ओघसे ११० ।

आहारकद्विक २, सम्यक्त्व १, मिश्र १, जिननाम १, इन ५ के विना 'मिथ्यात्वमें' १०५ ।

'मिथ्यात्व' को छोडकर 'सासादन' मे १०४। अनन्तानुवन्धी ४, अनुपूर्वी ३, इन ७ को निकाल कर ''मिश्र' मिलानेसे 'मिश्र' में ९८। 'अविरति' मे १०१ । 'देशविरति' मे ८७ ।

इसके अगाड़ी ओघकी तरह जानना चाहिये ।

(५१) भव्यमार्गणा—गुणस्थान १४, ओघसे १२२, 'मिथ्यात्व' मे ११७ । इत्यादि ओघकी तरह ।

(५२) अभव्यमार्गणामे—गुणस्थान १ ।

सम्यक्त्व १, मिश्र १, जिननाम १, आहारकद्विक २, इन ५ के विना ओघसे तथा मिथ्यात्वमें ११७ ।

(५३) उपशमसम्यक्त्वीकी मार्गणा—गुणस्थान ८, चौथेसे ११ वें तक ।

यहा स्थावरचतुष्क ४, जाति ४, अनन्तानुवन्धी ४, सम्यक्त्व मोहिनी १, मिश्रमोहिनी १, मिथ्यात्व १, जिननाम १, आहारकद्विक २, आतप १, अनुपूर्वी ४, इन २३ के विना ओघसे ९९ ।

अविरतिमे भी ९९। तथा उपशमसम्यक्त्वी मरकर अनुत्तर विमानमे जाता है। वहा वाटमे चलते चौथे गुणस्थानपर

किसीको देवानुपूर्वीका उदय होता है, इस अपेक्षासे ओघमें १०० । तथा 'अवरतिमे' भी १०० ।

अप्रत्याख्यानी ४, देवगति १, देवायु १, नरकगति १, नरकायु वैक्रियद्विक २, दुर्भग २, अनादेय १, अयश १, देवानुपूर्वी १, इन १४ के विना 'देशविरतिमे' ८६, सम्यक्त्वक्षेपण करनेसे ८७ ।

तिर्यंचगति १, तिर्यंच आयु १, नीचगोत्र १, उद्योत १, अप्रत्या-ख्यानी ४, इन ८ के विना 'प्रमत्तमे' ७९ ।

स्त्यानर्द्धित्रिकके विना 'अप्रमत्तमे' ७६ ।

सम्यक्त्व १, अन्त्य संहनन ३, इन ४ के विना 'अनुपूर्वमे' ७२, फिर अनुक्रमसे ६६-६०-५९ ।

(५४) क्षायक सम्यक्त्वीकी मार्गणा—गुणस्थान ११, चौथेसे १४ वें तक ।

इसमे जाति ४, स्थावरचतुष्क ४ अनन्तानुबधी ४, आतप १, सम्यक्त्व १, मिश्र १, मिथ्यात्व १, ऋृषभनाराचादि संहनन ५, इन २१ के विना ओघसे १०१ ।

आहारकद्विक २, जिननाम १, इन ३ के विना 'अवरति' मे ९८ ।

अप्रत्याख्यानी ४, वैक्रियाष्टक ८, नरकानुपूर्वी १ तिर्यंच-त्रिक ३, दुर्भग १, अनादेय १, अयश १, उद्योत १, इन २० के विना 'देशविरति' मे ७८ ।

प्रत्याख्यानी ४, नीचगोत्र १, इन पाचोको निकाल कर तथा आहारकद्विक मिलानेसे 'प्रमत्तमे' ७५ ।

स्त्यानर्द्धित्रिक ३, आहारकद्विक २, इन ५ के विना 'अप्रमत्त-गुणस्थानमे' ७० ।

'अपूर्व' मे भी ७० ।

हास्यादि ६ के विना 'अनिवृत्ति' मे ६४ ।

वेद ३, संज्वलन ३, इन ६ के विना ''सूक्ष्मसम्पराय' मे ५८ ।

संज्वलन लोभको छोड़कर 'उपशान्तमोह' मे ५७ ।

'क्षीणमोहमें' भी ५७ ।

दो निद्राओंके विना क्षीणमोहके चरम समयमे ५५ ।

'सयोगी गुणस्थानमे' ४२ ।

'अयोगीमे' १२ ।

(५५) क्षायोपशमिककी मार्गणामे—गुणस्थान ४, चौथेसे सातवें तक ।

मिथ्यात्व १, मिश्र १, जिननाम १, जाति १, स्थावर चतुष्क ४, आतप १, अनन्तानुवन्धी ४, इन १६ के विना १०६ ।

आहारकद्विकके विना 'अविरति' मे १०४ । 'देशविरति' में ८७ । 'प्रमत्तमे' ८१, 'अप्रमत्तमे' ७६ । ओघकी तरह ।

(५६) मिश्रमार्गणामे—गुणस्थान एक तीसरा है । उदय १०० का है ।

(५७) सासादन मार्गणामे—गुणस्थान १, दूसरा । १११ का उदय ।

(५८) मिथ्यात्व मार्गणामे—गुणस्थान प्रथम है । यहा आहारकद्विक २, जिननाम १, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ५ के विना ११७ ।

(५६) सञ्ज्ञी मार्गणामे—गुणस्थान १४ या १२। यहा स्थावर १, सूक्ष्म १ साधारण १, आतप १, जाति ४ इन ८ के विना ओघसे ११४। और १२ गुणस्थान लें तो जिननामके विना ११३। आहारकद्विक २, सम्यक्त्व १, मिश्र१, इन ४ के विना 'मिथ्यात्व' मे १०६।

अपर्याप्त १, मिथ्यात्व १, नरकानुपूर्वी १, इन ३ के विना सासादनमे १०६।

अनन्तानुवन्धी ४, अनुपूर्वी ३, इन ७ के विना मिश्रके मिलाने से 'मिश्र' मे १००।

इसके उपरान्त ओघकी तरह जानना चाहिये।

(६०) असंज्ञी मार्गणा—गुणस्थान २।

यहा वैक्रियाष्टक ८, जिननाम १, आहारकद्विक २, सम्यक्त्व १, मिश्र १, सहनन १, संस्थान १, सुभग १, आदेय १, शुभ विहायोगति १, उच्चगोत्र १, स्त्री-पुरुष वेद २, इन २६ के विना ओघसे तथा मिथ्यात्वमे' ९३।

सूक्ष्मत्रिक ३, आतप १, उद्योत १, मनुष्यत्रिक ३ मिथ्यात्व १, पराघात १ उच्छ्वास १, सुस्वर १, दुःस्वर १, अशुभ विहायोगति १ इन १४ के विना 'सासादनमे' ७९।

(६१) आहारककी मार्गणा—गुणस्थान १३।

यहा अनुपूर्वी ४ के विना ओघसे ११८।

आहारकद्विक २, जिननाम १, सम्यक्त्व मोहिनी १, मिश्रमोहिनी १, इन पाचोंके विना मिथ्यात्वमे ११३।

सूक्ष्मत्रिक ३, आतप १, मिथ्यात्व १, इन ५ के विना 'सासादन' में १०८।

अनन्तानुबन्धी ४, स्थावर १, जाति ४, इन ९ के विना और मिश्रको मिलानेसे 'मिश्रमें' १०० प्रकृतिओंका उदय है।

मिश्रको निकालकर सम्यक्त्व मिला देनेसे 'अविरति' मे १००।

अप्रत्याख्यानी ४, वैक्रियद्विक २, देवगति १, देवायु १, नरकगति १, नरकायु १, दुर्भग १, अनादेय १, अयश १, इन १३ के विना 'देशविरति' मे ८७। इसके उपरान्त औघिक रीतिसे जानना चाहिये।

(६२) अनाहारक मार्गणा—इसमे १—२—४—१३—१४ ये पान्च गुणस्थान पाए जाते हैं।

जिसमे औदारिकद्विक २, वैक्रियद्विक २, आहारकद्विक २, संहनन ६, संस्थान ६, विहायोगति १, उपघात १, पराघात १, उच्छ्वास १, आतप १, उद्योत १, प्रत्येक १, साधारण १, सुस्वर दुस्वर १, मिश्रमोहिनी १, निद्रा ५ इन ३५ के विना ओघसे ८७।

जिननाम १, सम्यक्त्व १, इन २ के विना 'मिथ्यात्वमे' ८५।

सूक्ष्म १, अपर्याप्त १, मिथ्यात्व १, नरकत्रिक ३, इन ६ के विना 'सासादनमे' ७९। ['मिश्र' गुणस्थान अनाहारकको नहीं होता।]

अनन्तानुबन्धी ४ स्थावर १, जाति ४ इन ९ के विना और सम्यक्त्व मोहिनी १, नरकत्रिक ३, इन ४ के मिलानेपर 'अविरति' मे ७४।

वर्णादि ४, तैजस १, कार्मण १, अगुरुलघु १, निर्माण १, स्थिर

१, अस्थिर १, शुभ १, अशुभ १, मनुष्यगति १, पंचेंद्रियजाति १, जिननाम १, त्रसत्रिक ३ सुभग १, आदेय १, यश १ मनुष्यायु १, वेदनी २, उच्चगोत्र २, इन २५ का तेरहवें सयोगी गुणस्थान केवली समुद्घातके समय तीसरे-चौथे और पाचवें समयमे अनाहारकके उदयसे होता है।

त्रसत्रिक ३, मनुष्यगति १, मनुष्यायु १ उच्चगोत्र १, जिननाम १, दो में से एक वेदनी १, सुभग १, आदेय १, यश १, पंचेंद्रिय जाति १, इन १२ का १४ वें 'गुणस्थान' में उदय होता है।

॥ इति ६२ मार्गणा ॥

इस प्रकार १४८ या १५८ प्रकृतियोंका बंध विवरण कहा है। जिस प्रकार वात-पित्त और कफके हरण करनेवाली वस्तुओंसे बने हुए मोदकका स्वभाव वात आदि दूर करनेका है उसी तरह किसी कर्मका स्वभाव जीवपर ज्ञानपर आवरण करनेका है। किसी कर्मका जीवके दर्शनका आवरण करना, किसीका स्वभाव चरित्रका आवरण करना होता है, इस स्वभावको 'प्रकृतिबन्ध' कहते हैं।

(अथ स्थिति बन्ध)

स्थिति बंध किसे कहते हैं ?

जैसे बना हुआ लड्डू महीना, छ महीना या वर्षभर तक एक ही अवस्थामे रहता है, उसी तरह कोई कर्म अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। कोई ७० कोडाकोडी सागरोपम तक, कोई अमुक वर्षतक इसीको 'स्थिति-

न्तराय देना, (४) ज्ञानमे दोष निकालना, (५) ज्ञानकी असातना करना, (६) ज्ञानमे विसंवादयोग रखना।

इसे १० प्रकारसे भोगता है

(१) श्रोत्रका आवरण, (२) श्रोत्र विज्ञान आवरण, (३) नेत्र-आवरण, (४) नेत्र-विज्ञान आवरण, (५) घ्राण-आवरण, (६) घ्राण-विज्ञान आवरण, (७) रस-आवरण, (८) रस-विज्ञान आवरण, (९) स्पर्श-आवरण (१०) स्पर्श-विज्ञान आवरण।

दर्शनावरणीय कर्म ६ प्रकारसे बांधता है

(१) दर्शनसे शत्रुता करना, (२) दर्शनको छिपादेना, (३) दर्शनमे अन्तराय डालना, (४) दर्शनके दोषोंको कहना, (५) दर्शनकी असातना करना, (६) दर्शनमे विसंवादयोग रखना।

इसे नव प्रकारसे भोगा जाता है।

(१) निद्रा-सुखसे जगना, (२) निद्रा निद्रा-जगानेसे जगना, (३) प्रचला-हिलानेसे जगना, (४) प्रचला-प्रचला-चलते चलते सो जाना, (५) स्त्यानर्द्धि-इसमे वासुदेवकासावल है, (६) चक्षुदर्शनावरण (७) अचक्षुदर्शनावरण, (८) अवधिदर्शनावरण (९) केवलदर्शनावरण।

वेदनीयकर्म २२ तरहसे बांधा जाता है, जिसमें सातावेदनीय १० प्रकारसे

(१) प्राणकी अनुकम्पा, (२) भूतकी अनुकम्पा, (३) जीवकी

अनुकम्पा, (४) सत्वोंकी अनुकम्पा, (५) इन चारोंको दु:ख न देना, (६) इन्हें शोकातुर न करना, (७) इन्हें झुरना न पड़े ऐसा वर्त्ताव करना, (८) इन्हें प्रसन्न करना, (९) इन्हें पीटना नहीं, (१०) इन्हें परिताप न देना।

१२ प्रकारसे असातावेदनीय कर्म बांधता है

(१) प्राण, भूत, जीव, सत्वोंको उत्कृष्ट दुःख देना, (२) उत्कृष्ट शोकातुर करना, (३) झुराना, (४) अप्रसन्न करना (५) पीटना, (६) परिताप देना, (७) अधिक दु:ख देना, (८) अधिक शोकातुर करना, (९) अधिक झुराना, (१०) अधिक नाराज करना, (११) अधिक पीटना, (१२) अधिक परिताप देना।

८ प्रकारसे सातावेदनीय कर्म भोगा जाता है

(१) मनोज्ञ शब्द, (२) मनोज्ञ रूप, (३) मनोज्ञ गन्ध, (४) मनोज्ञ रस, (५) मनोज्ञ स्पर्श, (६) मनः सुखता, (७) वचन सुखता (८) काय सुखता।

८ प्रकारसे असातावेदनीय कर्म भोगता है

(१) अमनोज्ञ शब्द, (२) अमनोज्ञ रूप, (३) अमनोज्ञ गन्ध, (४) अमनोज्ञ रस, (५) अमनोज्ञ स्पर्श, (६) मनोदु:खता, (७) वचन दु:खता, (८) काय दु:खता।

मोहनीय कर्म ६ प्रकारसे बांधता है

(१) तीव्र क्रोध, (२) तीव्र मान, (३) तीव्र माया (४) तीव्र लोभ, (५) तीव्र दर्शनमोहनीयता, (६) तीव्र चरित्रमोहनीयता।

मोहनीय कर्म ५ प्रकारसे भोगा जाता है

(१) सम्यक्त्व वेदनीय, (२) मिथ्यात्व वेदनीय, (३) मिश्र वेद-नीय, (४) कषाय वेदनीय (५) नोकषाय वेदनीय।

आयु कर्म १६ प्रकारसे बंधता है

४ कारणोंसे नरकका आयु बांधा जाता है

(१) महाआरम्भ, (२) महापरिग्रह, (३) पंचेन्द्रिय वध, (४) मांस मदिराका आहार।

४ कारणोंसे तिर्यंचका आयु बांधा जाता है

(१) कपट करनेसे, (२) ठगनेसे, (३) झूठ बोलनेसे, (४) तोल-माप न्यूनाधिक रखनेसे।

४ कारणोंसे मनुष्यका आयु बांधा जाता है

(१) सरल और भद्र स्वभाव, (२) विनीत स्वभाव, (३) दयालु स्वभाव, (४) मात्सर्य भावका त्याग।

४ कारणोंसे देवका आयु बांधा जाता है

(१) सराग संयम, (२) श्रावक धर्म पालन, (३) अज्ञान तप करनेसे, (४) अकाम निर्जरा।

४ प्रकारसे आयुकर्म भोगता है

(१) नरकका आयु, (२) तिर्यंचका आयु, (३) मनुष्यका आयु, (४) देवका आयु।

नामकर्म ८ प्रकारसे बांधा जाता है

४ प्रकारसे शुभनाम बांधता है

(१) कायकी सरलता, (२) भावकी सरलता, (३) भाषाकी सरलता, (४) अविसवाद योग।

अशुभ नामकर्म ४ प्रकारसे भोगा जाता है

(१) कायकी वक्रता, (२) भावकी वक्रता, (३) भाषाकी वक्रता, (४) विसंवाद योग।

नाम २८ प्रकारसे भोगा जाता है

१४ प्रकारसे शुभनाम भोग्य है, इष्ट शब्द १, इष्ट रूप २, इष्ट गन्ध ३, इष्ट रस ४, इष्ट स्पर्श ५, इष्ट गति ६, इष्ट स्थिति ७, इष्ट लावण्य ८, इष्ट यश.कीर्ति ६ इष्ट उत्थान, कर्म बल, वीर्य, पुरुषात्कारपराक्रम १० इष्ट स्वरता ११, कान्त स्वरता १२, प्रिय स्वरता १३, मनोज्ञ स्वरता १४।

अशुभ नामकर्म १४ प्रकारसे भोगा जाता है

अनिष्ट शब्द १, अनिष्ट रूप २, अनिष्ट गन्ध ३, अनिष्ट रस ४, अनिष्ट स्पर्श ५, अनिष्ट गति ६, अनिष्ट स्थिति ७, अनिष्ट लावण्य ८, अनिष्ट यश कीर्ति ६, अनिष्ट उत्थान, कर्म बल, वीर्य पुरुषात्कारपराक्रम १०, हीन-स्वरता ११, दीन-स्वरता १२, अनिष्ट स्वरता १३, अकान्त स्वरता १४।

गोत्रकर्म के दो भेद

(१) ऊंच गोत्र, (२) नीच गोत्र।

ऊंच गोत्र ८ प्रकारसे बांधा जाता है

(१) जातिमद न करनेसे, (२) कुलमद न करनेसे, (३) बलमद न करनेसे, (४) रूपमद न करनेसे, (५) तपमद न करनेसे, (६) लाभमद न करनेसे, (७) ज्ञानमद न करनेसे, (८) ऐश्वर्यमद न करनेसे।

इन्हीं आठों मदोंके करनेसे नीच गोत्र उपार्जन करता है।

आठ प्रकारसे 'नीच गोत्रकर्म' भोगता है

(१) जातिहीन, (२) कुलहीन, (३) बलहीन, (४) रूपहीन, (५) तपहीन, (६) ज्ञानहीन, (७) लाभहीन, (८) ऐश्वर्यहीन।

आठ प्रकारसे 'ऊंच गोत्रकर्म' भोगता है

(१) जाति विशिष्ट, (२) कुल विशिष्ट, (३) बल विशिष्ट, (४) रूप विशिष्ट, (५) तप विशिष्ट, (६) श्रुत विशिष्ट, (७) लाभ विशिष्ट, (८) ऐश्वर्य विशिष्ट।

अन्तराय कर्म ५ प्रकारसे बांधा जाता है

(१) दान करते हुएको रोकना, (२) लाभमें अन्तराय डालना, (३) किसीके भोगोंमें बाधा डालना, (४) उपभोग्य वस्तुमें अन्तराय देना, (५) किसीके बलको बाधा पहुंचाना।

अन्तराय कर्म ५ प्रकारसे भोगा जाता है

(१) दान नहीं दे सकता, (२) लाभसे वंचित रहता है, (३) भोग नहीं पाता, (४) उपभोगसे वंचित रहता है, (५) निर्बल रहता है।

॥ इति रस-बन्ध ॥

अथ प्रदेश-बन्ध

जीवके साथ न्यूनाधिक परमाणुवाले कर्म-स्कन्धोंका सम्बन्ध होना 'प्रदेशबन्ध' कहलाता है। जैसे कुछ लड्डुओंका परिमाण दो तोलेका, कुछका छटाक, और कुछ लड्डुओंका परिमाण पाव भर होता है, उसी प्रकार कुछ कर्मदलोंमे परमाणुओंकी संख्या अधिक और कुछ कर्मदलोंमे कम, इस प्रकार अलग-अलग प्रकारकी परमाणु-सख्याओंसे युक्त कर्म-दलोंका आत्मासे सम्बन्ध होना प्रदेश-बन्ध कहलाता है। सख्यात, असख्यात अथवा अनन्तपरमाणुओसे बने हुए स्कन्धको जीव ग्रहण नहीं करता, किन्तु अनन्तानन्त परमाणुओं से बने हुए स्कन्धको ग्रहण करता है। आठों कर्मोके अनन्तानन्त प्रदेश होते है, और वे जीवके असख्य प्रदेशोंपर स्थित है। कर्म परमाणु और आत्माके प्रदेश दूध पानीकी तरह आपसमे मिले हुए हैं तथा अग्नि और लोह-पिंडकी तरह एक रूप होकर स्थित है। परन्तु आत्माके आठ रुचक-प्रदेश तो अलिप्त ही है।

इन चारों भेदोंके विषयमे एक कारिका भी प्रसिद्ध है ।

यतः—

स्वभावः प्रकृति· प्रोक्तः स्थिति. कालावधारणम्। अनुभागो रसो ज्ञेयः, प्रदेशो दलसञ्चयः ।

भावार्थ—स्वभावको प्रकृति कहते हैं, कालकी मर्यादा स्थिति है, अनुभागको रस और दलोंकी संख्याको प्रदेश कहते हैं ।

इति बंध-तत्त्व ।

अथ मोक्ष-तत्त्व

मोक्ष किसे कहते हैं ?

सम्पूर्ण कर्मोंका आत्मासे अलग होना मोक्ष कहलाता है। अथवा जो कर्म अपनी स्थिति पूर्ण करके बंध दशाको नष्ट कर लेता है और आत्म गुणोको निर्मल करता है, वह मोक्ष-पदार्थ है। अथवा ज्ञानी जीव भेद-विज्ञानके आरेसे आत्म-परिणति और कर्म-परिणतिको अलग-अलग करके उन्हें भिन्न-भिन्न जानता है और अनुभवका अभ्यास तथा रत्नत्रय ग्रहण करके ज्ञानावरणादि कर्म और राग-द्वेष आदि विभावका कोष खाली कर देता है। इस रीतिसे वह मोक्षके सन्मुख गतिमान् होता है, और जब केवलज्ञान उसके समीप आता है, तब पूर्ण ज्ञानको पाकर परमात्मा बन जाता है और संसारकी भटकना मिट जाती है। तथा उसे और कुछ करनेको अवशेष न रह जानेके कारण कृत-कृत्य हो जाता है।

सम्यक्ज्ञानसे आत्म-सिद्धि

जैनशास्त्रके ज्ञाता एक उत्कृष्ट जैनने बड़ी सावधानीसे निर्विकल्प तेज छैनी अपने हृदयमें डालदी, उसने वहां प्रवेश करते ही नोकर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म और निजस्वभावका पृथक्करण कर दिया। यहां

उस ज्ञाताने बीचमे पड कर एक अज्ञानमय और एक ज्ञानसुधारस-मय ऐसी दो धाराएँ वहती देखीं। तव वह अज्ञानधाराको छोडकर ज्ञानरूप अमृतसागरमे मग्न हो गया। इतनी भारी सत्र क्रिया उसने मात्र एक समयमे ही की।

भेद-विज्ञानकी शक्ति

जिस प्रकार लोहेकी छैनी काष्ठ आदि वस्तुके दो खण्ड कर देती है, उसी प्रकार चेतन-अचेतनका पृथक्करण भेद-विज्ञानसे होता है।

सुबुद्धिका विलास और उसकी आवश्यकता

सुवुद्धि धर्मरूप फलको धारण करती है, कर्ममलको अपहरण करती है मन, वचन और काय इन तीनोंके वलोंको मोक्ष-मार्गमे लगाती है। जीभसे स्वाद लिये विना उज्वल ज्ञानका भोजन खाती है, अपनी अनन्तज्ञानरूप सम्पत्तिको चित्तरूप दर्प्पणमे देखती है, मर्मकी वात अर्थात् आत्माका स्वरूप वतलाती है, मिथ्यात्वरूप नगरको भस्म करती है, सद्गुरुकी वाणीको ग्रहण करती है चित्तमे स्थिरता पैदा करती है, जगज्जीवोंके लिये हितकर होकर रहती है, त्रिलोकीनाथकी भक्तिमे अनुराग पैदा करती है, मुक्तिकी अभिलाषा उत्पन्न करती है, यह सुवुद्धिका विलास मोक्षके निकट आत्माको ले जाता है। ऐसी वुद्धि सम्यग्ज्ञानीको ही होती है।

सम्यग्ज्ञानीका महत्व

भेद-विज्ञानी ज्ञाता पुरुप राजाके समान रूप वनाये हुए है वह अपने आत्मरूप स्वदेशकी रक्षाके अर्थ परिणामोंकी संभाल रखता है,

और आत्म-सत्ता भूमिरूप स्थानको पहिचानता है। शम, सवेद, निर्वेद अनुकम्पा आदिकी सेनाको संभालनेमे प्रवीणता प्राप्त है, साम दाम, दड, भेद आदि कलाओंमे कुशल राजाके समान है, तप, समिति, गुप्ति परिषह, जय, धर्म, अनुप्रेक्षा आदि अनेक रंग धारण करता है। कर्मरूप शत्रुओंको जीतनेमे उद्भट वीर है। मायारूप समस्त लोहको चूर करनेमें लोहकी रेतोके समान है। कर्म फलरूप कासको जडसे उखाड़नेमे प्रवल किसानके समान है। कर्म-बधके दुःखोंसे बचानेवाला है आत्म-पदार्थरूप चादीको ग्रहण करने और पर-पदार्थरूप धूलको छोडनेमे रजत-शोधा (सुनार) के समान है, पदार्थको जैसा जानता है वैसा ही मानता है। भाव यह है कि हेयको हेय जानता है और हेय मानता है, और उपादेयको उपादेय जानता है और उपादेय मानता है। इस प्रकार ऐसी उत्तम बातोंका आराधक धाराप्रवाही ज्ञाता है।

ज्ञानी सार्वभौम होता है

ज्ञानी जीव चक्रवर्तीके समान है, क्योकि चक्रवर्ती छह खडोकी पृथ्वीको साधकर विजय पाता है ज्ञानी भी छहो द्रव्योंपर जीतका डका बजाता है, चक्रवर्ती शत्रु समूहको नष्ट करता है, ज्ञानी जीव विभाव परिणतिका नाश करता है चक्रवर्तीके पास नवनिधि होती है, ज्ञानी भी श्रवण कीर्तन चिन्तवन सेवन वदन, ध्यान, लघुता, समता एकता रूप नव भक्ति धारण करते हैं। चक्रवर्तीके पास १४ रत्न होते हैं ज्ञानियोंको सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रके भेदरूप १४ रत्न

इस प्रकार प्राप्त होते है जैसे—सम्यग्दर्शनके उपशम १, क्षयोपशम २, क्षायक ३, ये तीन ज्ञानके मति, श्रुति अवधि, मनःपर्यव केवल, ये पाच। चरित्रके सामायिक छेदोपस्थापनीय परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय, यथाख्यात और संयमासंयम इस प्रकार सब मिल कर १४ जान पडते है। चक्रवर्तीकी पट्टरानी दिग्विजयको जानेके लिये चुटकीसे वज्र-रत्नोंका चूरा करके चौक पूरती है ज्ञानी जीवों-की भी सुबुद्धि पटरानी मोक्ष जानेका शकुन करनेको महामोह रूप वज्रको चूर देती है। चक्रवर्तीके हाथी, घोड़े रथ पैदल आदिक चतुरगिनी सेना रहती है। ज्ञानी जीवोंके प्रत्यक्ष, परोक्ष नय, निक्षेप होते हैं। विशेष यह कि—चक्रवर्तीके शरीर होता है परन्तु ज्ञानी जीव देहसे विरक्त होनेके कारण शरीर रहित होते हैं। इसलिये ज्ञानी जीवोंका पराक्रम चक्रवर्तीके समान है।

ज्ञानी जीवोंका मन्तव्य

आत्म-अनुभवी जीव कहते हैं कि—हमारे अनुभवमे आत्म-स्वभावसे विरुद्ध चिह्नोंका धारक कर्मोका फदा हमसे अलग है वह आप (कर्तृ रूप) अपनेको (कर्मरूप) अपने द्वारा (कारणरूप) अपनेमे (अधिकरण) जानते हैं। द्रव्यकी उत्पाद-व्यय और ध्रुव यह त्रिगुण धाराएँ जो मुझमें वहती है, सो ये विकल्प व्यवहार नयसे है मुझसे सर्वथा भिन्न है। मै तो निश्चय नयका विषय भूत शुद्ध और अनन्त चैतन्य मूर्तिका धारक हू। मेरा यह सामर्थ्य सदैव एक रूप रहता है, कभी घटता वढता नहीं है।

चेतना लक्षणका स्वरूप

चैतन्य पदार्थ एकरूप ही है, पर दर्शनगुणको निराकार(१) चेतना और ज्ञान गुणको साकार(२) चेतना कहते हैं। अत. ये सामान्य और विशेष दोनों एक चैतन्य ही के विकल्प है। एक ही द्रव्यमे रहते हैं, वैशेषिक आदि मतवाले आत्मामे चैतन्यगुण नहीं मानते हैं। अत· उनसे जैन मतवालोंका कहना है कि—चेतनाका अभाव माननेसे तीन दोप पैदा होते हैं प्रथम तो लक्षणका नाश होता है। दूसरे लक्षणका नाश होनेसे सत्ताका नाश होता है, तीसरे सत्ताका नाश होनेसे मूल वस्तु ही का नाश होता है, अत जीव द्रव्यका स्वरूप जाननेके लिये चैतन्य ही का अवलम्बन है, और आत्माका लक्षण चेतना है, और आत्मा सत्तामे है, क्योंकि सत्ता धर्मके विना आत्म· पदार्थ सिद्ध नहीं होता, और अपनी सत्ता प्रमाण वस्तु है, और वह द्रव्यकी अपेक्षा तीनोंमे भेद नहीं रखती, एक ही है।

(१-२) पदार्थको जाननेके पहले पदार्थके अस्तित्वका जो किंचित् भान होता है वह दर्शन है, दर्शन यह नहीं जानता कि—पदार्थ किस आकार व रंगका है वह तो सामान्य अस्तित्वमात्र जानता है. इसीसे दर्शनगुण निराकार और सामान्य है इसमे महासत्ता अर्थात् सामान्य सत्ताका प्रतिभास होता है आकार रंग आदिका जानना ज्ञान है इसमे ज्ञान साकार है, सविकल्प है. विशेप जानना है. इसमे अवान्तर सत्ता यानी विशेप सत्ताका प्रतिभास होता है।

आत्मा नित्य है

जिस प्रकार सुनारके द्वारा घडे जानेपर सोना गहनेके रूपमे हो जाता है. परन्तु गलानेसे फिर सुवर्ण ही कहलाता है, उसी प्रकार यह जीव अजीवरूप कर्मके निमित्तसे नाना वेप (पर्याय) धारण करता है, परन्तु अन्य रूप नहीं हो जाता, क्योकि चैतन्यगुण कहीं चला नहीं जाता। इसी कारण जीवको सब अवस्थाओमे मुक्त और ब्रह्म कहते हैं। जिस प्रकार नट अनेक स्वांग बनाता है और उन स्वांगोके तमाशे देखकर लोग कौतूहल समझते हैं परन्तु वह नट अपने असली रूपसे कृत्रिम किये हुए वेपको भिन्न जानता है, उसी प्रकार यह नटरूप चेतन राजा परद्रव्यके निमित्तसे अनेक विभाव पर्यायोंको प्राप्त होता है, परन्तु जब अन्तरंग दृष्टि खोलकर अपने सत्य रूपको देखता है. तब अन्य अवस्थाओंको अपनी न मान कर अपनेको पूर्णब्रह्म मानता है। अत जिसमे चैतन्य भाव है वह चिदात्मा है. और जिसमे अन्यभाव है वह और कुछ है अर्थात् अनात्मा है, चैतन्यभाव उपादेय है और परद्रव्योंके भावपर हैं— त्यागने योग्य है।

मोक्षमार्गका साधक

जिनके घटमे सुबुद्धिका उदय हुआ है जो भोगोसे सदैव विरक्त रहते हैं। जिन्होंने शरीरादि परद्रव्योंसे ममत्व हटाया है, जो राग-द्वेप आदि भावोसे रहित हैं। जो कभी घर और सम्पत्ति आदिमे लीन नहीं होते, जो सदा अपने आत्माको सर्वाङ्ग शुद्ध

विचारते हैं, जिनके मनमे कभी आकुलता व्याप्त नहीं होती वे ही जीव त्रैलोक्यमे मोक्ष मार्गके साधक हैं, तब फिर वे चाहे घरमे रहे या वनमे।

मोक्षकी समीपता

जो सदा यह विचारते है कि—मेरा आत्म-पदार्थ चैतन्य स्वरूप है, अछेद्य, अभेद्य, शुद्ध और पवित्र है, जो राग, द्वेष और मोहको पुद्गलका नाटक समझता है। जो भोग सामग्रीके संयोग और वियोगकी आपत्तियोंको देखकर कहते हैं कि—ये कर्मजनित हैं, इसमे हमारा कुछ नहीं है ऐसा अनुभव जिन्हे सदा रहता है, उनके समीपमे ही मोक्ष है।

साधु और चोरकी पहिचान

लोकमे यह बात प्रसिद्ध है कि—जो दूसरेके धनको हर लेता है उसे अज्ञानी, चोर तथा डाकू कहते है, और वह अपराधी दण्डनीय होता है, और जो अपने धनको वर्तता है, वह शाह, महाजन और समझदार कहलाता है, उनकी प्रशंसा की जाती है। उसी प्रकार जो जीव परद्रव्य अर्थात शरीर और शरीर सम्बन्धी चेतन पदार्थोंको अपना मानता है या उनमे लीन होता है वह मिथ्यात्वी है वही ससारके क्लेश पाता है, और जो निजात्माको अपना मानता है उसीका अनुभव करता है, वह ज्ञानी है, वह मोक्षका आनन्द प्राप्त करता है।

द्रव्य और सत्ता

जो पर्यायोसे उत्पन्न होता है और नष्ट होता है, परन्तु स्वरूपसे

स्थिर रहता है, उसे द्रव्य कहते हैं, और द्रव्यके क्षेत्रावगाहको सत्ता कहते हैं।

षट्द्रव्योंकी सत्ताका स्वरूप

आकाश द्रव्य एक है, उसकी सत्ता लोकालोकमे है, धर्म द्रव्य एक है, उसकी सत्ता लोक-प्रमाण है, अधर्म द्रव्य भी एक है उसकी सत्ता लोक प्रमाण है कालके अणु असख्यात हैं उसकी सत्ता असंख्यात है पुद्गलद्रव्य अनन्तानन्त हैं उसकी सत्ता अनन्तानन्त है जीवद्रव्य भी अनन्तानन्त हैं उनकी सत्ता भी अनन्तानन्त है। इन छहों द्रव्योंकी सत्ताएँ जुदी जुदी हैं, कोई सत्ता किसीसे मिलती जुलती नहीं, और न एक मेल होती हैं। निश्चयनयसे कोई किसीके आधीन नहीं सब स्वाधीन हैं और यह क्रम अनादिकालसे चला आ रहा है। ऊपर कहे हुए ही छह द्रव्य हैं, इन्हींसे जगत् उत्पन्न है, इन छहो द्रव्योंमें ५ अचेतन हैं एक चेतन द्रव्य ज्ञानमय है, किसीको अनन्त सत्ता किसीसे कभी मिलती नहीं है। प्रत्येक सत्तामे अनन्त गुण समूह हैं, और अनन्त अवस्थाएँ हैं, इस प्रकार एकमे अनेक जानना योग्य है, यही स्याद्वाद है, यही सत्पुरुषोका अखण्ड कथन है यही आनन्द वर्धक है, और यही ज्ञान मोक्षका कारण है। क्योंकि जिस प्रकार दधिके मथनेमे घीकी सत्ता साधी जाती है, औषधियोकी हिकमतमे रसकी सत्ता है, शास्त्रोंमे जहा तहा सत्ताहीका कथन है, ज्ञानका सूर्य सत्तामे है, अमृतका पुंज सत्तामे है, सत्ताका छुपाना सामकी सन्ध्याके समान है, और सत्ताको

प्रधानता देना सवेरेकी सन्ध्याके समान है। सत्ताका स्वरूप ही मोक्ष है, सत्ताका भुलाना ही जन्म मरणादि दोषरूप ससार है, अपनी आत्म सत्ताका उल्लघन करनेसे चतुर्गतिमे भटकना पडता है। जो आत्म सत्ताके अनुभवमे विराजमान है वही श्रेष्ट पुरुष है, और जो आत्मसत्ताको छोड़ कर अन्यकी सत्ताको ग्रहण करता है वही चोर और दस्यु है।

निर्विकल्प शुद्ध सत्ता

जिसमें लौकिक रीतिओंकी न विधि है न निषेध है, न पाप पुण्यका क्लेश है, न क्रियाकी मनाही है न राग-द्वेष है, न बध मोक्ष है, न स्वामी है न सेवक है, न ऊंच नीचका ही कोई भेद है, न हो कुलाचार है, न हार जीत है, न गुरु है न शिष्य है, न चलना फिरना है, न वर्णाश्रम है, न किसीका शरण है। ऐसी शुद्ध सत्ता अनुभव रूप भूमिपर पाई जाती है, मगर जिसके हृदयमें समता नहीं है, जो सदा शरीर आदि परपदार्थोंमे मग्न ही रहता है तथा अपने आत्माको नहीं जानता, वह जीव निरन्तर अपराधी है, अपने आत्म स्वरूपको न जानने वाला अपराधी जीव मिथ्यात्वी है वह अपनी आत्माका हिंसक है हृदयका अन्धा है, वह शरीर आदि पर पदार्थोंको आत्मा मानता है, और कर्मबन्धको बढाता है. आत्मज्ञानके विना उसका तप आचरण मिथ्या है. उसकी मोक्ष सुखकी आशा झूठी है ईश्वरको जाने विना ईश्वरकी शक्ति अथवा दासत्व मिथ्या है।

मिथ्यात्वकी विपरीत वृत्ति

सोना चादी जो कि पहाडोंकी मिट्टी है उन्हे निज सम्पत्ति कहता है, शुभ क्रियाको अमृत मानता है और ज्ञानको विप जानता है। अपने आत्मरूपको ग्रहण नहीं करता। शरीरादिको आत्मा मानता है, सातावेदनीय जनित लौकिक सुखमे आनन्द मानता है, और असाताके उदयको आपत् कहता है, क्रोधकी तलवार ले रक्खी है, मानकी मदिरा पीकर बैठा है, मनमे मायाकी वक्रता है, और लोभके कुचक्रमे पडा हुआ है। इस भाति अचेतनकी सगतिसे चिद्रूप आत्मा सत्यसे परामुख होकर असत्यमे ही उलझा हुआ है। ससार-में भूत, वर्तमान और भविष्यत् कालका धारा प्रवाह चक्र चल रहा है उसे कहता है कि मेरा दिन मेरी रात, मेरी घडी, मेरा पहर है, कूड़े किरकटका ढेर एकत्र करता है और कहता है कि यह मेरा मकान है जिस पृथ्वी-खण्ड पर निवास करके रहता है उसे अपना नगर बताता है, इस प्रकार अचेतनकी सगतिसे चिद्रूप आत्मा सत्यसे परामुख होकर असत्यमे उलझ रहा है।

समदृष्टिका सद्विचार

जिन जीवोंकी कुमति नष्ट हो गई है, जिनके हृदयमे ज्ञानका प्रकाश है, जिन्हे आत्मस्वरूपकी पहिचान है वे ही निरपराधी और श्रेष्ठ मनुष्य है। जिनकी धर्मध्यानरूप अग्निमे सशय, विमोह, विभ्रम ये तीनों वृक्ष जल गये हैं, जिनकी सुदृष्टिके सन्मुख उदय रूपी कुत्ते भोकते २ चले जाते है, वे ज्ञानरूपी हाथी पर सवार है जिससे कर्म

रूपी धूल उन तक नहीं पहुचती, जिनके विचारमे शास्त्रज्ञानकी तरङ्गे उठती हैं, जो सिद्धान्तमे प्रवीण हैं, जो आध्यात्मिक विद्याके पारगामी हैं। वे ही मोक्ष मार्गी है – वे ही पवित्र हैं। सदा आत्म अनुभवका रस दृढ करते हैं और आत्म अनुभवका पाठही पढते हैं। जिनकी वुद्धि गुण ग्रहण करनेमे चिमटीके समान है, विकथा सुनने के लिये जिनके कान वहरे है, जिनका चित्त निष्कपट है जो मृदु भाषण करते हैं, जिनकी क्रोधादि रहित सौम्य दृष्टि है, स्वभावके ऐसे कोमल हैं मानो मोमसे इनकी रचना की गई है, जिन्हे आत्मध्यानकी शक्ति प्रगट हो गई है, और परम समाधि साधनेको जिनका चित्त उत्साहित रहता है, वे ही मोक्षमार्गी हैं, वे ही पवित्र हैं, सदा आत्मा ही की रटन लगी रहती है।

आत्म-समाधि

आत्मा और आत्मानुभव ये कहने सुननेको दो है, जब आत्म-ध्यान प्रगट हो जाता है, तव आत्म-रसिक और आत्म रसका कोई भेद नहीं रह जाता। वह आत्म-प्रेमी जीव आत्म-ज्ञानमें आनन्द मानता है। मान छोड कर नमस्कार करता है, स्तवना करता है, उपदेश सुनता है, ध्यान करता है, जाप जपता है, पढता है, पढाता है व्याख्यान देता है, इसकी ये शुभ क्रियाएँ है, इन क्रियाओके करते-करते जहा आत्माका शुद्ध अनुभव हो जाता है, वहा शुभोप-योग नही रहता। शुभ क्रिया कर्मवधका कारण है और मोक्षकी प्राप्ति आत्म-अनुभवमे है, और जव मुनिराज प्रमाद दशामे रहते है तव उन्हे प्रमाद दशामे शुभ क्रियाका अवलम्वन लेना ही पडता है।

मगर जहा शुभ-अशुभ प्रवृत्ति रूप प्रमाद नहीं रहता है, वहा स्वयं-को अपना ही अवलम्बन अर्थात् शुद्धोपयोग होता है, इससे स्पष्ट है कि प्रमादकी उत्पत्ति मोक्ष मार्गमे बाधक है और जो मुनि प्रमादयुक्त होते है, वे गेंदकी तरह नीचेसे ऊपरको चढ़ते हैं और फिर नीचे गिरते हैं, और जो प्रमादको छोड़कर स्वस्वरूपमे सावधान होते हैं, उनकी आत्म-दृष्टिमे मोक्ष बिल्कुल पास ही दिखता है। साधु दशामे छठवा गुणस्थान प्रमत्त मुनिका है और छठवेंसे सातवेंमे और सातवेंसे छठवेंमे असख्यात वार चढ़ना गिरना होता है। जब तक हृदयमे प्रमाद रहता है तब तक जीव पराधीन रहता है, और जब प्रमादकी शक्ति नष्ट हो जाती है तब शुद्ध अनुभवका उदय होता है। अत. प्रमाद ससारका कारण है और अनुभव मोक्षका कारण है, प्रमादी जीव ससारकी ओर देखते है और अप्रमादी जीव मोक्षकी ओर देखते है। जो जीव प्रमादी और आलसी हैं, जिनके चित्तमे अनेक विकल्प उठते है, और जो आत्म-अनुभवमे शिथिल है, उनसे स्वरूपाचरण बहुत दूर रहता है। जो जीव प्रमाद सहित और अनुभवमे शिथिल है, वे शरीर आदिमे अहबुद्धि करते है और जो निर्विकल्प अनुभवमे रहते है उनके चित्तमे समता रस सदा भरा रहता है। जो महामुनि विकल्प रहित है, अनुभव और शुद्ध ज्ञान-दर्शन सहित है वे थोडे ही समयमे कर्म रहित होकर मोक्ष प्राप्त करते है।

ज्ञानमें सब जीव एक प्रकारके भासते हैं

जैसे पहाड़पर चढ़े हुए मनुष्यको नीचेका मनुष्य छोटा दीखता

है, और नीचेके मनुष्यको पहाड़पर चढ़ा हुआ मनुष्य छोटा दीख पड़ता है। पर जब वह नीचे आता है तब दोनोंका भ्रम हट जाता है और विषमता मिट जाती है, उसी प्रकार ऊंचा मस्तक रखनेवाले अभिमानी मनुष्यको सब मनुष्य तुच्छ दीखते है, और सबको वह अभिमानी तुच्छ दीखता है, परन्तु जब ज्ञानका उदय होता है तब मान कषाय गल जानेसे समता प्रगट होती है, ज्ञानमे कोई छोटा बड़ा नहीं दीखता, सब जीव समान भासते है।

अभिमानी जीवकी दशा

जो कर्मोंका तीव्र बंध बांधे हुए है, गुणोंका मर्म न जानकर दोषको ही गुण समझते है। अत्यन्त अनुचित और पापमय मार्ग ग्रहण करते है। नम्र और विनीत चित्त नहीं होता धूपमें भी अधिक गर्म रहते है और इन्द्रिय ज्ञानहीमें भूले रहते है। नमस्कार लेनेके लिये एक आसनसे बैठते है या खड़े रहते है मौन भी रखते है, मान्य समझकर कोई उन्हें नमस्कार करे तो उत्तरके लिये थम तक नहीं हिलाते, मानो पत्थरकी शिलाकी है, [illegible] है, संसार मार्गमें चलाने वाले है सासारिक परिपाक दशा प्राप्त है, ऐसे जीव अभिमानी होते है, और उनकी ऐसी [illegible] दशा होती है।

उत्साहित रहते है, विषय वासनाओको जलाते रहते है निरन्तर आत्महितका चिन्तवन करते रहते है, सुख शान्तिकी गतिमे कदम बढ़ाते रहते हैं, सद्गुणोंकी ज्योतिसे प्रकाशित है, आत्मस्वरूपमे रुचि रखते हैं, सब नयोंका रहस्य जानते हैं, क्षमावान तो ऐसे है कि सबके छोटे भाई बन कर रहते हैं, और उनकी खरी खोटी बातें सहते है, मनकी कुटिलताको छोडकर सरल चित्त हो रहे है, दुख और सन्तापके राहमे कभी नहीं चलते। सदा आत्म-स्वरूपमे विश्राम किया करते है, ऐसे पुरुष महा-अनुभवी और ज्ञानी कहलाते हैं।

सम्यक्त्वी जीवोंकी महिमा

जहा शुभाचारकी प्रवृत्ति नहीं है वहा निर्विकल्प अनुभव पद रहता है जो बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह छोडकर मन, वचन, कायके तीनो योगोका निग्रह करके बंध परम्पराका संवर करते हैं, जिन्हें राग, द्वेष, मोह नहीं रह गया है, वे साक्षात् मोक्ष मार्गके सन्मुख रहते है, जो पूर्व बधके उदयमे ममत्व नहीं करते पुण्य-पापको समान जानते है, भीतर और बाहरमे निर्विकार रहते है, जिनके सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चरित्र उन्नतिपर है जिनकी दशा स्वाभाविकतया ऐसी है, उन्हे आत्म-स्वरूपकी दुविधा क्योकर हो सकती है ? वे मुनि क्षपक श्रेणीपर चढकर केवली भगवान् बन जाते है, जो इस प्रकार आठो कर्मोंको क्षय करके तथा कर्म वनको जलाकर परिपूर्ण हो गये है, उनकी महिमाको जो जानना है उन्हे पुन पुन नमस्कार है।

मोक्षप्राप्तिका क्रम

आत्मामे शुद्धताका अकुर प्रगट हुआ है, मिथ्यात्व जड़-मूलसे हट गया है, शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान क्रमशः ज्ञानका उदय बढा है, केवलज्ञानका प्रकाश हुआ है, आत्माका नित्य और पूर्ण आनन्दमय स्वभाव भासने लगा है, मनुष्यकी आयु और कर्मस्थिति पूर्ण हो गई है। मनुष्यकी गतिका अभाव हो गया है, और पूर्ण परमात्मा बना। इस प्रकार सर्वश्रेष्ठतम महिमा प्राप्त करके पानीकी बूंदसे समुद्र होनेके समान अविचल, अखड, निर्भय और अक्षय जीव पदार्थ ससारमे जयवान हो जाता है, और ज्ञानावरणीय कर्मके अभावमे केवलज्ञान, दर्शनावरणीय कर्मके अभावमे केवलदर्शन, वेदनीय कर्मके अभावमे निराबाधता, मोहनीय कर्मके अभावमे अटल अवगाहना, नामकर्मके अभावमे अगुरुलघुत्व, और अन्तराय कर्मके नष्ट होनेसे अनन्तवीर्य प्रगट होता है। इस प्रकार सिद्धभगवानमें अष्टकर्म न होनेसे अष्टगुण प्रगट हो जाते है।

मोक्षके नव द्वार

(१) सत्पदप्ररूपणाद्वार, (२) द्रव्यप्रमाणद्वार (३) क्षेत्र प्रमाणद्वार, (४) स्पर्शनाद्वार (५) कालद्वार, (६) अन्तरद्वार (७) भागद्वार, (८) भावद्वार, (९) अल्पबहुत्वद्वार।

सत्पदप्ररूपणाद्वार (१)

[illegible]

[illegible]

रहेंगे, वर्त्तमानकालमे जाते है. मोक्ष सत् अर्थात् विद्यमान है क्योंकि उसका वाचक एक पद है, आकाशके फूलकी तरह वह अविद्यमान नहीं है, मार्गणाओंद्वारा मोक्षकी प्ररूपणा [विचार] किया जाता है, एक पदका वाच्य अर्थ अवश्य होता है, जैसे घट-पट आदि एक पद-वाले शब्द है उनका वाच्य-अर्थ भी विद्यमान है, इसी प्रकार दो पदवाले शब्दोंके भी वाच्य-अर्थ होते है, और नहीं भी होते। जैसे-'गोश्रृंग' 'महिषश्रृंग' ये शब्द दो दो पदोसे बनते है इनका वाच्यार्थ 'गायका सींग भैंसका सींग' प्रसिद्ध है, परन्तु 'खरश्रृंग' और 'अश्व-श्रृंग' ये दोनों शब्द भी दो दो पदोसे बनाये गये है परन्तु इनके वाच्यार्थ 'गधेके सींग' 'घोड़ेके सींग' अविद्यमान हैं। इसी प्रकार मोक्ष शब्द एक पद युक्त होनेपर भी उसका वाच्यार्थ भी घट पट आदि पदार्थोंकी भाति विद्यमान है, इस प्रकार अनुमान प्रमाणसे 'मोक्ष' है यह बात सिद्ध होती है।

किन मार्गणाओंसे मोक्ष होता है ?

मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, भवसिद्धिक संज्ञी, यथा-ख्यातचारित्र, क्षायिक-सम्यक्त्व, अनाहार, केवलदर्शन और केवलज्ञान इन दश मार्गणाओं द्वारा मोक्ष होता है शेप मार्गणाओ द्वारा नहीं।

मार्गणा किसे कहते हैं ?

सम्पूर्ण जीवद्रव्यका जिसके द्वारा विचार किया जाय उसे 'मार्गणा कहते हैं। मार्गणाओंके मूलभूत १४ भेद है और उत्तर भेद ६२ है जो बंध तत्त्वमे कह आये है।

१—गतिमार्गणा—नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव इन चार गतिओंमेंसे सिर्फ मनुष्यगतिसे मोक्षकी साधना कर सकता है अन्य तीन गतिओंसे नहीं।

२—इन्द्रियमार्गणा—इसके पाच भेद हैं, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। इनमेसे पंचेन्द्रियद्वारसे मोक्ष होता है, अर्थात् पाचोंइन्द्रियें पाया हुआ जीव ही मोक्ष जाता है।

३—कायमार्गणा—के ६ भेद हैं, पृथ्वीकाय, अप्‌काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय। इनमेसे त्रसकायके पर्यायके जीव मोक्ष जाते हैं, अन्यकायके नहीं।

४—भवसिद्धिक मार्गणा—के दो भेद है, भव्य और अभव्य। इनमेसे भव्य जीव मोक्ष जाते है, अभव्य नहीं।

५—सञ्ज्ञीमार्गणा—के दो भेद हैं, संज्ञीमार्गणा और असञ्ज्ञी—मार्गणा। इनमेसे संज्ञीजीव मोक्ष जाते हैं, असंज्ञी नहीं।

६—चरित्रमार्गणा—के ५ भेद है। सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म-सम्पराय और यथाख्यात, इनमेसे यथाख्यात चरित्रका लाभ होनेपर जीव मोक्ष जाता है, अन्य चरित्रसे नहीं।

७—सम्यक्त्व मार्गणाके—पाच भेद हैं, औपशमिक, सास्वादन, क्षायोपशमिक, वेदक और क्षायिक। इनमेसे क्षायिक सम्यक्त्वका लाभ होनेपर जीवको मोक्ष प्राप्त होता है, अन्य सम्यक्त्वसे नहीं।

८—अनाहार मार्गणा—के दो भेद हैं, आहारक और अनाहारक। इनमेसे अनाहारक जीवको मोक्ष होता है, आहारक अर्थात आहार करनेवालेको नहीं।

९—ज्ञान मार्गणा—के ५ भेद। मति, श्रुति, अवधि मन: पर्यव और केवलज्ञान। इनमेसे केवलज्ञान होनेपर मोक्ष होता है, अन्य ज्ञानसे नहीं।

१०—दर्शन मार्गणा—के चार भेद है, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन। इनमेसे केवलदर्शन होनेसे मोक्ष होता है अन्य दर्शनसे नहीं।

द्रव्यप्रमाण (२)

द्रव्य प्रमाणके विचारसे सिद्धोके जीवद्रव्य अनन्त है। अभव्य जीवोसे सिद्ध भगवान अनन्तगुण अधिक है, और भव्य जीवोंके अनन्तवें भागमे हैं, अर्थात् संसारी जीवोसे सिद्ध अनन्तगुण न्यूनतर है।

क्षेत्र द्वार (३)

लोकाकाशके असख्यातवे भागमे एक सिद्ध रहता है, उसी प्रकार अनन्त सिद्ध भी लोकाकाशके असंख्यातवे भागमे रहते है, परन्तु एक सिद्धसे व्याप्त क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्त सिद्धोंसे व्याप्त क्षेत्रका परिमाण अधिक है।

सिद्ध परमात्मा सिद्धालयके ऊपरी भागमें विराजमान है, सिद्धशिला ४५ लक्ष योजनकी लम्बी और चौडी है, मध्यमे आठ योजनकी मोटी दलदार है वह अन्तमे किनारेपर आकर मक्खीकी पाख जैसी पतली रह गई है। उसका आकार औंधी छत्रीकी तरह है। श्वेतवर्ण मय है। १४२३०२४९ योजनसे कुछ अधिककी परिधि

है। जिसके एक योजन ऊपर अलोक है, उसी योजनके ऊपरके कोशके छठवें भागमें और लोकके अग्र भागमे अनन्तसिद्ध भगवान् विराजमान है।

स्पर्शनाद्वार (४)

जीव कर्मसे मुक्त होकर जिस आकाश-क्षेत्रमे रहते हैं, उसे सिद्धक्षेत्र कहते हैं,। उस सिद्धाकाश क्षेत्रका प्रमाण ४५००००० योजन लम्बा है, उतना ही चौडा है। उस क्षेत्रमे विद्यमान सिद्धोंके नीचे ऊपर और चारों ओर आकाश-प्रदेश लगे हुए हैं। इसलिये क्षेत्रकी अपेक्षा सिद्ध जीवोंकी स्पर्शना अधिक है।

कालद्वार (५)

एक सिद्धकी अपेक्षासे काल, सादि अनन्त है, जिस समय जो जीव मोक्ष गया वह काल उस जीवके लिये मोक्षका आदि है फिर उस जीवका मोक्षगतिसे पतन नहीं होता अत अनन्त है।

सब सिद्धोकी अपेक्षासे विचारे तो मोक्षकाल, अनादि अनन्त है, क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि—अमुक जीव सबमें प्रथम मुक्त हुआ अर्थात उससे पहले कोई जीव मुक्त न था।

अन्तरद्वार (६)

अन्तर उसे कहते हैं “यदि सिद्ध अपनी अवस्थासे पतित होकर दूसरी योनि धारण करनेके बाद फिर सिद्ध प्राप्त करें।” मगर यह हो नहीं सकता। क्योंकि सिद्धगतिके अतिरिक्त अन्यगति पानेका कोई निमित्त ही नहीं रह गया है। इसलिये पतित अन्तर मोक्षमें

नहीं है, अथवा सिद्धोंमे परस्पर क्षेत्रकृत अन्तर नहीं है, क्योंकि जहा एक सिद्ध है, वहीं अनन्त सिद्ध हैं, कालकृत और क्षेत्रकृत दोनों अन्तर सिद्धोंमें नहीं हैं, केवलज्ञान, केवलदर्शन सम्बन्धी अन्तर सिद्धोंमे कुछ भी नहीं है।

भागद्वार (७)

अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों कालोंमे यदि कोई व्यक्ति ज्ञानीसे सिद्धोंके विषयमे प्रश्न करे तब ज्ञानी यही उत्तर देगा कि—"असख्य निगोद हैं, और प्रत्येक निगोदमें जीवोंकी संख्या अनन्त है, उनमेसे एक निगोदका अनन्तवा भाग मोक्ष पा चुका" इसे भाग द्वार कहते है।

भावद्वार (८)

क्षायिक और पारिणामिक भेदसे सिद्धोंमे दो भाव होते हैं, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सम्यक्त्व चरित्र, केवलज्ञानके भेदोंसे क्षायिकके ९ भेद है। केवलज्ञान और केवलदर्शनके अतिरिक्त सात क्षायिक भाव सिद्धोंमे नहीं होते। इसी प्रकारसे जीवितव्यको छोडकर अन्य दो पारिणामिक भाव भी नहीं होते।

क्षायिकभाव किसे कहते हैं ?

किसी कर्मके क्षयसे होनेवाले भावको क्षायिकभाव कहते है।

पारिणामिकभाव कौनसे हैं ?

भव्यत्व, अभव्यत्व और जीवितव्य ये तीन पारिणामिक-भाव हैं।

सिद्धोंमे ज्ञान, दर्शन, चरित्र और वीर्य रूप ४ भाव प्राण पाये जाते हैं। ५ इन्द्रिएँ, मनोबल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु ये १० दश द्रव्य प्राण हैं। जो सिद्धोंमे नहीं होते। उपशम, क्षय और क्षयोपशमकी अपेक्षा न रखने वाले जीवके स्वभाव को पारिणामिक भाव कहते हैं।

अल्पबहुत्वद्वार (६)

नपुसक सिद्ध सबसे कम होते हैं, उससे स्त्री सिद्ध सख्यातगुण अधिक हैं, स्त्रीलिंग सिद्धसे पुरुषलिंग सिद्ध सख्यातगुण अधिक हैं। इस प्रकार यह संक्षेपसे नव तत्व विवरण कहा गया है।

नपु सक दो प्रकारके होते हैं, जन्मसिद्ध और कृत्रिम। जन्म-सिद्ध नपुंसकोंको मोक्ष नहीं होता। कृत्रिम नपुंसक एक समयमे उत्कृष्ट १० तक मोक्ष जाते हैं, एक समयमे उत्कृष्ट २० स्त्रिएँ मोक्ष जाती है, और पुरुष एक समयमे उत्कृष्ट १०८ तक मोक्ष जाते हैं।

यह सब द्रव्य लिंगकी अपेक्षा कहा गया है, भावलिंगकी अपेक्षा से नहीं। क्योंकि भाव लिंगी (सवेदी) जीव कभी सिद्ध नहीं होता। वास्तवमे तीनों लिंगोंको क्षय करके ही जीव सिद्ध पद पाते है।

यदि जीव निरन्तर सिद्ध होते रहें तो आठ समय तक इस प्रकार सिद्ध होते हैं।

(१) प्रथम समयमें १०८, (२) दूसरे समयमें १०२, (३) तीसरे समयमे ९६, (४) चौथे समयमे ८४ (५) पाचवें समयमे ७२ (६)

छठवें समयमे ६०, (७) सातवें समयमे ४८, (८) आठवें समयमें ३२ फिर नववें समयमें अवश्य ही विरह हो जायगा, और वह विरह भी जघन्य एक समय मात्रका होता है और उत्कृष्ट ६ मास तक रहता है। क्या सिद्धोंकी अवगाहना भी होती है ? हा क्यों नहीं।

जघन्य १ हाथ आठ अगुल, मध्यम ४ हाथ सोलह अंगुल, उत्कृष्ट ३३३ धनुष ३२ अगुल प्रमाण सिद्धोकी अवगाहना होती है।

सम्यक्त्वका परिणाम

यदि मात्र अन्तर्मुहूर्त तक जिस जीवका परिणाम सम्यक्त्वरूप हो गया हो, उस जीवको अर्धपुद्गल परावर्त तक ससारमे भ्रमण करना शेष रहेगा। तत्पश्चात् अवश्य मोक्ष जायगा।

यह काल परिणाम उस जीवके लिये कहा गया है, जिसने वहुतसी आशातनाकी हो, या करने वाला हो। शुद्ध सम्यक्त्वका आराधक जीव तो उसी जन्मसे या तीसरे जन्मसे तथा कोई ७-८ जन्मसे मोक्षको प्राप्त कर लेता है।

अनन्त अवसर्पिणी उत्सर्पिणी व्यतीत होने पर एक 'पुद्गल परावर्तन' होता है। इस प्रकार अनन्त पुद्गल परावर्तन पहले हो चुके है तथा अनन्तगुण भविष्यमे होगे।

सिद्ध १५ प्रकारसे होते हैं

(१) तीर्थंकर होकर जो मोक्ष प्राप्त करते हैं वे 'जिन-तीर्थंकर-सिद्ध' कहलाते हैं ऋषभ-महावीर आदि।

(२) सामान्य केवली 'अजिन-अतीर्थंकर सिद्ध' होते हैं। गौतम आदि।

(३) चतुर्विध सघकी स्थापना करनेके बाद जो मुक्ति पाते है, वे 'तीर्थसिद्ध' है।

(४) चतुर्विध संघकी स्थापना होनेसे पहले जो मोक्ष पाते है वे 'अतीर्थसिद्ध' जैसे—मेरुदेवी आदि।

(५) गृहस्थके वेपमे जो मोक्ष होते है वे 'गृहिलिंगसिद्ध'। जैसे मेरुदेवी माता।

(६) सन्यासी आदि अन्य वेपयुक्त साधुओंके मोक्ष होनेको 'अन्यलिंगसिद्ध' कहते है।

(७) अपने वेपमे रहकर जिन्होने मुक्ति पाई हो वे 'स्वलिंगसिद्ध' होते है।

(८) 'स्त्रीलिंगसिद्ध' चन्दनबाला आदि।

(९) 'पुरुपलिंगसिद्ध' गजसुकुमार जैसे।

(१०) 'नपुसकलिंगसिद्ध'।

(११) किसी अनित्य पदार्थको देखकर विचार करते-करते जिन्हे बोध हो गया हो पश्चात् केवलज्ञानको पाकर सिद्ध हुए हो वे 'प्रत्येकबुद्धसिद्ध' जैसे करकंडु आदि।

(१२) बिना उपदेशके पूर्व जन्मके संस्कार जाग्रत होनेपर जिन्हे ज्ञान हुआ और सिद्ध हुए हों वे 'स्वयंबुद्धसिद्ध' होते हैं। जैसे कपिल मुनि।

(१३) गुरुके उपदेशसे ज्ञान पाकर जो सिद्ध होते हैं वे बुद्धबोधित सिद्ध होते हैं।

(१४) एक समयमे एक ही मोक्ष जानेवाले 'एकसिद्ध' जैसे महावीर।

(१५) एक समयमे अनेक मुक्त होनेवाले 'अनेकसिद्ध' जैसे ऋषभदेवजी आदि।

इस प्रकार नव तत्त्वके स्वरूपको जो भव्य जीव भलीभांति जान लेता है उसकी ही सम्यक्त्वदृष्टि स्थिर रह सकती है। जिन वीतरागके वचन सत्य हैं जिसकी यह बुद्धि है उसीका सम्यक्त्व अचल है, अत नव पदार्थका पूर्ण स्वरूप समझ कर सम्यक्त्वको विशुद्ध करते हुए भेद-विज्ञानको पाकर मोक्षका आराधन करना चाहिये।

इति मोक्ष-तत्त्व।

इति नव पदार्थ ज्ञानसार सम्पूर्ण।

परिशिष्ट नं० १

—००ऽ०ऽ००—

तीनकरणकी व्याख्या

यह जीव अनादिकालसे मिथ्यात्वी रहा है, परन्तु काललब्धिको पाकर तीन करणोंको प्राप्त करता है, वे यथाप्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरणके भेदसे प्रसिद्ध है।

यथाप्रकृत्तिकरण

ज्ञानावरणीय १ दर्शनावरणीय २, वेदनीय ३, अन्तराय ४, इन ४ कर्मोंकी ३० कोटाकोटी सागरोपमकी स्थिति है। उसमेंसे २९ कोटाकोटी खपानेके अनन्तर १ कोटाकोटी शेष रखता है। तथा नामकर्म, गोत्रकर्म इन दो कर्मकी वीस २० कोटाकोटी सागरोपमकी स्थिति है, उसमें १९ कोटाकोटी क्षय करता है और १ कोटाकोटी रखता है, और मोहनीय कर्मकी ७० कोटाकोटी सागरोपमकी स्थिति है, उसमें ६९ कोटाकोटी क्षय करता है शेषमें एक कोटाकोटी रखता है। इस रीतिसे मात्र एक आयुकर्मको छोड़कर बाकी सात कर्मोंकी एक पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम एक कोटाकोटी सागरोपमकी स्थिति रखनेवाला प्राणी वैराग्यरूप उदासीन परिणाम होनेपर यथाप्रवृत्तिकरण करता है। इस प्रथम करणको सन्नी पंचेन्द्रिय जीव अनन्तवार करता है।

अपूर्वकरण

उस एक कोटाकोटी सागरोपमकी स्थितिमेंसे एक मुहूर्तमें अनादि मिथ्यात्व जो कि अनन्तानुबन्धीकी चौकडी है उसे क्षय करनेके लिये अज्ञानको हेय समझकर जब छोड़ता है तथा उपादेय ज्ञानका आदरण करता है, और उसमें वाञ्छाकी अपूर्वता उत्पन्न होती है क्योंकि प्रथम ऐसे परिणाम कभी भी नहीं आये थे, इस कारण इसे अपूर्वकरण कहा है यह दूसरा करण सम्यक्त्व धारक जीवको यथायोग्य होता है।

अनिवृत्तिकरण

वह मुहुर्तरूप स्थितिको क्षय करके निर्मलऔर शुद्ध सम्यक्त्वको पाता है, मिथ्यात्वका उदय मिटनेपर जीव उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है। यही परिणाम अनिवृत्तिकारण है । इस करण के होनेपर ग्रन्थी भेद होना समझा जाता है। इस भांति मिथ्यात्वका उदय मिटनेपर ही जीव सम्यक्त्वको पाता है, उस सम्यक्त्व-श्रद्धाके दो भेद है। एक व्यवहारसम्यक्त्व, दूसरा निश्चय। अर्हन वीतराग देव, सुसाधु निर्ग्रंथगुरु, सर्वज्ञ कथित धर्म, जिस आगममे ७ नय, प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण, चार निक्षेपो द्वारा निश्चित करके जो श्रद्धान किया जाता है वह व्यवहार सम्यक्त्व कहलाता है। यह पुण्यका तथा धर्म प्रगट होनेका कारण है। इस ढगकी रुचि ज्ञानके विना भी अनेक जीवोंमें पैदा हो सकती है।

निश्चय सम्यक्त्व आने पर वह निश्चयदेव अपने ही आत्माको जानता है, जीव निष्पन्नस्वरूपी सिद्ध है, तत्वमे रमण करनेवाले गुरुको

भी अपने आपमे ही देखता है। अपने जीवके स्वभावको ही निश्चय धर्म समझता है। यह श्रद्धान मोक्षका कारण है, क्योंकि जीवके स्वरूपको पहचाने विना कर्मोंका क्षय नहीं होता अतः इसी शुद्ध श्रद्धानका नाम निश्चय सम्यक्त्व है।

परिशिष्ट नं० २

सिद्धद्वार

(१) पहली नरकके निकले	एक समयमे	१०	सिद्ध होते हैं।
(२) दूसरी नरकके निकले	,,	१०	,,
(३) तीसरी नरकके निकले	,	१०	,,
(४) चौथी नरकके निकले	,,	४	,,
(५) भवनपति देवके निकले	,,	१०	,,
(६) भवनपति देवीके निकले	,,	५	,,
(७) पृथ्वीके निकले	,,	४	,,
(८) पानीके निकले	,,	४	,,
(९) वनस्पतिके निकले	,,	६	,,
(१०) पचेंद्रिय तिर्यंच गर्भजके निकले	एक समयमें	१०	सिद्ध होते हैं
(११) तिर्यंच स्त्रीके निकले	,,	१०	,,
(१२) मनुष्य पुरुषके निकले	,,	१०	,,
(१३) मनुष्य स्त्रीके निकले	,,	२०	,,
(१४) व्यतरदेवके निकले	,,	१०	,,
(१५) व्यतरदेवीके निकले	,,	५	,,

(१६) ज्योतिषीदेवके निकले एक समयमे १० सिद्ध होते है
(१७) ज्योतिषीदेवीके निकले , २० ,
(१८) वैमानिकदेवके निकले , १०८ ,
(१९) वैमानिकदेवीके निकले , २० ,,
(२०) स्वलिंगी सिद्ध हो तो १०८ सिद्ध होते है।
(२१) अन्यलिंगी सिद्ध हो तो १० ,
(२२) गृहस्थलिंग सिद्ध हो तो ४ ,
(२३) स्त्रीलिंगमें २० सिद्ध होते है।
(२४) पुरुषलिंगमे १०८ ,,
(२५) नपुसकलिंगमे १० ,
(२६) ऊर्ध्वलोकमे ४ ,,
(२७) अधोलोकमे २० ,,
(२८) तिर्छेलोकमे १०८ ,,
(२९) उत्कृष्ट अवगाहनावाले एक समय दो सिद्ध होते है।
(३०) जघन्य अवगाहनावाले १ समयमे ४ सिद्ध होते है।
(३१) मध्यम अवगाहनावाले १ समयमे १०८ सिद्ध होते है।
(३२) समुद्रमे २ सिद्ध होते हैं।
(३३) नदी आदि शेष जलमे ३ सिद्ध होते है।
(३४) तीर्थमें १०८ ,,
(३५) अतीर्थमे १० ,,
(३६) तीर्थंकर २० ,,
(३७) अतीर्थंकर १०८ ,,

(३८) स्वयबुद्ध ४ सिद्ध होते हैं।

(३९) प्रत्येकबुद्ध १० "

(४०) बुद्धबोधित १०८ "

(४१) एकसिद्ध—१ समयमे १ "

(४२) अनेकसिद्ध—१ समयमें १०८ "

(४३) प्रतिविजयमे१ समयमे२०-२० "

(४४) भद्रशालिवन १, नन्दनवन २, सौमनस्यवनमे ४-४ सिद्ध होते हैं।

(४५) पंडकवनमे २ सिद्ध होते हैं।

(४६) अकर्म भूमिमे अपहरण द्वारा १० सिद्ध होते हैं।

(४७) कर्मभूमिमे १०८।

(४८) प्रथम, द्वितीय, पाचवें, छठवें आरकमे अपहरण द्वारा १० सिद्ध होते हैं।

(४९) तृतीय, चतुर्थ आरकमें १०८-१०८ सिद्ध होते हैं।

(५०) अवसर्पिणी, उत्सर्पिणीमे १०८ "

(५१) नोअवसर्पिणी, उत्सर्पिणीमे १०८ "

(५२) १ से ३२ तक सिद्ध हों तो ८ समय लगते हैं।

(५३) ३३ से ४८ तक " ७ "

(५४) ४९ से ६० तक " ६ "

(५५) ६१ से ७२ तक " ५ "

(५६) ७३ से ८४ तक " ४ "

(५७) ८५ से ९६ तक " ३ "

(५८) ९७ से १०२ तक हों तो २ समय लगते हैं।

(५९) १०३ से १०८ तक हो तो १ समय लगते हैं।

॥ समाप्त ॥